

# बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधान' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़  
की

पी-एच०डी० उपाधि हेतु

शोध-सार

शोधार्थी :  
प्रतापसिंह

निर्देशक :

डा० आरिफ नज़ीर

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

THESIS SECTION

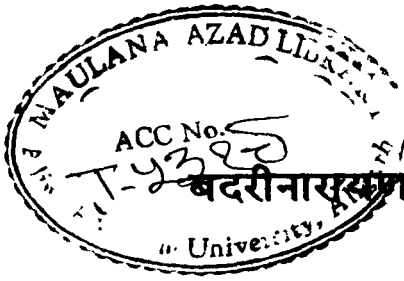
5319

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़ (यू०पी)

1999-2000



बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त  
राष्ट्रीय चेतना  
(शोध—प्रबन्ध—सार)

राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की संवेदनशीलता का द्योतक है। प्राणतत्त्व का परिचायक है इसी के स्पंदन से राष्ट्रीय वीणा के तार झंकृत होकर प्रगति, समृद्धि, शक्ति एवं संस्कृति की मधुरिम तान छेड़ते हैं। इसी चेतना की पवन से राष्ट्रीय एकता रूपी बासंती बेलि लहलहाती और उल्लसित होती है दुर्भाग्य से स्वाधीनता के पश्चात् राष्ट्रीय एकता की समस्या विकराल काल की भाँति मुँह बाएँ निगलने को खड़ी है चतुर्दिक हिंसा, द्वेष, अलगाववाद, आतंकवाद, सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद तथा तुष्टीकरण की नागिनें विषाक्त निःश्वास फेंकती फूटकार रही हैं। हम लोगों ने सन् सैतालीस के पूर्व की राष्ट्रीय चेतना के ज्वार को देखा है। उसमें अवगाहन के अलौकिक सुख का आस्वादन किया है। राष्ट्र के कर्णधारों एवं साहित्यकारों के राष्ट्र को दुर्बल करने वाली मायावी दानवी से जूझने का संकल्प लेते देखा है। इसके फलस्वरूप आज की यह कुत्सित राजनीति और झकझोरती है।

ऐसे वातावरण में स्वाभाविक रूप से हमारी दृष्टि युगान्तकारी महान् साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की ओर जाती है। इनकी कृतियों का अध्ययन करने पर हमें राष्ट्रघाती एवं विघटनकारी विषयों को दूर करने की शक्ति मिलती है।

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से प्रेमघन का साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीयता, देशानुराग और समाज सुधार की भावनाएँ समाहित हैं। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा अज्ञानता के अन्धकार में डूबे भारतीय जनजीवन को नवीन स्फूर्ति प्रदान की। उन्होंने अपनी कविताओं में अंग्रेज सरकार और उसकी शोषण नीति पर तीखे प्रहार किये हैं। उन्होंने अंग्रेज

शासन के प्रति तीव्र असंतोष की भावना व्यक्त करते हुए भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने विचारों को जनता में फैलाने के लिए पत्र पत्रिकाओं की सहायता ली। उन्होंने जनता को जगाने के लिए 'आनन्द कादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' का सम्पादन किया तथा विद्वानों को प्रोत्साहित करके पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कराया। इन पत्रिकाओं में काव्य, नाटक, आलोचना के अतिरिक्त कला, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान, जन जागरण स्त्री सुधार तथा समाज सुधार आदि से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते रहते थे। प्रेमघन का यह प्रयास था कि देश के निवासी अपनी दीन-हीन दशा को पहचानकर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करें।

कविता, नाटक, निबन्ध, व्यंग्य, हास्य लेखन आदि सभी साधनों से प्रेमघन ने नवजागरण की ज्योति जगाने का सफल प्रयास किया।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी कार्य बहुत कम हुआ है। अधिकांश विद्वानों ने उनके काव्य-लेखन पर आधारित शोध ग्रन्थ लिखे हैं। राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमघन के साहित्य के मूल्यांकन सम्बन्धी ऐसे शोध कार्य की आवश्यकता थी जिसमें उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर उनकी सभी रचनाओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना को परखा जाये तथा उसका सही मूल्यांकन किया जाये। इसी अभाव के पूरा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है। निश्चय ही यह शोध कार्य प्रेमघन के साहित्य को नये ढंग से समझने के साथ ही भारत की एकता और अखण्डता को मजबूत बनाने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने स्वयं तैयार किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। दूसरे विद्वानों के कार्य एवं पुस्तकों से जहाँ सहायता ली गई है उसका उल्लेख 'संदर्भ' में कर दिया गया है। शोध-प्रबन्ध के अन्त में सहायक-ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है। अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा शोध—छात्रों हेतु निश्चित किये गये सभी नियमों एवं कर्तव्यों का मैंने पालन किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। शोध कार्य का प्रारम्भ 'प्रस्तावना' से किया गया है। इसमें प्रस्तुत शोध कार्य की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। शोध—प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में 'राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप का विश्लेषण' किया गया है। राष्ट्र की परिभाषा, राष्ट्र और राज्य, राष्ट्रीयता, जातीयता, राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्व, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक एवं परम्परागत एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता एवं सद्भावना, भाषायी एकता, भावात्मक एकता, राजनीतिक एकता आदि के साथ ही चेतना के अभिप्राय, चेतना के प्रवाह, चेतना के तत्त्व आदि का विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना' है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद एवं छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना) का विश्लेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक तृतीय अध्याय में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के जन्मकाल, जन्मस्थान, शिक्षा—दीक्षा, पारिवारिक जीवन, व्यवसाय, कार्यक्षेत्र, अभिरुचि, मित्रमण्डल और उनके निधन के साथ ही उनकी साहित्य एवं समाज—सेवा का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में 'प्रेमघन' की कविताओं, नाटकों, निबन्धों, पत्रिकाओं आदि का विवेचन एवं मूल्यांकन भी किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक 'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध रूप' है। 'प्रेमघन की कृतियों में अभिव्यक्त



भारतवन्दना तथा प्रशस्ति, भारतदुर्दशा तथा उसके विविध रूप एवं समाधान, अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान (प्रेमघन युग) का समाधान, सामाजिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम, भारतीय जनता का उद्बोधन तथा आह्वान आदि का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

‘युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की कृतियाँ’ नामक पंचम अध्याय में प्रेमघन युगीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य, धार्मिक परिप्रेक्ष्य, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, आधुनिकता, प्रेस का प्रचार, यातायात के साधन, शिक्षा का पश्चिमीकरण, राष्ट्रीय नवजागरण, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज आदि का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय का शीर्षक ‘बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना’ है। ‘प्रेमघन’ द्वारा लिखित एवं सम्पादित नाटक, कविता, निबन्ध, पत्र—पत्रिकाओं तथा अन्य साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, का मूल्यांकन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। ‘प्रेमघन’ के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भी इसी अध्याय में किया गया है।

‘उपसंहार’ नामक सप्तम अध्याय में प्रस्तुत शोध की उपलब्धियों तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का संक्षेप में निरूपण किया गया है। प्रस्तुत शोध—कार्य में सहायक—ग्रन्थों, पत्र—पत्रिकाओं, कोशों आदि की सूची ‘परिशिष्ट’ में दी गई है।

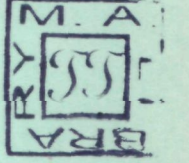
प्रतापसिंह  
११/१२/९७  
(प्रताप सिंह)

Admission No 949497

Date of Admission 12-7-97.

Enrolment No V-0279

# बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधान' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़  
की

पी-एच०डी० उपाधि हेतु

## प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

डा० आरिफ़ नज़ीर

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

शोधार्थी :

प्रतापसिंह

### हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

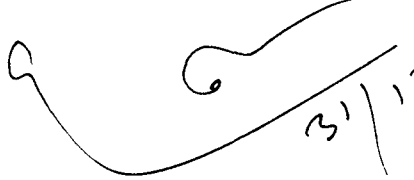
अलीगढ़ (यू०पी)

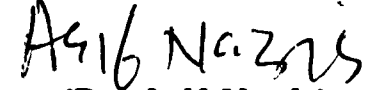
1999-2000

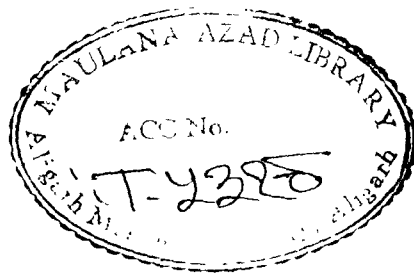
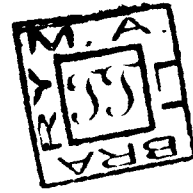
## CERTIFICATE

Certificate that the thesis entitled “ बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना ” submitted by Mr. Pratap Singh for the award of Ph.D. degree in Hindi is an original research work. It is the result of Mr. Pratap Singh's own efforts and it has been completed under my supervision.

He has fulfilled all the conditions laid down in ordinances in this connection.

  
31/12/29  
Chairman  
Department of Hindi  
A. M. U. ALIGARH

  
(Dr. Arif Nazir)  
Reader, Dept. of Hindi,  
A.M.U., Aligarh.



**T5319**



## प्रस्तावना

राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की संवेदनशीलता का द्योतक है। प्राणतत्त्व का परिचायक है इसी के स्पंदन से राष्ट्रीय वीणा के तार झंकृत होकर प्रगति, समृद्धि, शक्ति एवं संस्कृति की मधुरिम तान छेड़ते हैं। इसी चेतना की पवन से राष्ट्रीय एकता रूपी बासंती बेलि लहलहाती और उल्लसित होती है दुर्भाग्य से स्वाधीनता के पश्चात् राष्ट्रीय एकता की समस्या विकराल काल की भाँति मुँह बाएँ निगलने को खड़ी है चतुर्दिक हिंसा, द्वेष, अलगाववाद, आतंकवाद, सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद तथा तुष्टीकरण की नागिनें विषाक्त निःश्वास फेंकती फूटकार रही हैं। हम लोगों ने सन् सैतालीस के पूर्व की राष्ट्रीय चेतना के ज्वार को देखा है। उसमें अवगाहन के अलौकिक सुख का आस्वादन किया है। राष्ट्र के कर्णधारों एवं साहित्यकारों के राष्ट्र को दुर्बल करने वाली मायावी दानवी से जूझने का संकल्प लेते देखा है। इसके फलस्वरूप आज की यह कुत्सित राजनीति और झकझोरती है।

ऐसे वातावरण में स्वाभाविक रूप से हमारी दृष्टि युगान्तकारी महान् साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की ओर जाती है। इनकी कृतियों का अध्ययन करने पर हमें राष्ट्रघाती एवं विघटनकारी विषयों को दूर करने की शक्ति मिलती है।

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से प्रेमघन का साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीयता, देशानुराग और समाज सुधार की भावनाएँ समाहित हैं। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा अज्ञानता के अन्धकार में डूबे भारतीय जनजीवन को नवीन स्फूर्ति प्रदान की। उन्होंने अपनी कविताओं में अंग्रेज सरकार और उसकी शोषण नीति पर तीखे प्रहार किये हैं। उन्होंने अंग्रेज

शासन के प्रति तीव्र असंतोष की भावना व्यक्त करते हुए भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने विचारों को जनता में फैलाने के लिए पत्र पत्रिकाओं की सहायता ली। उन्होंने जनता को जगाने के लिए 'आनन्द कादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' का सम्पादन किया तथा विद्वानों को प्रोत्साहित करके पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कराया। इन पत्रिकाओं में काव्य, नाटक, आलोचना के अतिरिक्त कला, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान, जन जागरण स्त्री सुधार तथा समाज सुधार आदि से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होते रहते थे। प्रेमघन का यह प्रयास था कि देश के निवासी अपनी दीन-हीन दशा को पहचानकर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करें।

कविता, नाटक, निबन्ध, व्यंग्य, हास्य लेखन आदि सभी साधनों से प्रेमघन ने नवजागरण की ज्योति जगाने का सफल प्रयास किया।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी कार्य बहुत कम हुआ है। अधिकांश विद्वानों ने उनके काव्य-लेखन पर आधारित शोध ग्रन्थ लिखे हैं। राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमघन के साहित्य के मूल्यांकन सम्बन्धी ऐसे शोध कार्य की आवश्यकता थी जिसमें उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर उनकी सभी रचनाओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना को परखा जाये तथा उसका सही मूल्यांकन किया जाये। इसी अभाव के पूरा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है। निश्चय ही यह शोध कार्य प्रेमघन के साहित्य को नये ढंग से समझने के साथ ही भारत की एकता और अखण्डता को मजबूत बनाने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने स्वयं तैयार किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। दूसरे विद्वानों के कार्य एवं पुस्तकों से जहाँ सहायता ली गई है उसका उल्लेख 'संदर्भ' में कर दिया गया है। शोध-प्रबन्ध के अन्त में सहायक-ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है। अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा शोध—छात्रों हेतु निश्चित किये गये सभी नियमों एवं कर्तव्यों का मैंने पालन किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है । शोध कार्य का प्रारम्भ 'प्रस्तावना' से किया गया है। इसमें प्रस्तुत शोध कार्य की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। शोध—प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में 'राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप का विश्लेषण' किया गया है । राष्ट्र की परिभाषा, राष्ट्र और राज्य, राष्ट्रीयता, जातीयता, राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्व, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक एवं परम्परागत एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता एवं सद्भावना, भाषायी एकता, भावात्मक एकता, राजनीतिक एकता आदि के साथ ही चेतना के अभिप्राय, चेतना के प्रवाह, चेतना के तत्त्व आदि का विवेचन इसी अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना' है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद एवं छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना) का विश्लेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक तृतीय अध्याय में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के जन्मकाल, जन्मस्थान, शिक्षा—दीक्षा, पारिवारिक जीवन, व्यवसाय, कार्यक्षेत्र, अभिरुचि, मित्रमण्डल और उनके निधन के साथ ही उनकी साहित्य एवं समाज—सेवा का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में 'प्रेमघन' की कविताओं, नाटकों, निबन्धों, पत्रिकाओं आदि का विवेचन एवं मूल्यांकन भी किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक 'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध रूप' है। 'प्रेमघन की कृतियों में अभिव्यक्त

भारतवन्दना तथा प्रशस्ति, भारतदुर्दशा तथा उसके विविध रूप एवं समाधान, अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान (प्रेमघन युग) का समाधान, सामाजिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम, भारतीय जनता का उद्बोधन तथा आह्वान आदि का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

‘युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की कृतियों’ नामक पंचम अध्याय में प्रेमघन युगीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य, धार्मिक परिप्रेक्ष्य, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, आधुनिकता, प्रेस का प्रचार, यातायात के साधन, शिक्षा का पश्चिमीकरण, राष्ट्रीय नवजागरण, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज आदि का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय का शीर्षक ‘बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना’ है। ‘प्रेमघन’ द्वारा लिखित एवं सम्पादित नाटक, कविता, निबन्ध, पत्र—पत्रिकाओं तथा अन्य साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, का मूल्यांकन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। ‘प्रेमघन’ के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भी इसी अध्याय में किया गया है।

‘उपसंहार’ नामक सप्तम अध्याय में प्रस्तुत शोध की उपलब्धियों तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का संक्षेप में निरूपण किया गया है। प्रस्तुत शोध—कार्य में सहायक—ग्रन्थों, पत्र—पत्रिकाओं, कोशों आदि की सूची ‘परिशिष्ट’ में दी गई है।

प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध परम आदरणीय डॉ. आरिफ नजीर (डी० लिट्०, यू०जी०सी०रिसर्च अवार्डी), रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के योग्य निर्देशन में लिखा गया है। विषय चयन से लेकर अन्त तक उन्होंने बेसी बड़ी सहायता की है। स्थान—स्थान पर उन्होंने विषय का गम्भीर विश्लेषण किया तथा मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। उनके सहयोग और कृपा के बिना इस कार्य का सम्पन्न होना अत्यन्त कठिन था। मैं उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव से नतमस्तक हूँ।



आदरणीय प्रो. नजीर मुहम्मद, प्रो. शैलेश जैदी, प्रो. कृष्ण मुरारि मिश्र, प्रो. अजब सिंह, प्रो. उदयशंकर श्रीवास्तव, डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा, डॉ. शिवनारायण शर्मा, डॉ. भरत सिंह, डॉ. अब्दुल अलीम, डॉ. रमेश रावत, डॉ. इफ्फत असगर, डॉ. तस्नीम सुहेल, डॉ. राजीव लोचन शुक्ल, भाई हरिश्चन्द्र (आफिस सुपरिन्टेंडेंट, हिन्दी विभाग) आदि का भी सहयोग प्राप्त हुआ है । इन सबके प्रति मैं आभारी हूँ । प्रो. मुहम्मद रफीक (डीन, फैकल्टी ऑफ आर्ट्स) तथा श्री तारिक नजीर, युनिवर्सिटी इंजीनियर, (बिल्डिंग डिपार्टमेंट) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ का आशीर्वाद मेरा सम्बल रहा है ।

इस शोध अवधि में एक शक्ति मेरा मार्ग प्रशस्त करती रही है उनके विराट अनुभव एवं साधना ने मुझे कठिनाइयों से उबारते हुए इस स्थिति योग्य बनाया है कि मैं यह कार्य पूरा कर सका उन्हीं सत्यश्रद्धा भक्ति एवं कर्मठता के प्रतीक परमपूज्य पिताजी—माताजी एवं चाची जी को मेरा शत—शत नमन । अग्रज श्री राजबहादुर सिंह बघेल, डॉ. एम.पी. सिंह, चन्द्रशेखर (शेखर भाई) मु० खालिद नियाजी, के प्रति आभार प्रदर्शन मात्र औपचारिकता होगी । आपने मुझे सदैव अध्यायनोन्मुख किया तथा समय—समय पर अमूल्य सुझाव देकर कृतार्थ किया ।

अपने सभी मित्रों मु. आरिफ कोटिया, मु. इमरान खॉ, अनीसुरहमान सिद्दीकी, राधेश्याम, श्यामपाल सिंह, गवेन्द्र प्रताप सिंह, आसिफ नजीर के प्रति मैं आभारी हूँ । आपका मित्रवत् सान्निध्य सदैव सुलभ रहा है ।

प्रिय अनुज कुँवर बहादुर सिंह बघेल, अजब सिंह बघेल का भ्रातृवत स्नेह मुझे सहज मिलता रहा है । प्रिय भांजे उमेश कुमार, दिनेश कुमार, सुरेश कुमार का असीम स्नेह सदैव मिलता रहा है । प्रिय भतीजे—भतीजी एवं पुत्र ! बच्चू सिंह, राहुल, ऋचा, बबली, छोटा, प्रेरणा बघेल एवं अभिषेक (नीरज) को विस्मृत करना उनके साथ अन्याय होगा, इनकी किलकारियाँ मुझे प्रोत्साहित करती रही हैं ।

प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध की सामग्री संचयन में मौलाना आजाद लाइब्रेरी के भाई राधेश्याम जी प्रोफेशनल असिस्टेंट, श्री राकिम अली, हिन्दी सेमीनार के प्रभारी डॉ. उस्मान एवं श्रीमती परवेज फातिमा से विशेष सहायता मिली है। मैं इन सबके प्रति हृदय से आभारी हूँ। जीवन सहचरी सर्वेश की लगन एवं निष्ठा तथा समय—समय पर चीजों को व्यवस्थित कर मुझे देना भी मेरे लिए सुलभ रहा है, इसके लिए उन्हें विस्मृत करना बेईमानी होगी। टंकण में भाई हरेन्द्र मणि त्रिपाठी ने कम समय में ही सुचारु रूप से शोध—प्रबन्ध का टंकण करके उदारता का जो परिचय दिया है, इसके लिए आभारी हूँ।

प्रबन्ध के प्रणयन में मैंने साक्षात् असाक्षात् रूप से अनेक विद्वानों तथा उनके कार्यों से सहायता ली है। मैं उन सभी के प्रति हृदय से आभारी हूँ। शोध के लिए उपयुक्त शक्ति का दान जिस परमसत्ता ने मुझे दिया है, उसको नमन करते हुए शोध—प्रबन्ध मैं विद्वज्जन के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ —

विद्वज्जन कृपाकांक्षी

प्रताप सिंह  
31/12/99  
(प्रताप सिंह)

शोध—छात्र, हिन्दी विभाग,  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,  
अलीगढ़।

## विषय सूची

प्रस्तावना  
विषय सूची  
अध्याय—एक :

पृष्ठ संख्या

१ - ४७

क- ३

### राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विश्लेषण

१-४७

राष्ट्र, राष्ट्र की परिभाषा, राष्ट्र और राज्य, राष्ट्रीय चेतना तथा धार्मिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप एवं विश्लेषण, राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्व, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक परम्परा की एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता एवं सद्भावना, भारत राष्ट्र आदि ,

चेतना का अभिप्राय, कॉन्शस अथवा चेतन, कॉन्शसनेस अथवा चेतना, चेतना का प्रवाह, कॉन्शसनेस अथवा वर्ग चेतना, मनोविज्ञान और चेतना इत्यादि ।

### अध्याय—दो :

#### हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

४८-९३

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य

में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना, छायावाद एवं छायावादोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना ।

### अध्याय—तीन :

#### बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का

##### व्यक्तित्व एवं कृतित्व

९५— १५७

पूर्वज, जन्मकाल, नाम, जन्म स्थान, बाल्यकाल एवं शिक्षा, पारिवारिक जीवन, व्यवसाय, कार्य क्षेत्र, अभिरुचि, देशाटन, मित्र मण्डल, निधन ।

##### कृतियाँ

कविता—युगल मंगल स्तोत्र, ब्रजचन्द्र पंचक, राजराजेश्वरी जयति, कलम की कारीगरी, कलिकालतर्पण, पितर—प्रलाप, शोकाश्रुबिन्दु, नेहनिधि वयान, होली की नकल या मुहर्रम की शकल, मन की मौज, प्रेम पीयूष वर्षा, सूर्य स्तोत्र, मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद, हास्य बिन्दु, हार्दिक हर्षादर्श, आनन्द बधाई, लालित्य लहरी, भारत बधाई, स्वागत पत्र, आनन्द अरुणोदय, संप्रान्त—स्वागत, आर्याभिनन्दन साम्राज्यभिनन्दन, जीर्ण जनपद अथवा दत्तापुर, सौभाग्य समागम, श्रीलौकिक लीला, मयंक महिमा, संगीत काव्य, श्रृंगारबिन्दु, वर्षाबिन्दु, स्फुटबिन्दु व बसंत प्रकरण, स्वदेशबिन्दु ।



नाटक :

माधवी माधव नाटक, वारांगना रहस्य महानाटक,  
भारत सौभाग्य, प्रयाग रामागमन,

प्रहसन आलाप :

पाठशाला कुतूहल, घोघेमल साहु और  
सिविलाइज्ड जैटिल मैन, रोवो रोवो रोते जावो,  
बीबी महतरानी और ब्राह्मणी की बातचीत,  
आर्य्या किसकी भार्य्या, पंडित मुंशी और  
महाजन, जुबिली और जमघट या कि यारों के  
ठट्ट, पशु प्रपंच,अपूर्व सम्मिलन, कुट्टी और  
जुट्टी, उपासक और परिहास, वक्ता और  
स्त्रोता, एक आर्य समाजी बरात के बराती और  
दर्शक की बातें, पांडे और पादड़िन ।

निबन्ध :

समाचार—पत्र अथवा अखबार किसे कहते हैं,  
नागरी भाषा, ऋतुवर्णन, बेसुरी तान, दृश्य रूपक  
नाटक, त्रिवेणी तरंग, गुप्त गोष्ठी गाथा, बनारस  
का बुढ़वा मंगल, विधवा विपत्ति वर्षा, देश के  
अग्रसर और समाचार पत्रों के आदि है ।

पत्रिका : आनन्द कादम्बिनी और नागरी नीरद ।

अध्याय—चार :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में

अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध रूप

१५८—१८५

भारत वन्दना तथा प्रशस्ति

अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान का समाधान  
वर्तमान दुर्दशा के विभिन्न पक्ष तथा उनका  
समाधान  
सामाजिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
उद्बोधन तथा आह्वान

### अध्याय—पाँच :

#### युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों १८६—२१८

धार्मिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य, राजनीतिक  
परिप्रेक्ष्य, साहित्यिक परिप्रेक्ष्य, आधुनिकता, प्रेस  
का प्रचार, यातायात के साधन, शिक्षा का  
पश्चिमीकरण, राष्ट्रीय नवजागरण, धार्मिक  
परिप्रेक्ष्य—ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण  
मिशन, प्रार्थनासमाज आदि ।

### अध्याय—छः

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में

#### अभिव्यक्त राष्ट्रीय—चेतना

२१९—२७२

नाटक, काव्य, निबन्ध, पत्रिका एवं अन्य  
साहित्य, प्रेमघन के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन  
राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन ।

अध्याय—सात :

उपसंहार

२७३—२७७

प्रस्तुत शोधकार्य की उपलब्धियाँ तथा शोध में प्राप्त  
तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण  
परिशिष्ट :

सहायक ग्रन्थ सूची

२७८—२८३

## प्रथम अध्याय

# राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विश्लेषण

राष्ट्र, राष्ट्र की परिभाषा, राष्ट्र और राज्य, राष्ट्रीय चेतना तथा धार्मिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप एवं विश्लेषण, राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्व, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक परम्परा की एकता, संस्कृति की एकता, धार्मिक एकता एवं सद्भावना, भारत राष्ट्र , चेतना का अभिप्राय, कॉन्शस अथवा चेतन, कॉन्शसनेस अथवा चेतना, चेतना का प्रवाह, कॉन्शसनेस अथवा वर्ग चेतना, मनोविज्ञान और चेतना इत्यादि ।



## अध्याय—एक

### राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विश्लेषण

मनुष्य की भाव वृत्तियों में राष्ट्रीयता भी एक प्रमुख वृत्ति है। राष्ट्रीयता में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना मुख्य है। उसमें राष्ट्र की उन्नति की साधना निहित रहती है। जब तक हम राष्ट्र को उन्नत बनाने की सतत चेष्टा न करते रहें तब तक हमारा राष्ट्र पर गर्व करना एक बिडम्बना मात्र होगा। “भारत एक पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्र है। उसमें शासित और शासक का भेद नहीं, इसलिए उसमें राष्ट्रोन्नति का उत्तरदायित्व किसी एक विशेष का नहीं, और न केवल सरकार का है प्रत्येक व्यक्ति पर व्यक्तित्व और सामूहिक रूप से उसके उत्तरदायी हैं। कुछ व्यक्तियों पर जो सरकार के उच्चपदाधिकारी हैं उन पर राष्ट्रोन्नति का सीधा उत्तरदायित्व है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे जिस स्थिति में हो अपने कर्तव्य पालन द्वारा राष्ट्र के भौतिक और नैतिक समुत्थान में योग दे सकता है।”

राष्ट्रीयता कोई स्थूल वस्तु नहीं है। वह एक आत्मिक तथा मनोवैज्ञानिक भावना है, जो केवल अनुभूति का विषय है— “जिस प्रकार मानव हृदय में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोभाव विकसित और उन्नत होते हैं उसी प्रकार राष्ट्रीय चेतना भी मानव के हृदय में विकसित आलोड़ित और उन्नत होती है”<sup>१</sup> राष्ट्रीय चेतना को परिभाषित करना कठिन है। यहाँ कतिपय विद्वानों के विचार उद्धृत हैं—

लास्की का कथन है— “राष्ट्रीयता के विचार परिभाषित करना सरल नहीं है, क्योंकि ऐसे कोई निश्चित तत्त्व नहीं हैं जिनमें इनकी खोज की जा सके।”<sup>२</sup> क्लार्कसन का मत है— “विरपरिचित होता हुआ भी राष्ट्रवाद पाप की धारणा के

<sup>१</sup> बाबू गुलाब राय : राष्ट्रीयता, पृ. ३३, प्र.सं., किताब घर, नई दिल्ली

<sup>२</sup> बालकृष्ण नवीन : प्रभा लेख, पृ. २३, मार्च, १९२५

<sup>३</sup> हे. हैरल्ड लास्की : ए ग्रामर आफ् पोलिटिक्स, पृ. २२९ जार्ज एलेन एण्ड यूनिजन लि., लन्दन

समान परिभाषा से परे है।”<sup>५</sup> इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार— “राष्ट्रीय मस्तिष्क की स्थिति विशेष है, जिसमें मनुष्य की सर्वोत्तम निष्ठा राष्ट्र के प्रति होती है।”<sup>५</sup>

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंस के अनुसार — अपने व्यापक अर्थ में राष्ट्रीयता एक ऐसी प्रकृति है जो मूल्यों के विशिष्टतागत क्रम में व्यक्तित्व को एक उच्च स्थान प्रदान करता है, इस अर्थ में वह समस्त राष्ट्रीय आन्दोलनों की एक स्वाभाविक एवं अपरिहार्य और निरन्तर बनी रहनेवाली स्थिति है।<sup>६</sup>

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रीलिजन एण्ड एथिक्स के अनुसार :— राष्ट्रीयता मनुष्यों के समूह का एक गुण अथवा विभिन्न गुणों का एक संश्लिष्ट रूप है जो उसे एक राष्ट्र के रूप में संगठित करता है इस प्रकार संगठित व्यक्तियों में यह गुण विभिन्न मात्राओं में परिलिखित होता है।<sup>७</sup>

जर्मन ने राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक भावना माना है, जो जीवन के आदर्शों से सम्बन्ध रखती है तथा समाज के आध्यात्मिक, मानसिक एवं भौतिक उत्थान में सहायक है—“ राष्ट्रीयता मेरे लिए नितांत राजनीतिक प्रश्न नहीं है मूलतः और आवश्यक रूप से यह एक आध्यात्मिक प्रश्न है । राष्ट्रीयता धर्म के समान आत्मपरक मनोवैज्ञानिक मन की एक दशा आध्यात्मिक सम्पत्ति और अनुभव करने, विचार करने जीवित रखने की पद्धति है परस्पर समान अनुभूति द्वारा सम्बद्ध जनसमूह जो स्वेच्छा से अन्य लोगों की अपेक्षा परस्पर सहयोग करते हैं राष्ट्रीयता का निर्माण करते हुए अनुभूति की समानता उनको अन्य वर्ग के मनुष्य से अलग करती है वे एक शासन के अन्तर्गत रहने की इच्छा करते हैं उसका संचालन वे

<sup>५</sup> E.M.Earle Nationalism and Internationalism , 1951

<sup>५</sup> Encyclopaedia of Britanica Vol. 16, 1965, p. 150

<sup>६</sup> Encyclopedia of Social Science, Vol. 11, 1959, P. 23

<sup>७</sup> Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol, 9, , 1965

स्वयं करना चाहते हैं।”<sup>५</sup> मिल ने इस अनुभूति में एक शासन तथा राजनैतिक लक्ष्यों की समानता को अधिक महत्त्व दिया है।

कोम्बे की परिभाषा में साहचर्य की भावना और पारस्परिक ऐक्य की चेतना पर बल दिया गया है क्योंकि राष्ट्रीय चेतना अन्तःकरण की मूल अनुभूति है स्वदेश के प्रति प्रेम स्वदेशवासियों के प्रति अपनत्व एवं हर्ष—विषाद में सह—अनुभूति सदियों से चली आ रही रीतियों एवं विश्वासों के प्रति श्रद्धा तथा अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति आस्था मानवता की स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं । विदेश को एक देश के ही अपरचित व्यक्तियों के मध्य भ्रातृभाव सहज ही जागृत हो जाता है ” राष्ट्रीय चेतना एक प्रकार से सामूहिक भाव है, एक प्रकार की साहचर्य की भावना है अथवा पारस्परिक सहानुभूति है जो स्वदेश विशेष से सम्बन्धित होती है इसका उद्भव सामान्य पैतृक स्मृतियों से होता है ।

श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय चेतना को भावनात्मक माना है और उसके मूल में सहकार्य की भावना को स्वीकार किया है “राष्ट्र में भावगत एकता के साक्षात्कार की भावनापूर्ण आकांक्षा ही राष्ट्रीयता है एक ऐसी एकता जिसमें सभी अवयवभूत व्यक्ति उनके कार्य राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक तत्त्वों के कारण कितने ही विभिन्न और आपाततः असमान प्रतीत होते हैं । तथा आधारभूत रूप से एक समान है ।”

ब्राइस, भाषा साहित्य तथा परम्पराओं की समानता को महत्त्व देते हुए राष्ट्रीयता को समान संस्कृति वाले लोगों का सम्प्रदाय मानते हैं, “ राष्ट्रीयता वह जनसमूह है जो भाषा साहित्य, विचारों, रूढ़ियों परम्पराओं आदि के बन्धनों से एकता के सूत्र में इस प्रकार बँधा होता है कि अपने को उसी प्रकार के बन्धनों से परस्पर बँधे होते हुए हैं । अन्य सम्प्रदायों से मिलना तथा स्पष्टतः इकाई मानता है। “डा० अम्बेडकर ने राष्ट्रीयता को वर्ग चेतना मानते हुए लिखा है, “ राष्ट्रीयता

<sup>५</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा : डॉ चन्द्र प्रकाश आर्य, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण, १९८४

श्रेणीगत चेतना की एक अनुभूति है जो एक ओर तो इन व्यक्तियों को जिनमें वे इतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक संघर्ष या समाजगत के उच्चता—नीचता के कारण उत्पन्न होने वाले भावों को दबाकर एक सूत्र में बँधे रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से अलग करती है जो उस श्रेणी के नहीं हैं ।<sup>१०</sup>

प्रेमघन के युग में अंग्रेजी शासन को नष्ट करने के लिए भारतीय जनता में अपूर्व संगठन शक्ति पैदा हो गयी थी ।<sup>११</sup> फलस्वरूप कुछ लेखकों ने उन महापुरुषों की जीवनियाँ भी लिखीं, जो उस युग की विचारधारा का नेतृत्व कर रहे थे । महादेव भट्ट, पारसनाथ त्रिपाठी, मुकुन्दीलाल वर्मा सम्पूर्णानन्द, नन्दकुमार, देवशर्मा बट्टीप्रसाद गुप्त ब्रजविहारी शुक्ल, शीतलाचरण वाजपेयी इत्यादि ने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार—प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान करने में पूर्ववर्ती ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवन गाथाएँ भी सहायक सिद्ध होती हैं यही कारण है कि प्रेमघन और उनके समकालीन लेखकों ने ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी थीं । इस दृष्टि से कार्तिक प्रसाद, बलदेव प्रसाद मित्र, देवी प्रसाद आदि प्रसिद्ध साहित्यकार हैं ।

प्रेमघन युगीन राष्ट्रीय चेतना में तीन बातें विशेषतः लक्षित होती हैं  
१—“भारतीय पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास  
२—पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रान्त होती हुई भारतीय चेतना के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्वाभिमान का बल फूँकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतीकरण ३— उपयोगी

१० डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : वाट्स ऑन पाकिस्तान, १९४९

११ डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ५९

आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन है।<sup>१२</sup>

राष्ट्र :

सभ्यता के उषाकाल के 'एकांकी मानव का साहचर्य एवं पारस्परिक सहयोग का भाव ही कालान्तर में राष्ट्र के रूप में लक्षित हुआ अपने समीपवर्ती अन्य मनुष्यों के प्रति उसका अपनत्व एवं ममत्व का भाव पुष्ट होता गया तथा विकास के विभिन्न सोपानों को पार करते हुए क्रमशः कुटुम्ब कुल ग्राम नगर और राज्य का निर्माण हुआ, जिसकी चरम परिणति राष्ट्र की स्थापना में हुई किन्तु तथ्य है कि आज राष्ट्रवाद की भावना इतनी प्रबल है कि उसके समक्ष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'यत्र विश्व भवत्येक नीड़म्' की भावनाएँ आदर्श रूप में रहीं।<sup>१३</sup>

“व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र 'राष्ट्र' शब्द सर्वधातुम्याष्ट्रन् उणादि आदि प्रत्यय के संयोग से रासृशब्दे अथवा राजृशाभने धातु से बना है। इसके अनुसार राष्ट्र शब्द का अर्थ 'रासन्ते चारु शब्दे कुर्वन्ते जनाः यस्मिन् प्रदेश विशेषे तद् राष्ट्रम्' अर्थात् जिस प्रदेश के लोग विशिष्ट भाषा द्वारा विचार विनिमय करते हैं वह स्थान विशेष राष्ट्र है।<sup>१४</sup>

राष्ट्र शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इस शब्द के प्रमुख अर्थ—देश, राज्य, मण्डल, प्रान्त, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आत्मीयता से पूर्ण जन समुदाय, अनेक लोग राज कारोबार आदि।<sup>१५</sup>

अथर्ववेद में 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' कहकर राष्ट्र शब्द का समाज के अर्थ में प्रयोग किया है प्राचीन संस्कृत साहित्य में राष्ट्र शब्द का उल्लेख इस प्रकार हुआ

<sup>१२</sup> डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ६२६

<sup>१३</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. १, प्र.सं. १९८४

<sup>१४</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्र.सं. १

<sup>१५</sup> वही, पृ. १

है पृथिव्यै समुद्रपर्यन्तया एक राष्ट्र, 'पशुधान्य हिरण्य सम्पदा राजते शोभते इति राष्ट्रम्' अर्थात् समुद्र तक की पृथ्वी एक राष्ट्र है पशु धन धान्य आदि सम्पदाओं से सुशोभित भूमि भाग ही राष्ट्र है । वस्तुतः राष्ट्र शब्द राजृदीप्तौ धातु से बना है 'राजते दीप्यते प्रकशते इति राष्ट्रम्' अर्थात् वह भूखण्ड हो स्वयं प्रकाशित हो विदेशियों के पादाक्रान्त न हो सर्वतंत्र तथा स्वतंत्र हो राष्ट्र कहलाता है शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि समृद्धियुक्त ओजस्वी जन समूह ही राष्ट्र है— श्री वैरष्ट्रम् ।<sup>१६</sup>

आज राष्ट्र शब्द अंग्रेजी के 'नेशन' (Nation) शब्द के पर्यायवाची रूप में प्रयोग किया जाता है इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'नेटियो' (Natio) या 'नैट्स' (Natus) शब्द से विकसित हुआ है जिसका अर्थ उस भाषा में उत्पन्न होता है । अतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'नेशन' जिसे हम राष्ट्र का पर्यायवाची कहते हैं वह जन समूह है, जो जन्म अथवा नस्ल के बंधन से परस्पर बंधा हो । राष्ट्र निर्माण के लिए एक निश्चित भू-भाग और जनसमूह का होना अनिवार्य है ।<sup>१७</sup> मूलतः राष्ट्र शब्द जनपद जिला का बोधक है जन अर्थात् जन समूह और पद अर्थात् भू-भाग किसी भू-भाग पर निवास करने वाले मनुष्यों को अपने दैनिक व्यवहार एवं विचार विनिमय हेतु भाषा से धर्म एवं संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है । आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए सुव्यवस्थित समाज और समाज रक्षा के लिए राजनैतिक संगठन की आवश्यकता निर्विवाद है ।<sup>१८</sup>

### राष्ट्र की परिभाषा :

राष्ट्र की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है — सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान वर्गेंस ने राष्ट्र की परिभाषा देते हुए लिखा है “ राष्ट्र वह

<sup>१६</sup> वही, पृ. १

<sup>१७</sup> डॉ. आरिफ नजीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्र.सं. २

<sup>१८</sup> J.W. Vargesh : Political Science and Constitutional Law, Vol. P. 1

जनसमुदाय है, जो एक निश्चित भौगोलिक प्रदेश में निवास करता है तथा जिसकी अपनी एक सामान्य भाषा, साहित्य में भले-बुरे की चेतना सामान्य हो आचार-विचार और विधि-विधान की परम्परा है ।<sup>१९</sup>

जिर्मन के शब्दों में — राष्ट्र वह जन समुदाय है जो एक विशेष भू-प्रदेश के प्रति तीव्रता, अन्तरंगता तथा गौरव की भावना से युक्त हो । जिर्मन की इस परिभाषा में भौगोलिक एकता के अतिरिक्त पारस्परिक एक सूत्रता और अतीत के गौरव की भावना द्वारा ऐतिहासिक एकता पर भी बल दिया गया है ।

शूमैन के अनुसार — चाहे किसी विशिष्ट समय में राजनैतिक सीमायें कुछ भी हो राजनीति निरपेक्ष अर्थों में भाषा और अन्य सांस्कृतिक बन्धनों द्वारा अपनी पृथक् इकाई के प्रति जागरूक रहनेवाला जनसमुदाय राष्ट्र है ।<sup>२०</sup>

फिलिमोर की परिभाषा में राष्ट्र की अन्य आवश्यकताओं के साथ-साथ सामान्य विधि-विधान आचार-व्यवहार तथा रीति-व्यवहार का भी उल्लेख किया है राष्ट्र की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुए फिलिमोर ने लिखा है— 'वह जन समुदाय, जो किसी निश्चित प्रदेश में स्थायी रूप से निवास करता हो । तथा जो एक सामान्य विधि-विधान, आचार-व्यवहार, रीति व्यवहार द्वारा एक सुदृढ़ संगठन में संगठित हो । जो एक व्यवस्थित सरकार द्वारा उस भू-भाग की सीमाओं में निवास करने वाले समस्त मनुष्यों एवं वहाँ के विद्वान समस्त पदार्थों पर पूर्ण आधिपत्य तथा नियंत्रण रखता है जो विश्व के किसी से सन्धि अथवा विग्रह करने में समर्थ हो और किसी अन्य प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार हो राष्ट्र है ।'<sup>२१</sup> समर्पण तथा एकत्व की भावना अपरिहार्य जो शेष तत्वों से सर्वथा निरपेक्ष है राष्ट्र के प्रति एक-निष्ठ और परस्पर

<sup>१९</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा, चन्द्र प्रकाश आर्य, पृ. ३

<sup>२०</sup> International Law : Phillimore, Vol. 1, P.821

ऐक्य के भाव ही राष्ट्र के आधार स्तम्भ हैं राष्ट्र शब्द से समर्पण का भाव ध्वनित होता है ।

डा० फतह सिंह के अनुसार— “ राष्ट्र का शाब्दिक अर्थ है रीतियों का संगम स्थल और राति शब्द, देन का पर्यायवाची है । राष्ट्र भूमि और राष्ट्रजन की यह संयुक्त इकाई राष्ट्र इसलिए कही जाती है कि यहाँ पर राष्ट्रजन अपनी—अपनी राति (देन) राष्ट्रभूमि के चरणों पर अर्पित करते हैं ।”<sup>२२</sup>

पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र शब्द की भावपूर्ण व्याख्या की है— ‘राष्ट्र के मानी उस मिट्टी के नहीं होते, जिस मिट्टी पर वह राष्ट्र बसा हुआ है और न उस आकाश के होते हैं जो उस पर छाया है न उस धन के होते, जो उसके पास एकत्रित है न उस प्रभुसत्ता के होते, जिसे वह अपनों पर या गैरों पर दिखाकर गर्वित होते हैं किन्तु इस वचन और कृति के माने राष्ट्र होते हैं जो उसके निवासियों के जीवन से निकला है उन्मेष बनकर आती है और इतिहास बनकर ठहर जाती है ।’<sup>२३</sup>

इस प्रकार किसी निश्चित भू-भाग पर निवास करनेवाला वह जनसमूह, जो समान राजनैतिक लक्ष्यों में आबद्ध हो जिसकी भाषा एवं साहित्य, सभ्यता एवं संस्कृति धर्म रीति व्यवहार एवं ऐतिहासिक परम्पराएँ हिताहित की कल्पनाएँ एवं जीवन मूल्यों के प्रति दृष्टि—कोण समान हो तथा जो उस भू-भाग के प्रति समर्पण निष्ठा एवं गर्व की भावना से युक्त हो वह राष्ट्र कहलाता है ।

राष्ट्रीय एकता पर बल देत हुए डा० नज़ीर मुहम्मद ने लिखा है —

“ राष्ट्रीय एकता राष्ट्र की, मूलाधार समान ।

<sup>२२</sup> डॉ. फतह सिंह : साहित्य और राष्ट्रीय स्व, पृ. २८ (भारतीय साहित्य परिषद्, दिल्ली,) प्रथम सं. १९७४

<sup>२३</sup> माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीयता की आवश्यकता, दैनिक हिन्दुस्तान, ८ अक्टूबर, १९६१



खड़ी इसी पर समृद्धि की अट्टालिका समान ॥ <sup>२४</sup>

### राष्ट्र और राज्य : —

राज्य शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर 'स्टेट' (State) है, स्टेट लैटिन भाषा के "स्टेट्स" (Status) शब्द से विकसित हुआ है। "स्टेट्स" (Status) का शाब्दिक किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर होता है अर्थ के अनुसार "स्टेट्स" के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज के स्तर पर विचार किया जाने लगा। इस प्रसंग में राज्य शब्द के उद्भव तथा विकास के अनुसार राज्य की कल्पना एक श्रेष्ठ तथा प्रमुख सम्पन्न समाज व्यवस्था के रूप में की जा सकती है।<sup>२५</sup> राष्ट्र और राज्य एक दूसरे के अत्यन्त निकट है दोनों के लिए निश्चित भू-भाग होना अनिवार्य है राष्ट्र और राज्य दोनों में जनता का होना भी अनिवार्य है राष्ट्र और राज्य दोनों में जनता में विभिन्न समानताएँ होते हुए कुछ विषमताएँ भी हैं।

राज्य भौतिक है जबकि राष्ट्र आध्यात्मिक है राज्य में केवल चार तत्त्व हैं—भूमि, आबादी, सरकार, तथा राजसत्ता अनिवार्य है। राष्ट्र में अनेक सांस्कृतिक तत्त्व होते हैं उन्हीं के आधार पर राष्ट्र का निर्माण होता है राज्य पूर्णतः एक राजनैतिक व्यवस्था है यह मानवीय आवश्यकताओं का मूर्त रूप है राष्ट्र की भाँति इसका सम्बन्ध आवश्यक रूप से मनुष्य के अध्यात्म अथवा उसकी अमूर्त भावनाओं से नहीं होता। राष्ट्र एवं राज्य दोनों का सम्बन्ध किसी भू-खण्ड विशेष से बाहर भी फैल सकता है। राष्ट्र की शक्ति नैतिक होती है, राज्य की शक्ति पुलिस शक्ति होती है राष्ट्र अपील करता है समझाता है अथवा बहिष्कार करता है इसके विपरीत राज्य आज्ञा देता, शासन करता है तथा दण्ड देता है राज्य किसी संगठित राजनीतिक शासन व्यवस्था वाला भू-भाग है राष्ट्र एक देश, मुल्क है एक देश या राज्य में बसने वाला जनसमुदाय राष्ट्र है।

<sup>२४</sup> डॉ. नजीर मुहम्मद : एकता सतक सन् १९९९, देवनागरी प्रकाशन, अलीगढ़।

<sup>२५</sup> डॉ. आरिफ नजीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. ४

जिमेरिन का कथन राष्ट्र तथा राज्य के अन्तर को भी सुन्दर ढंग उद्घाटित करता है । । “ राष्ट्रीयता धर्म की भाँति आत्मगत होती और राज्यत्व वस्तुगत होता है राष्ट्रीयता मनोवैज्ञानिक होती है और राज्यत्व राजनैतिक, राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक सम्पत्ति होती है राज्यत्व है एक अनिवार्य उत्तरदायित्व, राष्ट्रीयता एक चेतना, विचार तथा जीवन मार्ग होती है और राज्यत्व समस्त सभ्यता पूर्ण जीवन दर्शन की एक अविच्छेद्य दशा है । ” २६

पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्र की शक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक है राज्य में सरकारी अनुशासन कही प्रधानता रहती है ।

### राष्ट्रीय, जातीयता :

जातीय जन जागृति जातीय राष्ट्रीय चेतना की आधारशिला है । राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत किसी जाति—विशेष के उत्कर्ष की भावना निहित होती है।<sup>२७</sup> जाति का सम्बन्ध मुख्यतः मानव शास्त्र से है इसका तात्पर्य उन जन समूहों से है जो शरीर की बनावट, रंग एवं रक्त के आधार पर वर्गीकृत है जाति विशेष के संगठन के रूप में जातिवाद का उदय हुआ इस संगठन के प्रति चेतना ही जातीयता कहलाती है आधुनिक युग में जातीयता की भावना प्रमुख रूप से रंग (वर्ण) पर आधारित रही है बहुत समय तक यह प्रचार रहा कि अफ्रीका में रंग भेद की नीति तथा अमेरिका में ‘नीग्रो’ लोगों और ब्रिटेन एवं आस्ट्रेलिया आदि राष्ट्रों में अश्वेतों के साथ भेद—भावपूर्ण व्यवहार जातीयता के ही विभिन्न रूप है ।<sup>२८</sup>

राष्ट्रीय चेतना और जातीयता की अलग—अलग सत्ता हैं राष्ट्रीय चेतना में जातिगत भेदभावों को त्यागकर राष्ट्र उत्थान की भावना रहती है जबकि जातीयता

<sup>२६</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा : नारायण पाण्डेय का काव्य, प्र.सं. १९८४, पृ. १९२

<sup>२७</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा : चन्द्र प्रकाश शर्मा, प्र.सं., पृ. ९

<sup>२८</sup> वही,

में स्वजाति की उन्नति तथा उसके कल्याण की कामना निहित होती है । जातीयता, राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न सहायक तत्त्वों में से एक तत्त्व है इसलिए शूमेन ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में पूर्णतः अपेक्षित तत्त्व नहीं हैं तथ्य तो यह है कि वर्तमान युग में अधिकांश राष्ट्रों के मूल में जातीयता की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती । क्योंकि जातीयता शुद्धता आज असम्भव है । राष्ट्रीय चेतना को निश्चित शब्दों में परिभाषाबद्ध करना कठिन है वस्तुतः राष्ट्रीयता का केन्द्र “ राष्ट्र संज्ञा प्राप्त जनसमूह है वह मानव अन्तरतम श्रेष्ठतम चेतना है जिसके कारण वह समूह पारस्परिक एकरूपता द्वारा राष्ट्र कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है वह कोई निश्चिष्ट भावना नहीं है अपितु एक अत्यन्त गतिमान । उत्तेजक तथा स्फूर्तिदायक चेतना है जो मनुष्यों के अपने राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि हेतु संगठित रूप से प्रयास करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है । श्री अरविन्द का मत है, “ एकता के अभाव की अपेक्षा जातीयता’ का अभाव हमारे विचार से विशेष नाश कारक दोष है । देश भर में पूर्ण जातीय भाव व्याप्त होने से इन नाना प्रकार के भेदों से परिपूर्ण देश में भी एकता का होना सम्भव है ।” जातीय गौरव राष्ट्र की उन्नति में सहायक होता है ।<sup>२९</sup> राष्ट्रीय चेतना एक विचार शक्ति है जो मानव के मस्तिष्क और हृदय को नवीन विचारों तथा मनोभावों से युक्त कर देती है एवं उसे अपनी चेतना संगठन क्रिया के कार्यों में परिवर्तित करने के लिए प्रेरित करती है ।

शूमेन ने — ‘राष्ट्रीय चेतना को जातीय एकता का विकसित रूप माना है जिसमें एक बड़े भू-भाग में निवास करनेवाली जाति विरोध की सामाजिक एकता की सीमाएँ भाषा तथा संस्कृति की सीमाओं में एक होकर रहती है ।’<sup>३०</sup>

<sup>२९</sup> अरविन्द घोष : धर्म और जातीयता, पृ. ९९ (हिन्दी साहित्य मन्दिर, वाराणसी.)

<sup>३०</sup> एल. फैंडरिक शूमेन : इण्टरनेशनल पालिटिक्स, न्यूयार्क, १९४८

### राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विश्लेषण :

राष्ट्र शब्द का व्यापक अर्थ है जिस भू-भाग पर निवास करनेवाली समस्त जनता की भावना और विचारों में प्रतीक संस्कृति और सभ्यता आदि शामिल होती है राष्ट्र के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ व्यापक तथा अनिवार्य तत्त्व भी हैं जिसमें धर्म, संस्कृति, भाषा जनता, राजनीतिक विचार आदि प्रमुख हैं । राष्ट्र का प्राकृतिक स्वरूप भी महत्वपूर्ण होता है इन्हीं सभी विचारों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीयता का सम्यक् स्वरूप तथा पूर्ण विकास सम्भव हो सकता है । राष्ट्रीय चेतना के बाहरी स्वरूप तथा उसकी अभिव्यक्ति में अन्तर आ जाता है यही कारण है कि राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप सदा एक जैसा नहीं रहता ।<sup>३१</sup>

राष्ट्र, जाति, धर्म और भाषा की एकता का नाम मात्र नहीं वह भावना की एकता का प्रतीक है राष्ट्र प्रेम राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य तत्त्व है देशप्रेम, देश की स्वतंत्रता, देश की एकता और अखण्डता को मजबूत बनाने का भाव भी राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत आता है — ‘द रेण्डम डिक्शनरी ऑफ इंगलिश लैंग्वेज’ पुस्तक में राष्ट्रीयता का विवेचन किया गया है ।<sup>३२</sup> वेबिस्टर्स कोश में राष्ट्रीयता का विवेचन करते हुए कहा है राष्ट्र के प्रति समर्पण देश भक्ति, राष्ट्र के हितों की रक्षा तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता पर बहुत जो दिया गया है ।<sup>३३</sup>

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में ‘नेशनलिज्म’ (Nationalism) की व्याख्या करते हुए लिखा है— राष्ट्रीयता मन की वह आस्था है जिसमें व्यक्ति की सर्वोपरि कर्तव्यनिष्ठा राष्ट्र के प्रति अनुभव की जाती है । आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार राष्ट्र से सम्बन्ध रखने वाले तत्त्व ही राष्ट्रीयता तत्त्व कहलाते हैं राष्ट्रीय तत्त्व को रूप और अरूप मुख्य दो भेद हैं—जब कभी व्यक्ति राष्ट्रवादी बनता है

<sup>३१</sup> द्रष्टव्य गुलाबराय : राष्ट्रोन्मत्ति में जातीय की महत्ता, मेरे निबन्ध, पृ. १६७

<sup>३२</sup> डॉ. के.के. शर्मा : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास, पृ. १२

<sup>३३</sup> डॉ. के.के. शर्मा : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास, पृ. सं. ११

और वह राष्ट्र के समस्त तत्वों से प्रेम करता है वर्तमान को ही नहीं अतीत को भी प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है राष्ट्र के स्वरूप तत्व में तीन मुख्यभेद किये जा सकते हैं— १. भू-भाग के प्रति अनुराग तथा श्रद्धा भाव व्यक्त किया जाता है भारत के दार्शनिक विचारों, ज्ञान उपासना, भक्ति और कर्म के दृष्टिकोण आदि हमारे प्राचीन साहित्य की निधियाँ हैं जिनमें समस्त राष्ट्रीय जन चेतना मिलती है जनता को सांस्कृति आन्दोलन में शामिल करने के लिए तीर्थयात्रा बड़ी सहायक तीर्थयात्रा से धार्मिक भावों के बल के साथ भौगोलिकता की चेतना भी बढ़ती है प्रकृति के सौन्दर्य का परिचय, शिल्प स्थावास्तु कला आदि का ज्ञान भी सहज ही इसमें प्राप्त होता है । आज की तीर्थयात्रा राष्ट्रीय जीवन की महत्वपूर्ण प्रेरणा है:— २. राष्ट्र में नर—नारी जीवन का चित्रण है जब राष्ट्र की प्रकृति से यहाँ के जन का इतना लगाव और प्यार रहा है तो उसमें रहने जनता के प्रति भी स्नेहमय उद्गार राष्ट्रीयता का अंग बन जाता है । राष्ट्र में रहनेवाले जन—मन की जीवनचर्या, सुख—दुख, रीति—रिवाज, मनोरंजन, ज्ञान, कला, साहित्य, संस्कृति आदि सभी उपकरणों के प्रति भावना की अभिव्यक्ति को भुलाया नहीं जा सकता।”<sup>३४</sup>

साहित्य समाज का दर्पण है । राष्ट्र में रहनेवाले जनसमुदाय के जीवन का चित्रण भी राष्ट्र की निधि ही होगी । हमारे पूर्वजों की जीवनगाथा हमें नित्य प्रेरणा देती है उनके चरण चिन्हों पर चल कर हम राष्ट्र को उन्नत और गौरव बना सकते हैं । हमारे देश के संत, ऋषि, दृष्टा साहित्यकार, कवि, मूर्तिकार आदि सभी साधना का वर्णन राष्ट्रीयता में शामिल हो जाता है ।

जब राष्ट्र पराधीन हो जाता है तब राष्ट्र के अरूप तत्वों के प्रति प्रेम सघन हो जाता है इनमें विदेशी शासक के प्रत्येक कार्य कठोर अनुशासन एवं आज्ञा का उल्लंघन तथा विरिक्त का भाव जागृत होता है शासन तथा शासन के प्रति क्रोध

<sup>३४</sup> डॉ. के.के.शर्मा : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास, पृ. १२—१३

तथा प्रतिकार एवं उसे हटाकर फैकने की भावना अधिक उभरती है । राष्ट्रीयता सदा एक रूप में गृहीत नहीं होती उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है राष्ट्रीय चेतना के इस परिवर्तन का प्रभाव काव्य साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है काव्य राष्ट्रीयता के दायरे से आगे नहीं जा सकता ।<sup>३५</sup>

### धार्मिक चेतना :-

धर्म शब्द “ धृ ” धातु से बना है जिसका अर्थ है— बनाए रखना, पुष्ट करना, धारण करना, आदि भारत वर्ष में धार्मिक दृष्टि से अनेक विभेद आडम्बर फैले हुए हैं, एक ओर प्राचीन सनातन धर्म विविध शाखाओं में फैला था और दूसरी ओर विविध समाजों और सोसाइटियों के रूप में धार्मिक चेतना के प्रयत्न हो रहे थे शैवशाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों में फूट फैली हुई थी, इसी को लक्ष्य करते हुए प्रेमघन जी लिखते हैं— “हमारे धर्म की भी शाखाएँ असंख्य हो गई, तब उसकी डालियों की कथा कौन कहे, आर्य धर्म के पौराणिक शाखा की एक डाली वैष्णव ही हो क्या कोई बतला सकता है कि उसमें कितनी टहनियाँ फूट गई हैं और मूल मत का प्रभाव यहाँ आकर किस दशा को पहुँचा है? शैव और शक्ति का बैर जाने दीजिये और वैष्णवों की चारों शाखाओं की चिन्ता छोड़िये क्या एक सम्प्रदाय में भी परस्पर प्रेम है ।”<sup>३६</sup> लोग धर्म के मूल तत्त्व को भूल बैठे थे । आडम्बर को ही सर्वस्व मान बैठे थे । धर्माचरण में जड़ता आ चुकी थी । धर्माधिकारी पंडे पुरोहित दुर्व्यसनों में लिप्त थे, जिनसे किसी प्रकार के मार्ग—दर्शन आशा करना दुराशामात्र था ।

उस समय के समाजों में आर्य समाज का अधिक प्रचार हुआ । वह भारतीय वैदिक धर्म पर आश्रित था स्वामी दयानन्द ने वेदों की जनभाषा हिन्दी में व्याख्या कर उन्हें सर्वजन सुलभ बनाया । धार्मिक दृष्टि से उनके समाज में

<sup>३५</sup> वही, पृ. १४

<sup>३६</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. २३३, हिन्दी सम्मेलन प्रयाग

ऊँच—नीच व छुआछूत का कोई भेद नहीं था । उन्होंने ऐकेश्वरवाद का प्रचार एवं बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा का खण्डन किया था । आर्य समाज का 'शुद्धि' आन्दोलन एक महत्वपूर्ण कार्य था जिससे धर्म परिवर्तन किये हुए बहुत से हिन्दू पुनः हिन्दू बन सके थे इस दृष्टि से उसका कार्य नितांत युगानुरूप था ।

उन्नीसवीं सदी में विद्वानों और विचारकों को हिन्दू धर्म बहुत पिछड़ा लगने लगा था । इस समय ईसाई धर्म का प्रचार—प्रसार था, ईसाई धर्म कुछ अर्थों में हिन्दू धर्म अपेक्षा उदार था इसलिए लोगों का ध्यान इस तरफ जाना स्वाभाविक था और दूसरी तरफ ईसाई का शासन होने के कारण ऐसा हुआ इस समय हिन्दू धर्म में संकीर्णता, बहुदेववाद, अंधविश्वासों का बाहुल्य तथा तीर्थों में धर्माचार के अड्डे बने हुए थे । मंहतों के घर पापाचार के आश्रय थे और मूर्तियों को पुजवाने वाले पण्डे विलास में डूबे हुए थे । इस समय जनता में तीर्थयात्रा, भाग्यवाद, अवतारवाद आदि पर अटूट विश्वास था ।

भारतीय मानव परम्परागत जीवन क्रम सनातन रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों के बंधनों से पूर्णतया जकड़ा हुआ था । चौबीसों घण्टों के कार्यक्रम भी धर्म ग्रन्थों द्वारा निर्धारित किये गये थे । स्नान, पान, भोजन, पर्यटन, व्यवसाय, विवाह, आदि से मानव व्यवहारों पर धर्म का अधिकार था ।

‘उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के आरम्भ में सामंतवाद विरोधी और उपनिवेश और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों में धर्म ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । राष्ट्रीय नवजागरण की अभिव्यक्ति धार्मिक जागरण के प्रतिबिम्ब के रूप में हुई है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में स्वयं धार्मिक राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्ब थी ।’<sup>२७</sup>

<sup>२७</sup> भगवती प्रसाद शर्मा : नवजागरण, प्रताप नारायण मिश्र, पृ. २४५—२४६

### राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख तत्त्व :

राष्ट्र से सम्बन्धित भाव ही राष्ट्रीयता है तथा स्वदेश प्रेम को सुन्दर बनाने वाले तत्त्वों के द्वारा मानव—सहनिवास से किसी जन—समूह में जो एकत्वानुभूति उत्पन्न हो जाती है । वह राष्ट्रीयता को मजबूत बनाने के लिए भौगोलिक इकाई के साथ उस भू—भाग में निवास करने वाले अधिकांश लोगों की संस्कृति, भाषा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सामाजिक आचार—व्यवहार प्रशासनिक प्रणाली आदि अंशों में समानता एवं एकरूपता की आवश्यकता होती है परिवहन एवं संचार —साधनों की सुविधा एक राष्ट्र में निवास करने वाली जनता को जोड़ती है तथा इसमें आपसी सम्बन्धों में सौहार्दता तथा आकांक्षाओं में समानता प्रतिफलित होती है । यही सब राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्त्व हैं । इन सभी में राष्ट्रीयता पायी जाती है । ये सभी इस प्रकार से हैं— भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, जातीय, धार्मिक, भाषायी, आर्थिक तथा राजनैतिक एकता, आदि को मिलाकर राष्ट्रीयता बनती है । डा० नजीर मुहम्मद का कथन है—

“राष्ट्रीय सद्भावना शुचि एकता विचार ।

पल्लवित पुष्पित हो तभी महके सब संसार ”।<sup>३८</sup>

### क. भौगोलिक एकता :

जनसाधारण को राष्ट्रीयता का रूप देने के लिए निश्चित भू—भाग का होना आवश्यक है । “किसी राष्ट्र के लिए प्रथम अपरिहार्य वस्तु एक भूखण्ड है , जो यथासम्भव किन्हीं भौगोलिक सीमाओं से आबद्ध हो तथा एक राष्ट्र के रहने और वृद्धि एवं समृद्धि के लिए आधार रूप काम दे ।”<sup>३९</sup>

<sup>३८</sup> डॉ. नजीर मुहम्मद : एकता सतक, पृ. ६

<sup>३९</sup> माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर : विचार नवनीत, पृ. १२०



भौगोलिक जलवायु का व्यक्तियों के शारीरिक गठन तथा मनपटल पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है जिसके कारण उनकी रूचियों, रीति—रिवाजों, तथा आदर्शों में एक सूत्रता आ जाती है अतः ऐसे सहज गुणों का उदय होता है जो राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करते हैं । निश्चित भू—भाग पर निवास करने वाले मनुष्यों के मन में उस देश के प्रति तथा परस्पर आत्मीयता की भावना उत्पन्न हो जाती है । जननी के प्रति हमारा प्रेम और सम्मान स्वाभाविक रूप से विकसित होता है इस प्रकार मनुष्य अपनी राष्ट्रभूमि को असीम श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। श्रद्धा की इसी भावना के कारण हम अपनी भूमि की मातृभूमि कहते हैं । माता भूमि पुत्र अहं पृथिव्याः अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ । किसी मानव समुदाय के अन्तःकरण में इस भावना की अनुभूति ही राष्ट्रीय चेतना का मूल बिन्दु है । मातृभूमि के प्रति अनुराग की इसी भावना के कारण सोने की लंका का आकर्षण पुरुषोत्तम राम को नहीं बाँध सका ।<sup>४०</sup>

मातृभूमि ही नहीं अपति उसके वक्षस्थल को अलंकृत करनेवाले भूधर उसकी भूमि पर प्रवाहित होनेवाली पवित्र सलिला सरिताएँ तथा उसके अंचल में बेल—बूटों की भाँति कटे हुए कलित कालान्तर, मनोहरता के निकेतन जल प्रपात और पावन तीर्थ भी राष्ट्रीय अखण्डता के आधार हैं । भगवान श्री राम ने स्वराष्ट्र के प्रेम पर बल देते हुए रामायण में लक्ष्मण जी से कहा है— हे लक्ष्मणः लंकानगर स्वर्ण खचित महलों और सर्वकला सम्पन्न है लेकिन तुम यह कभी मत भूलों कि माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है :—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि ॥<sup>४१</sup>

<sup>४०</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. १०

<sup>४१</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. ९

यद्यपि यह कहा जाता है कि १९४८ तक यहूदियों का अपना कोई राष्ट्र नहीं था । सन् १९७१ ई० से पहले पाकिस्तान में भौगोलिक एकता नहीं थी फिर भी उसमें राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी किन्तु ये अपवाद है । वस्तुतः राष्ट्र की भूमि ही राष्ट्रीयता के उद्भव का सुदृढ़तम आधार है, अपनी भूमि की अभाव में सर्वसम्पन्न जाति भी राष्ट्रीय भाव को प्राप्त नहीं हो सकती । देश की राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा भूमि है जाति नहीं है, धर्म नहीं है, और कुछ भी नहीं है एक मात्र देश है और जितने भी राष्ट्रीयता के उपकरण हैं वे सब गौण और उपयोगी हैं देश ही मुख्य और आवश्यक है ।

इसके अतिरिक्त मानव की सहानुभूति का विस्तार कठिनता से ही हो पाता है निकटवर्ती लोगों में आत्मीयता तथा स्नेह का विकास शनैः शनैः स्वतः हो जाता है । अतः मानव की सहज भावनाओं को जागृत करने हेतु भौगोलिक इकाई ही सर्वोत्तम है । मैजिनी के शब्दों में ' हमारा देश हमारा घर है जो ईश्वर ने हमें दिया है जिसमें उसके अनेक परिवार रखे हैं जो परिवार हमें प्यार करते हैं और जिन परिवारों को हम प्यार करते हैं एक ऐसा परिवार जिसके साथ दूसरों की अपेक्षा हम अधिक तत्परता से सहानुभूति रखते हैं और जिसे हम दूसरों की अपेक्षा अधिक सरलता से समझ पाते हैं । ' १४२

निष्कर्षतः भौगोलिक एकता तथा अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति अविचल श्रद्धा तथा अगाध स्नेह का भाव राष्ट्रीयता की उत्पत्ति के लिए नितांत आवश्यक है।

### ऐतिहासिक एकता की परम्परा :

राष्ट्रीय चेतना के विकास में समान ऐतिहासिक परम्पराओं का महत्वपूर्ण योगदान है । बर्न ने ऐतिहासिक एकता को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है—'प्रत्येक राष्ट्र को अपने गौरवमय अतीत पर अभिमान होता है वास्तव में

<sup>४२</sup> डॉ चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. ११

राष्ट्रीयता के मूल में स्वर्णिम अतीत की पुनीत स्मृति है अतीत कालीन समृद्धि राष्ट्र की असामान्य विधि है । वस्तुतः हमारे पूर्वजों ने जो कुछ भी अर्जित किया है उस पर हम गर्व करते हैं और उसे पुनः भावी जीवन में साकार रूप से देखना चाहते हैं । ऐतिहासिक महापुरुषों की गौरवगाथाएँ मानव के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत है गौरवमय अतीत वर्तमान को स्फूर्ति प्रदान करता है।<sup>४३</sup> अतीत काल में किये गये वीरता के कार्य और धैर्यपूर्वक झेले गये कष्ट ही तो वे सुन्दर तत्त्व हैं जिनसे राष्ट्रीयता की भावना का पोषण होता है । अपने अतीत पर उचित गर्व वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास तथा सुन्दर भविष्य की आशाएँ ये राष्ट्रीय भावना को सजीप एवं सबल बनाते हैं । समान ऐतिहासिक संघर्ष भी राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में योग देता है। एक ही शत्रु से लड़ने से परस्पर स्नेह एवं अनुराग का भाव स्वभावतः उत्पन्न हो जाता है । सुख—दुःख, जय—पराजय तथा वैभव—पराभव में उत्पन्न अभिन्नता राष्ट्र को एक सूत्र में संगठित कर देती है परतंत्रता और संकट के समय में इतिहास के तेजस्वी चरित्र नागरिकों को कर्तव्यपथ पर अग्रसर होने का संदेश देते हैं ।

“ एक समान अतीत भी राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायक होता है अतीत के लोगों में प्रायः परस्पर सहानुभूति तथा सद्भावना अधिक होती है, वे एक साथ रहना पसंद करते हैं एक समान पूर्वजों, समान सुख—दुःखों, समान उद्यागों, समान परम्पराओं रीति—रिवाजों तथा समान सफलताओं—असफलताओं द्वारा लोगों में समान विचार धाराएँ उत्पन्न होती हैं समान धरोहर तथा समान प्रथाएँ लोगों को राष्ट्रीयता में बाँध देती हैं । ”<sup>४४</sup>

<sup>४३</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. १२

<sup>४४</sup> डॉ. आरिफ़ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. ९

### सांस्कृतिक एकता:

प्रत्येक राष्ट्र की निजी संस्कृति होती है जो उसको एक सूत्र में पिरोये रखती है रीति—व्यवहार, साहित्य, शिक्षा, कला, रहन—सहन, जीवनादर्श एवं मान्यताओं सभी का समाहार संस्कृति के अन्तर्गत हो जाता है । संस्कृति मानव के जीवन—वृक्ष का सुगन्धित पुष्प है उसकी सुगन्ध में राष्ट्र की अस्मिता अन्तर्निहित होती है । वस्तुतः वह अतीत के महापुरुषों के सहस्रों वर्षों को ज्ञान तथा जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति की युक्तियों का संचय है सांस्कृतिक एकता राष्ट्रीय चेतना की आत्मा है उसकी विभ्रंखलता मानों राष्ट्रीयता के विनाश का संकेत है सांस्कृतिक मूल्यों की विभिन्नता राष्ट्रवासियों के मध्य परस्पर भेद उत्पन्न कर देती है, किन्तु यदि सांस्कृतिक मूल्य समान होंगे तो राष्ट्रवासियों में वाह्य विभिन्नता परिलक्षित होते हुए भी उनके अन्तःकरणों में एक समान भावना की सरणि प्रवाहित होती रहेगी । उनके जीवनादर्शों मान्यताओं में साम्य होगा, युग—युग से संचित संस्कृति राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है राष्ट्रीय जीवन की सुरक्षा के लिए उसकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है । ‘राष्ट्रीय एकता की उत्पत्ति में सामान्य सांस्कृतिक एकता कारण भी है और उसका परिणाम भी ।’<sup>४५</sup> संयुक्त राज्य अमेरिका में फ्रेंच, जर्मन , इटालियन , ग्रीक आदि लोगों को समान संस्कृति का अनुसरण ही परस्पर ग्रथित किये हुये है भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता की भावना प्राचीन काल से ही रही है चार पवित्र धाम, सात पुण्यतोया नदियों, सात पवित्र पर्वत, सात पवित्र नगर शैवों के बारह ज्योतिर्लिंग तथा सूर्य के बारह प्रसिद्ध मन्दिर, सम्पूर्ण भारत में बिखरे हुए हैं ।

साहित्यिक चेतना के अभ्युत्थान में साहित्य शिक्षा और कला का भी उल्लेखनीय योगदान रहता है । राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान

<sup>४५</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. १३

करता है । राष्ट्रीय जन जागरण में साहित्य का महत्त्व असंदिग्ध है । बन्दूक के बल पर किये गये परिवर्तन, परिवर्तन कम भ्रम अधिक होते हैं जनता भयवश ही उनका पालन करती है लेकिन साहित्यकार के विचार साहित्य के माध्यम से जन-जन के हृदय में बैठ जाते हैं फ्रांस की राज्य क्रान्ति वाल्टेअर और रूसो के विचारों का ही परिणाम थी । स्वातंत्रोत्तर भारत में कृषकों के उत्थान में प्रेमचन्द्र के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता । राष्ट्रीय एकता की सुदृढता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा का विशेष महत्त्व है । राष्ट्रीय शिक्षा ही युवा वर्ग में राष्ट्र के प्रति अनन्यता और अनुराग के भाव उत्पन्न करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है । वह राष्ट्र की युवा पीढ़ी में राष्ट्रीय भावों का संचार करती है। कला, संगीत एवं नृत्य भी राष्ट्रीय ऐक्य के निर्माण में योग देते हैं । कलाकृतियों का विशिष्ट सौन्दर्य तथा संगीत एवं नृत्य का समान्य आकर्षण देशवासियों को एक रूपता प्रदान करता है। वस्तुतः “ राष्ट्रीय संस्कृति उन सभी शक्तियों के विरुद्ध रोषाग्नि प्रज्ज्वलित कर देती है जो राष्ट्रीय समाज के विकास का मार्ग अवरुद्ध करती है ” संस्कृति एवं समाज की रक्षा करना भी राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख अंग है क्योंकि सांस्कृतिक व्यक्तित्व की चेतना के अभाव में राष्ट्रीय चेतना का विकास अत्यन्त कठिन होता है मात्र राजनैतिक तथा आर्थिक एकता के आधार पर राष्ट्रीय चेतना की उत्पत्ति नहीं हो सकती और न ही किसी राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की जा सकती है । आधुनिक युग में भारत में राष्ट्रीय जन-जागरण आरम्भ हुआ तब पाश्चात्य सभ्यता ने प्रभावित व्यक्ति भी प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित हुए राम तथा कृष्ण, भीम तथा अर्जुन, बुद्ध तथा अशोक, प्रताप शिवाजी तथा गुरुगोविन्द सिंह आदि के आदर्शों ने उन्हें नवजीवन प्रदान किया और राष्ट्र बलिवेदी पर मर-मिटने के लिए प्रेरणा प्रदान की ।

संस्कृति राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग देती रही है संस्कृति से जीवन के ढंग का बोध होता है और इसकी व्यापकता मानव जीवन

के अनेक पहलू आ जाते हैं उसके कुछ स्वरूप इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है । प्रथम इसका भाषा सम्बन्धी स्वरूप है जिसकी सामान्यता राष्ट्र अथवा राष्ट्रीय चेतना के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग देती है । कुछ विचारकों के अनुसार राष्ट्रीय एकता की कल्पना बिना सामान्य भाषा के नहीं की जा सकती, जबकि राष्ट्र के लिए सामान्य भाषा का होना आवश्यक नहीं । इस प्रकार सामान्य भाषा राष्ट्र की एक मुख्य विशेषता है । भाषा के द्वारा वे एक दूसरे को समझने में समर्थ होते हैं । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का कथन है :—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।

बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥<sup>४६</sup>

एक भाषा के लाभ बताते हुए भारतेन्दु जी ने कहा है —

इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग ।

तबै बनत है सबन सों मिटत सो मूढता सोग ॥

इसी प्रकार भाषा के माध्यम से बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का कथन है—

सब दीप की विद्या, कला, विज्ञान इत चलि आवई ।

उद्यम् निर आरज प्रजा रहि सुख समृद्धि बढ़ावई ॥<sup>४७</sup>

सांस्कृति एकता को स्पष्ट करते हुये डा० नजीर मुहम्मद ने लिखा —

त्याग, स्नेह, सेवा संयम ज्ञान विवेक विचार ।

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति सार ॥<sup>४८</sup>

<sup>४६</sup> डॉ. हेमन्त शर्मा : भारतेन्दु समग्र, हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान, पृ. २२८

<sup>४७</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, दिनेश नारायण साहित्यरत्न, प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. ३३७

<sup>४८</sup> डॉ. नजीर मुहम्मद : एकता सतक, पृ. ८

### धार्मिक एकता एवं सदुभावना :

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ पुष्ट करना, बनाये रखना पुष्ट करना, धारण करना है ।

धर्म वही, वह मान दण्ड है जो विश्व को धारण करता है । ईश्वर की उपासना के मार्ग अलग—अलग हो सकते हैं । सन्त रज्जबदास का कथन है —

नारायण और नगर के रज्जब पंथ अनेक ।

कोई आवे केहि दिसि आगे स्थल एक ॥

भारतीय साहित्य में मानव धर्म की स्थापना पर अत्यन्त बल दिया गया है। धर्म के नाम पर बिखरे नहीं बल्कि एक दूसरे से मिले । प्रसाद जी ने कामायनी में सत्य कहा है :—

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,

समन्वय उसका करे समस्त,

विजयिनी मानवता हो जाय ॥<sup>४९</sup>

धार्मिक एकता प्रेम एवं सौहार्द राष्ट्रीय चेतना को सुन्दर बनाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं । इसी से वसुधैव कुटुम्बकम् की स्थापना का भाव सुदृढ़ होता है —

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

---

<sup>४९</sup> जयशंकर प्रसाद : कामायनी

धार्मिक असमानता राष्ट्रीय चेतना एकता की प्रमुख बाधा है। जहाँ धर्म का आधारभूत अन्तर पाया जाता है जैसा कि इस्लाम और ईसाईयत में है वहाँ अन्य बातों के समान होने पर भी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ और स्थायी नहीं हो पाती ।

धार्मिक ऐक्य भावना ने ही यहूदियों को दीर्घकाल तक एक सूत्र में बाँधे रखा इसी प्रकार अरबों और तुर्कों में मुख्यतः समान धर्म के कारण ही राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ । दो शताब्दी पूर्व यूरोप में एक ही धर्म दो भिन्न सम्प्रदायों— कैथोलिक एवं प्रोटेस्टैंट को मिलाकर एक राष्ट्र का निर्माण करना सम्भव हो गया तथा अनेक राष्ट्रों का निर्माण धार्मिक सम्प्रदायों के आधार पर हुआ इसीलिए १८३१ ई० में हॉलैण्ड और बल्जियम का दो राष्ट्रों के रूप में प्रादुर्भाव हुआ । यूरोप में धर्म के नाम पर खोले गये क्रूसेड्स इसका ज्वलंत उदाहरण आयरलैण्ड तथा भारत का विभाजन धार्मिक भिन्नता का ही परिणाम था तुर्की में राष्ट्रीयता के विकास में धार्मिक विरोध अत्यधिक बाधक सिद्ध हुआ ।

भारत सद्भावना के सम्बन्ध में डा. नज़ीर मुहम्मद का कथन है—

‘भारत देश विशाल में, राष्ट्रीय सद्भाव ।

अनेकता में एकता, इसका सरल स्वभाव ॥

### भाषायी एकता :

भाषा की एकता राष्ट्रीय एकता का महत्वपूर्ण आधार है । भाषा के अन्तर्गत एक सामान्य वाङ्मय तथा उच्च विचारों की सामान्य प्रेरणा का भी समावेश हो जाता है भाषा राष्ट्रीय आत्मा की वाणी है । राष्ट्र के चरित्र एवं व्यक्तित्व के निर्माण में भाषा एक अपरिहार्य साधन है । साहित्य एवं संस्कृति की एकरूपता राष्ट्रवादियों में सामान्य राष्ट्रीय भावना का संचार करती है । एक सामान्य भाषा द्वारा निर्मित इतिहास तथा नैतिकता एवं आचार व्यवहार सम्बन्धी मूल्य राष्ट्रीय चेतना के संचार में सहायक होते हैं । भाषा द्वारा मनुष्य अपने संचित ज्ञान जीवन



के विविध प्रकार के अनुभवों तथा आदर्शों को भावी पीढ़ी के लिए छोड़ जाता है। राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने का सफल आधार होने के कारण अनेक विद्वानों ने भाषा की एकता को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया है। वास्तव में “राष्ट्रीय संस्कृति के विकास तथा राजनीतिक आत्मनिर्णय की प्राप्ति कर राष्ट्र के निर्माण के लिए भाषा का पुनरुद्धार और गौरवान्वयन सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन माना गया है।”<sup>१०</sup>

प्रत्येक राष्ट्र अपनी भाषा पर गर्व करता है भाषा का उत्तरोत्तर विकास भी राष्ट्र के उत्थान का परिचायक है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका की भाषा अंग्रेजी है लेकिन शब्दों की वर्तनी के अन्तर को भी वहाँ राष्ट्रीय महत्व प्राप्त है विश्व के अनेक राष्ट्रों में यद्यपि एकाधिक भाषाएँ बोली जाती हैं तथापि इनकी एक सर्वमान्य भाषा होती है जिसका महत्व सभी स्वीकार करते हैं। सोवियत संघ के भिन्न-भिन्न भागों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं तथापि प्रधानता रूसी भाषा को ही प्राप्त है किन्तु आज भाषा की समानता भी राष्ट्रीय चेतना के लिए नितान्त अपेक्षित नहीं है। स्विटजरलैण्ड में फ्रांसीसी, जर्मन और इटालियन तीन भाषा प्रचलित हैं तथा भारत के अनेक प्रान्तों में विभिन्न भाषा का प्रयोग किया जाता है। तथापि इन राष्ट्रों के निवासियों में राष्ट्रीय भावना विद्यमान है जबकि अमेरिका तथा कनाडा में एक ही भाषा बोली जाने पर भी वे अलग-अलग राष्ट्र हैं फिर भी इतना निश्चित है कि विभिन्न भाषा के होते हुए एक राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ नहीं हो सकती है। “राष्ट्रभाषा के प्रति सजीवता तथा उसके नित्य प्रयोग के प्रति जागरूकता राष्ट्रीयता की सूचक है। जीवन के मानदण्डों एवं लक्ष्यों तथा रीति-रिवाज व्यवहारों एवं आकांक्षाओं की समानता भी व्यर्थ सिद्ध होगी, यदि उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा समान नहीं है — हेज के अनुसार — ‘विद्वानों तथा साधारणों को यह बात समान रूप से स्पष्ट होनी चाहिए कि राष्ट्रीयता का सर्वाधिक असंदिग्ध चिह्न भाषा है’” भाषा की एकता के

<sup>१०</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा और श्याम नारायण का काव्य, पृ. १६

### भावात्मक एकता:

राष्ट्रीय ~~चेतना~~ के निर्माण के लिए भावात्मक एकता सर्वप्रथम आवश्यकता ही नहीं अपितु अनिवार्य तत्त्व है । राष्ट्रीय चेतना के आधार विचारमूलक अवश्य है किन्तु वह भावनामय अधिक है । किसी वनप्रांत, मरुस्थल अथवा निर्जन—भूखण्ड को राष्ट्र नहीं कह सकते इसके अतिरिक्त इस संसार में ऐसे द्वीप भी हैं जहाँ मानव का निवास है लेकिन वहाँ किसी राष्ट्रीय चेतना का विकास नहीं हुआ किसी विशिष्ट भू—भाग के अन्तर्गत रहने वाला जनसमूह ही देश कहलाता है किन्तु राष्ट्र मात्र भौगोलिक सीमाओं तक जनसमूह का समुच्चय नहीं है उसको राष्ट्र की संज्ञा तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक उसके निवासियों में भावात्मक एकता का प्रसार नहीं होता । क्योंकि 'राष्ट्र जाति' धर्म एवं भाषा की एकता का नाम नहीं है, वह भावना की एकता नाम है । राष्ट्र एक ऐसी आत्मा है जिसकी जड़ें मनुष्य के हृदय की गहराईयों में है न कि देश जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म इन पांचों की एकता में है। यदि ये पांच तत्त्व सहायक न मानकर अनिवार्य माने जाये तो अमेरिका स्विटजरलैण्ड आदि देश राष्ट्र की संज्ञा नहीं पा सकेंगे । स्वदेश के प्रति अविचलश्रद्धा के अभाव में किसी राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता । राष्ट्र के निर्माण के लिए स्वदेश के प्रति अडिगश्रद्धा सर्वप्रथम शर्त है भौगोलिक स्थिति अवरोध उत्पन्न करती, ऐतिहासिक विरोध अलग करता है सांस्कृतिक असमानता विलग करती है जातीय विभिन्न संकीर्णता का जनक है, धर्म भेदों को उत्पन्न करता है भाषा अलग करती है । आर्थिक विषमता संघर्षों को जन्म देती है तथा राजनीति विभाजन करती है किन्तु राष्ट्र भूमि के प्रति ममत्व, जन्म—भूमि के प्रति स्नेह और स्वदेश के प्रति भावात्मक अनुभूति राष्ट्र के निवासियों को एक सूत्र में ग्रथित कर देती है । राष्ट्र केवल मात्र नदियों, पहाड़ों, मैदानों, कंकड़ों के ढेर से नहीं बना । यह केवल भौतिक इकाई नहीं है इसके लिए देश में रहने वाले लोगों

के हृदयों में उसके प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होना प्रथम आवश्यकता है; राष्ट्र-भूमि के प्रति असंदिग्ध समर्पण की राष्ट्र निर्माण ही आधार है ।

### राजनैतिक एकता:

राजनैतिक एकता तथा सामान्य राजनैतिक आकांक्षाएँ भी राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में आवश्यक तत्त्व है । राजनैतिक आकांक्षा की समानता का अभिप्राय एक ही शासन सूत्र में बंधे रहने की भावना है । प्रो० रोज ने राजनैतिक एकता को ही राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की है । हेंस कोहन ने राष्ट्रीयता का उद्भव ही मानव-समुदायों की समान राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत संगठन की प्रक्रिया से माना है । राष्ट्र राष्ट्रीयता का साकार रूप है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र नागरिकों को यह आकांक्षा होती है कि उनका एक स्वतंत्र हो जो उनके द्वारा शासित हो भारतीयों की सामूहिक राजनैतिक आकांक्षा तभी पूर्ण हुई जब निरंतर संघर्षों के अनन्तर भारत स्वतंत्र हुआ राष्ट्र एवं जाति की उन्नति तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा की दृष्टि से राजनैतिक एकता का महत्व अपरिहार्य है राजनैतिक एकता राष्ट्रीय भावना की परिपक्वता की सूचक है राष्ट्रवासी राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा के लिए असंख्य बलिदान करते हैं जो राष्ट्र भिन्न-भिन्न राज्यों में विभाजित है वे एकीकृत तथा पराधीन है, वे स्वाधीन होने का प्रयास करते हैं वस्तुतः वर्तमान युग का इतिहास प्रकारान्तर से राष्ट्रों के एकीकरण तथा स्वाधीनता प्राप्त करने के निमित्त किये गये आन्दोलनों का ही इतिहास है । गिलक्रास्ट के अनुसार “ राष्ट्रीयता के निर्माण के लिए एकता के जितने प्रकार आवश्यक हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक एकता ही है ।

### भारत राष्ट्र :

भारत एक विस्तृत एवं विशाल देश है । कश्मीर से लक्षद्वीप, राजस्थान से अण्डमान निकाबार, हिमालय से हिन्द महासागर, कच्छ की खाड़ी से बंगाल की

खाड़ी तक फैले विशाल भू-खण्ड का नाम भारत है । भौगोलिक रूप में इसका क्षेत्रफल ३२,८६,२६३ वर्ग कि.मी. है भारत वर्ष विश्व का सातवाँ विशालतम देश है तथा यह शेष एशिया के पर्वतों और समुद्र द्वारा अलग है जिससे इसका स्वतंत्र भौगोलिक अस्तित्व है । कवि राधाचारण गोस्वामी ने भारत महिमा का वर्णन करते हुए कहा है—

हमारे उत्तम भारत देश

जाके तीन ओर सागर है उत हिमगिरि अतिवेश

श्री गंगा यमुनादि नदी है विन्ध्यादिक परिवेश ।<sup>५१</sup>

भारत के समीपवर्ती देशों में उत्तर पश्चिम में पाकिस्तान और अफगानिस्तान है इसके उत्तर में चीन, नेपाल, और भूटान है पूर्व में बर्मा और पश्चिम बंगाल के पूर्व में बंगला देश स्थित है । मन्नार की खाड़ी और जल डमरूमध्य भारत को श्रीलंका से अलग करते हैं ।

इस देश का नाम भारत किस समय रखा गया इसकी निश्चित तिथि देना कठिन है । अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी तथा भूमि अथवा माता भूमि शब्दों का प्रयोग किया गया है महाभारत और पुराणों के समय में सारे देश के लिए भारत वर्ष नाम प्रचलित हो गया था महाभारत के भीष्म पर्व में भारत की बहुत प्रशंसा की गई है । विशाल देश भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने वाली अनेक विभूतियाँ हुई हैं जिनमें भगवान राम, भगवान् कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा महावीर, स्वामी शंकराचार्य, गुरु नानकदेव, संत कबीर, निजामुद्दीन औलिया शेख सलीम चिश्ती, तिरू (संत) वल्लुवर रामानुजाचार्य (मद्रास) भक्त त्यागराज आदि विशेष हैं समग्र मातृभूमि पुण्यभूमि है तथा वही भारत है पृथ्वी माता है तथा जन सच्चे अर्थों में पृथ्वी का पुत्र है —

<sup>५१</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु, पृ.

माता भूमि ! पुत्रोऽहं पृथिव्याः

(भूमि माता है मैं उसका पुत्र हूँ) ।

भारत माता की वास्तविक मूर्ति तो उसकी सांस्कृतिक मूर्ति है जिसका निर्माण देशवासियों ने शताब्दियों तथा सहस्राब्दियों की हलचल के बाद किया है यह गौरव की बात है कि भारत की सांस्कृतिक धारा अजस्र रूप से प्रवाहित रहती है ।

भारत वर्ष के लिए हिन्दुस्तान तथा इंडिया नाम भी प्रचलित है नाम विदेशियों के दिये हुए सातवीं शताब्दी में इत्सिंग नामक एक चीनी यात्री भारत आया था, उसने लिखा है मध्य एशिया के लोग भारत वर्ष को हिन्दू कहते हैं; यद्यपि यहाँ के लोग इस प्रेम को आर्य देश कहते हैं । इसका कारण मध्य एशिया तथा पश्चिमी जगत के लोगों का भारत में पश्चिमोत्तर मार्ग से आना है । सिन्धु नदी भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के पास पड़ती थी उधर से आने वाले लोग सिन्धु नदी से ही इस देश की पहचान करते थे । उनमें से ईरान तथा उसके आस-पास के लोग 'स' का सही उच्चारण न कर सकने के कारण सिन्धु को हिन्दू कहने लगे तथा यूनान के लोग 'स' और 'द' का सही उच्चारण नहीं कर सकने के कारण हिन्दू को इंडो कहने लगे इस प्रकार आर्यावर्त का नाम "हिन्दू" हिन्दुस्तान " तथा "इंडो" "इंडिया" चल पड़ा ।

भारत राष्ट्र के अन्तर्गत अनेक राज्य हैं जिनके नाम हैं । आंध्र प्रदेश, जम्मू—कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मिजोरम, नागालैण्ड, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, मेघालय, पंजाब, राजस्थान, उड़ीसा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, आसाम, अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गोआ, ~~खण्ड~~ केन्द्र शासित प्रदेश हैं अंदमान और निकोबार द्वीप समूह, चण्डीगढ़ दादरा और नगर हवेली, दमन और द्वीप, लक्षदीप और पांडिचेरी ।

भारतवर्ष में अनेकानेक प्रदेश, अनेकानेक नगर, अनेकानेक गाँव अनेकानेक धर्म, जाति, मजहब, के होते हुए भी भारत वर्ष सांस्कृतिक दृष्टि से एक है । गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगौर (१८६१—१९४१) द्वारा लिखित भारत के राष्ट्र गीत में समस्त भारत के निवासियों ने एक स्वर में भारत भाग्य विधाता की वंदना की है —

जन—गण—मन अधिनायक, जय हे, भारत भाग्य विधाता

पंजाब—सिन्धु—गुजरात—मराठा—द्राविड़—उत्कल बंग

विंध्य—हिमाचल—यमुना—गंगा उच्छल जलधि—तरंग ।

तब शुभ नामे जागे, तब शुभ अशिष मांगे

गाहे तब जय—गाथा

जन—गण मंगलदायक जय हे भारत भाग्य विधाता

जय हे, जय हे, जय है, जय जय जय जय है ।<sup>५२</sup>

विश्व के लगभग सभी देशों में धर्म, जाति, एवं भाषा का भेद संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक जातियाँ हैं तथा अनेक भाषाएँ प्रचलित किन्तु एक केन्द्रीय भाषा है तथा वहीं सबको जोड़ने का कार्य करती है स्विटजरलैण्ड में जर्मन इतालवी तथा फ्रांसीसी तीन भाषाएँ बोली जाती हैं फिर भी वह एक सुसंगठित राष्ट्र है ।

हमारे देश में भेद और अभेद दोनों हैं किन्तु देश में अनेक समाज विरोधी तत्वों तथा राजनीतिक नेताओं ने स्वार्थ भेदों को अधिक विस्तार दिया जिससे देश में फूट की लहर पनपे तथा देश में अशान्ति का वातावरण बना रहे तथा स्वार्थी तत्व ऐसे विषम वातावरण में अपने स्वार्थ सिद्ध कर सके असामाजिक तत्वों द्वारा

<sup>५२</sup> आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सदैव हमारी एकता की उपेक्षा की गयी उसे नगण्य सिद्ध किया जाता रहा है इससे देश विदेश में भारत की छवि बिगड़ी है तथा देशवासियों में हीनता की भावना आई है भारत की विशालता विस्तृतता से हम सभी परिचित हैं भारत देश में विस्तृत पर्वतमाला है अनेक नदियाँ हैं बहुत से नगर हैं किन्तु राष्ट्रीय सद्भावना को सदैव दृष्टि में रखा गया है । हमारे पूज्य महापुरुषों के समीप्य के कारण सम्पूर्ण देश में फैले अनेक नगर मोक्षदायी स्थल के रूप में स्मरणीय माने जाते हैं:—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिकाः ॥<sup>५३</sup>

देश में फैली पर्वतमाला तथा नदियों के बहुत से गुण हैं देश के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं किन्तु इनके कुछ अवगुण भी हैं इनका एक दोष देश को विभिन्न भागों विभाजित करना है इससे लोगों में क्षेत्रीयता तथा प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना पनपती है किन्तु देश की सभी नदियाँ श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं ।

भारत की नदियों के माध्यम से सम्पूर्ण भारत को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधने का ध्यान उपासना आदि में भी रखा गया है । देवताओं की पूजा के लिए कलश में जो जल रखा जाता है उसे सम्पूर्ण भारत से लाया हुआ माना जाता है ।

गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती ।

नर्मदा, सिन्धु, कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु ॥<sup>५४</sup>

<sup>५३</sup> वही, पृ. १७

<sup>५४</sup> आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १७

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही धर्मपरायण देश रहा है। यहाँ के आध्यात्मिक जीवन की अत्यंत प्रशंसा की गयी है । भारतीय संस्कृति में भौतिक सुखों की अपेक्षा आध्यात्मिक आदर्शों को अधिक महत्व दिया गया है । विष्णु पुराण में स्वर्ग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति का साधन भारत को बताते हुए कहा गया है कि धन्य हैं वे लोग जो भारत—भूमि के किसी भाग में उत्पन्न हुए । वह भूमि स्वर्ग से बढ़कर है क्योंकि वहाँ स्वर्ग के अतिरिक्त मोक्ष की साधना की जा सकती है स्वर्ग में देवत्व भोग लेने के बाद देवता मोक्ष की साधना के लिए कर्म—भूमि भारत में फिर जन्म लेते हैं ।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि

धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते

भवति भूय! पुरुषा सुरत्वात् ॥ (विष्णु २, ३, २४)

प्रसाद द्वारा चन्द्रगुप्त नाटक में लिखे गये देश—प्रेम पर आधारित गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥

धार्मिक एकता एवं सद्भावना पर जोर देते हुए डा० सर इकबाल ने कहा—

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना ।

हिन्दी है हम वतन हैं हिन्दोस्तॉ हमारा ॥

विशाल देश भारत में स्थान—स्थान की जलवायु भी भिन्न—भिन्न प्रकार की है देश के उत्तरी छोर पर कश्मीर है, जिसकी जलवायु मध्य एशिया की जलवायु



जैसी है । भारत के दक्षिणी किनारे पर कुमारी अन्तरीप हैं जहाँ का रहन—सहन एवं जलवायु श्रीलंका से मिलते हुए हैं देश में एक स्थान चेरापूँजी है जहाँ वर्ष में पाँच सौ इन्च से अधिक वर्षा होती है तथा दूसरा स्थान थार की मरूभूमि है जहाँ वर्षा होती ही नहीं अथवा नाममात्र को होती है धरती की रूपरेखा तथा जलवायु का प्रभाव इस क्षेत्र में रहने वाली जनता के मन—मस्तिष्क एवं विचारों पर भी पड़ता है पहाड़ और रेगिस्तान का जीवन कठिन होता है इसीलिए यहाँ के लोग परेशानी सहन करते—करते प्रायः बलिष्ठ स्वभाव के तथा आजाद खयाल के होते हैं । नदियों और पहाड़ों के इलाके में रहने वाले की अपेक्षा सरल होता है । इसलिए बिहार बंगाल तथा उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्ति वैसे मजबूत नहीं होते जैसे राजस्थान के राजपूत तथा उत्तर पश्चिमी भारत के औसत सिक्ख और पठान होते हैं ।

जलवायु तथा क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार व्यक्तियों के पहनावे ओढ़ावे तथा खान—पान में भी अन्तर आता है खादी की धोती तथा कुर्ता, देश का आदर्श पहनावा माना गया है किन्तु उसे बर्फीले इलाके में रहनेवाले कश्मीरी आसानी से नहीं पहन सकते ।

भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं । भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अठारह भाषाएँ स्वीकार की गयी हैं । देश के उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी तथा उर्दू, पूर्व में उड़िया, बंगला और असमिया, मध्य पश्चिमी में मराठी और गुजराती तथा दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ मलयालम आदि भाषायें मुख्यतः प्रचलित हैं इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक भाषाएँ हैं जो भाषा विज्ञान तथा साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ऐसी भाषाओं में कश्मीरी, डोगरी, सिन्धी कोंकड़ी आदि भाषाओं के नाम लिए जा सकते हैं । भाषा भेद के कारण भारतवासी आपस में भी अजनबी हो जाते हैं भाषाओं की भाँति देश में लिपि भी अनेक प्रचलित हैं महान् सन्त विचारक आचार्य विनोबा भावे ने सत्य ही लिखा

है—“हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत ज्यादा काम देवनागरी देगी इसलिए मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की समस्त भाषाएँ देवनागरी लिपि में भी लिखी जायें । इसका मतलब दूसरी लिपियों का निषेध नहीं सभी भाषाएँ अपनी—अपनी लिपि में भी लिखी जायें और देवनागरी लिपि में भी मैं ‘भी’ वाला हूँ ‘ही’ वाला नहीं विनोबा जी नागरी ‘ही’ नहीं नागरी ‘भी’ के समर्थक थे ।

भारतवर्ष में अनेक प्रकार के अनमेल तत्त्वों ने यहाँ एक साथ मिलकर रहने की पद्धति स्वीकार की तथा भेदों की अपेक्षा साम्य को आगे रखकर यहाँ के मैत्री भाव तथा सहिष्णुता को महत्त्व दिया । गुरु देव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सत्य ही कहा है ।

हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य हेथाय द्राविण—चीन,

शक—हूणि—दल, पठान—मोगल एक देहे होलो लीन ॥

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में जो एकता की भावना पर बल दिया गया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । आज भी विश्व के लिए ये विचार उपादेय है परमत्तत्त्व तक पहुँचने के मार्ग हो सकते हैं यद्यपि सत्य का शिखर एक है मनुष्य ने रुचि भेद से वहाँ तक जाने के अनेक मार्गों का आविष्कार किया है भारतीय संस्कृति सबको आदर की दृष्टि से देखती है, इससे सहिष्णुता की भावना को बल मिलता है धर्म के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा गया है कि वही धर्म श्रेष्ठ है जो दूसरे धर्म में बाधा न पहुँचाये —

धर्म यो बाधते धर्मः न स धर्मः कुधर्म तत्

अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रमः ।

धर्म एवं संस्कृति मनुष्य को सदैव प्रभावित करते रहे हैं भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि अनेक धर्मों को मानने वाले रहते हैं । देश में

विविध धर्मों के प्रचलित होते हुए भी सभी के बीच सांस्कृतिक है । प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने सभी धर्मों को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग माना है उन्होंने 'अखरावट' में कहा है—

विधना के मार्ग हैं तेते । सरग नखत तन रोवां जेते ।

त्याग—तप, मध्यम मार्ग एवं संयम की भावना हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, सम्प्रदायों में समान रूप से विद्यमान है एक धर्म के आराध्य दूसरे धर्म महापुरुष की दृष्टि से देखे गये हैं— भगवान बुद्ध तो अवतार ही माने गये हैं— “ कलियुगे कलिप्रथमचरणे बुद्धातारे ” कह कर बुद्ध का पुण्य स्मरण किया जाता है । जैन धर्म—ग्रंथों में भगवान राम और कृष्ण को सादर स्थान मिलता है भगवान ऋभदेव की श्रीमद्भागवत में सादर उल्लेख हुआ है हिन्दू धर्म में विशेष रूप से पूज्य देवी देवताओं को मुसलमानों ने भी विशेष आदर दिया है ।

भक्त कवि रसखान जन्म जन्मान्तर में भगवान कृष्ण से अपना निकट सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं —

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन ।

जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥

पाहन हौं तो वह गिरि को जु कियौ ब्रज छत्र पुरंदर धारण ।

जो खग हौं तो बसेरो करौं नित कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा की शिक्षा हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से दी गयी है ओंकार मंत्र तथा स्वस्तिक चिह्न हिन्दू और जैनों में समान रूप से मान्य है । कमल पीपल तथा पीपल बौद्धों हिन्दुओं में समान रूप से पूजनीय माने गये हैं पारसियों और हिन्दुओं अग्नि की पूजा को समान महत्व दिया गया है पारसी लोग गौ मांस नहीं खाते सिक्ख गुरुओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा

के लिए अनेक कष्ट एवं अत्याचार सहन किये गुरू नानक देव, गुरू गोविन्द सिंह आदि ने हिन्दी में काव्य रचना की गुरू नानकदेव ने भावात्मक एकता बल देते हुए कहा है —

समि महि जोति—जोति है सोई

तिस दै चानाणि महि चानण होई ।

मुसलमान और ईसाई धर्म एशियाई धर्म होने के कारण भारतीय धर्मों से पर्याप्त समानता रखते हैं यूरोप से पहले ईसाई धर्म को दक्षिण भारत में स्थान मिला । महाभारत में कहा गया है— आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचेत' लगभग यही कथन ईसामसीह ने इस प्रकार कहा है “ दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो मौलिक सिद्धान्तों में सभी धर्म एक समान हैं भारत के सभी भागों में एक से मन्दिर मस्जिद मिलते हैं यह भी देश की एकता का प्रमाण है ।

मुसलमानों तथा ईसाईयों ने भारतीय धर्मों को प्रभावित किया है तथा भारतीय संस्कृति एवं भारतीय धर्मों से प्रभावित हुए हैं, देश—विदेश के अनेक ईसाईयों ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है भारतीय सूफी मुसलमानों कवियों ने वेदांत की भाव भूमि को अपनाया है तथा उनके ग्रन्थों में हिन्दू परम्पराओं विचार धाराओं देवी—देवताओं का सादर समावेश हुआ है सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने श्री कृष्ण के चरित्र पर आधारित ग्रंथ “कन्हावत” लिखा तानसेन और ताज पर हिन्दू मुसलमान सभी गर्व करते हैं मुसलमान कवयित्री ताज तो भगवान कृष्ण के भक्ति भाव होकर कहती है—

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी,

तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहौंगी मैं,

× × ×

नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै,

ताड़ ज्वाल प्यारे हिन्दुस्तानी है रहूंगी मैं ।

यह पृथ्वी अनेक भाषाओं को बोलने वाले अनेक धर्मों को मानने वाले विधि प्रकार के जनधारण करती है इससे स्पष्ट है कि सहस्रों वर्ष पूर्व से ही हमारी मातृभूमि पर भाषा, धर्म तथा मन की विविधता रही है । किन्तु इन सबको एकता के सूत्र में बाँधने वाला तत्त्व स्वयं मातृभूमि है एक मूल तत्त्व का विविध रूपों में वर्णन यही हमारे राष्ट्र का दृष्टिकोण है —

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । ऋग्वेद १/१६८/४६

मातृभूमि की सच्ची वन्दना ही हमारे राष्ट्रीय उद्बोधन का मन्त्र

नमो मात्रे पृथिव्यै,

नमो मात्रे पृथिव्यै,

नाहि माता पुत्रं हिनस्ति,

न पुत्रो मातरम् ॥

मातृभूमि को प्रणाम । मातृभूमि को प्रणाम, माता पुत्र का नाश नहीं करती ।  
पुत्र भी माता की हिंसा न करे ।

चेतना का अभिप्राय :

चेतना का शाब्दिक अर्थ ज्ञानमूलक मनोवृत्ति है अर्थात् वस्तुओं, विषयों व्यवहारों का ज्ञान । चेतना की परिभाषा कठिन है चेतना व्यक्ति सापेक्ष्य सूक्ष्म स्वतन्त्र एवं गतिशील वस्तु है । आध्यात्मिक चिंतकों एवं अनुभवी मनीषियों ने क्रिया संवेदना के कारण एवं आधार भूत शक्ति को चेतना कहा है । चेतना को संस्कृत के विद्वानों एवं आचार्यों ने बुद्धि, ज्ञान, जीवनी, शक्ति भावना अथवा

विचार के अर्थ में ग्रहण किया है । धी, मति, चित संवित, प्रतिपत्, ज्ञपित सत्त्व एवं जीवन्त के अर्थ में भी चेतना का प्रयोग किया गया है ।

हरबर्ट रीड ने चेतना को एक विश्लेषण की संज्ञा दी है जो किसी परिणति पर अनुभूति का स्वरूप धारण कर लेती है । वही चेत, ज्ञान, होश और चैतन्य का भी वाचक है जो जीव प्राणी अन्तर्वाह्य तत्त्वों का ज्ञान कराती है।

चेतना विश्व अस्तित्व बोध की एक परिमाण इकाई है कवि चेतना के माध्यम से ही स्वयं विश्वानुभूतियों के केन्द्रबिन्दु बनकर एक विशिष्ट नवसर्जन करता है । अस्तित्ववादियों का 'अस्तित्व' वह चेतना सम्पन्न क्रियाशील अनिश्चित अंश है जो सृष्टि में मानव मात्र में ही लक्षित होता है । जो मानव वाणी के माध्यम से व्यक्ति मन विचारों के साथ ही एक परिवर्तनशील इकाई है ।

विलियम जैम्स ने चेतना को विचार की धारा माना है । उसको पाँच लक्षणों में विभाजित किया है । वैयक्तिक चेतना को प्रमुखता दी है । चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्य से प्रवाहित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से यह मननशील चेतना संकल्प शक्ति गतिशील बनती है । भाषा के द्वारा विचार एवं स्मृति का स्वरूप भी देती है । चेतना विचार एवं निर्णय में पूर्णतः मुक्त होती है, और वह मुक्तावस्था ही उसकी पीड़न और चिन्ता का मूल कारण है क्योंकि अभाव मानवीय चेतना के साथ ही उपजता है अर्थात् चेतना भी अभावग्रस्त है । चेतना स्वयं इच्छा स्वरूप है इसीलिए तो वह इच्छापूर्ति के लिए सक्रिय रहती है और इच्छा स्वतः गोत्रजा है। 'इस चेतना की अस्तित्ववादी एक साधन या पद्धति के रूप में मानते हैं । उसकी सृष्टि में चेतना मानव अस्तित्व के सहज रूप स्वरूप के उद्घाटन में सहायक है उनका उद्देश्य की धारणा बनाना नहीं, अस्तित्व के सजीव अनुभव प्रभावपूर्ण ढंग से पकड़ना है आत्मचिंतन या मनन की शक्ति का अर्थ प्राचीन आचार्यों ने जन्मान्तर्गत ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा माना है । आज उसे ही प्रबल व्यक्ति चेतना मान लीजिए ।

फ्रायड ने मन की चेतन पूर्ण चेतन तथा अवचेतन जैसी तीन शक्तियों की कल्पना की है, जिसमें पूर्ण चेतन तो चेतना का ही अंश है और अवचेतन इन दोनों से विल्कुल भिन्न और अधिक प्रमुख चेतन मन में जहाँ सामाजिक मान्यताएँ सक्रिय रहती हैं, वहाँ अवचेतन में बहुत सी सामाजिक इच्छायें केन्द्रित रहती हैं ।

“चेतना की संप्रेषणीय शक्ति को ही भारतीय आर्ष चिन्तन परम्परा में वाक् कहा गया है वह वाग्देवता है वाग्देवी हैं, चेतना की उदात्त अभिव्यंजना तब होती है जब चित्त भूमि संस्कार, परिष्कार तथा उसमें श्रद्धा, आस्था, निष्ठा सात्विकता एवं पवित्रता का परिस्फुटन होता है । वैदिक वाक् को परावाक् कहा गया है । परावाक् को जानने के लिए आत्म—साधन ही यज्ञ है ।<sup>५५</sup>

प्रो. श्यामाचरण दुबे का कथन है कि, “ दृष्टि को व्यापकता प्रदान करती है और मानव के मानसिक क्षितिज का विस्तार करती है वस्तुतः मानसिक क्षितिजों का विस्तार ही चेतना का नवोन्मेष है और यह चेतना चिन्मयता है, अलौकिकता है और जीवन के परम आनन्द का उत्स है ।

चेतना की पूर्णता आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों में है । चेतना केवल इन्द्रिय ग्राह्य बिम्बों का समुच्चय नहीं है भावना, उद्देश्य, मूल्य और विवेक भी चेतना के ही अंग हैं । विज्ञान चेतना के उन्हीं रूपों की व्याख्या करता है जो इन्द्रिय ग्राह्य बिम्बों से सम्बद्ध होते हैं । वैज्ञानिक युग में हमें भौतिकवादी दृष्टि को सर्वापरि मानते हैं । विज्ञान का अध्यात्म चिन्तन करना चाहिए तथा अध्यात्म का विज्ञान से । इस तरह दोनों के समन्वय से चेतना की पुष्टि होती है और उसका परिणाम मानवता की रक्षा—सुरक्षा में संबल प्रदान करना होता है ।

आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध कवि एवं आलोचक सुमित्रानन्दन ‘पंत’ ने कहा है—

“ चेतना मनुष्यत्व का सार,

<sup>५५</sup> डॉ. अजब सिंह : चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, पृ. १४—१५

चेतना वस्तु जगत् का प्राण ।

चेतना करते नव संचार,

मिटाने बहिरंतर जन दैन्य ॥

प्रसाद की छायावादी रचना 'कामायनी' में यथार्थवादी मानवतावादी चेतना को व्यापक फलक पर नियोजित करके अखण्ड मानववादी चेतना को सम्पूर्णता में रेखांकित किया है । इस प्रकार 'कामायनी' राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ विश्व संस्कृति का उद्घोष करती है । सामरस्य सिद्धान्त के आधार पर 'कामायनी' में आनन्दवाद का उत्स-निर्झर प्रवाहित होने लगता है । प्रसाद ने समस्त चेतना को आनन्दमय रूप प्रदान किया है ।

समरस थे जड़ या चेतन,

सुन्दर साकार, बना था,

चेतना एक विलसती,

आनन्द अखण्ड घना था ।<sup>५६</sup>

अज्ञेय ने लिखा है कि— चेतना ही समृद्ध होकर बुद्धि की अभिधा प्राप्त कर लेती है । उनका कथन है —“ चेतना तो प्रत्येक मानव में है परन्तु यह चेतना उस सीमा तक अपेक्षाकृत बहुत कम व्यक्तियों में पहुँचती है, जिस पर पहुँचकर वह बुद्धि की अभिधा प्राप्त कर सके । ”<sup>५७</sup>

सभ्यता की वर्तमान अवस्था की मूल विसंगति यही है कि उसने साधनों के विकास और नियंत्रण की दौड़ में साध्य को भुला दिया है तब परिणाम यह निकलता है कि परिस्थिति का सुधार करने के लिये यह आवश्यक है कि वह जीवन के लिये नये साध्य नये उद्देश्य खोज निकाले, नये आदर्शों की प्रतिष्ठा करे किन्तु आदर्श तो मानव की चेतना के ही अनुरूप हो सकते हैं ।

<sup>५६</sup> डॉ. अजय सिंह : चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, पृ. ५९-६०

<sup>५७</sup> डॉ. रामचन्द्र तिवारी : साहित्य-निकष, पृ. १९६



मानवीय चेतना के लिए मुख्य रूप से तीन चीज आवश्यक हैं — सत्ता, सम्पत्ति और सुख, यह ही मानव के नये आदर्शों की स्थापना करे अर्थात् उसके कर्म एक नये प्रकार की प्रेरणा द्वारा अनुप्राणित हो— मानव ही एक नये प्रकार का प्राणी हो यदि हमारा अब तक का विकास कुछ भी अर्थ रखता है तो उसकी मांग यह है कि जहाँ तक पहुँच गये हैं उससे आगे बढ़ने के लिए मानवीय चेतना को परिष्कृत करना, उसे नया संस्कार देना अनिवार्य है । अज्ञेय ने चेतना के विकास का संस्कृति के विकास से जोड़कर देखा है । उनका कथन है—“ मानव की अधिक विकसित चेतना किस ओर उन्मुख होगी ? चेतना है, तो उसका कोई विषय होना अनिवार्य है । जिसकी चेतना वह हो सके । चेतना के ऊँचे या नीचे सार की परख उसके विषय की सूक्ष्मता अथवा स्थूलता से ही हो सकती है । निस्संदेह ऐसी विचारधारा हमें एक प्रकार के नूतन रहस्यवाद की ओर ले जाती है ।

चेतना वह तत्त्व व शक्ति है जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदन कराती है, सूक्ष्म विश्लेषण करने पर निखिल सृष्टि के समस्त पदार्थ या तो जड़ है उनमें संवेदना इच्छा और सजग क्रिया का नितान्त अभाव होता है । चेतना चल है । उनमें संवेदना है, इच्छा है और सजग क्रिया है जब यह प्रश्न किया जाता है कि इन दोनों में कौन सा प्रधान है तो उत्तर दो प्रकार के मिलते हैं एक अन्तर उन भाववादियों व आत्मवादियों का है जो चेतना को प्रधान ही नहीं मानते वरन् पदार्थ जगत मात्र की चेतना से ही जनित मानते हैं वे चेतना को ही सारी सृष्टि का आधार मानते हैं दूसरा उत्तर भौतिकवादियों का है जो चेतना को जड़ तत्त्व के परमवंशों की विशिष्ट गतियों की परिणति मानते हैं इधर चेतना प्रवाहवाद ने साहित्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया है ।

### चेतना का प्रवाह :

“चेतना की पूर्णता एवं प्रवाह आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों में चेतना केवल इन्द्रिय ग्राह्य बिम्बों का समुच्चय नहीं है भावना, मूल्य और विवेक भी चेतना के ही अंग हैं । विज्ञान चेतना के उन्हीं रूपों की व्याख्या करता है जो इन्द्रिय ग्राह्य बिम्बों से सम्बद्ध होता है । यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक युग में हम भौतिकवादी दृष्टि को सर्वोपरि मानते हैं और मानव मूल्यों में भावना तथा जीवन के उदात्त उद्देश्यों की ओर हमारी दृष्टि भी नहीं जाती । विज्ञान का आध्यात्म से चिंतन करना चाहिए तथा आध्यात्म विज्ञान से इस तरह दोनों के समन्वय से चेतना पुष्ट होती है । उसका परिणाम मानवता की रक्षा सुरक्षा में संबल प्रदान होता है।”<sup>५८</sup>

सुप्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स के मतानुसार मानव चेतना का प्रवाह तर्कगत नियमों से सर्वथा मुक्त है । विश्रृंखल की इस प्रवाह का धर्म है और जिस प्रकार सागर में एक क्षण विशेष में अनेक तरंगें उठती हैं । उसी प्रकार व्यक्ति मानस भी प्रतिक्षण अग्रणीत श्रृंखलाहीन अनुभूतियों एवं विचारों से प्लावित होता रहा है । सत्रहवीं शती के अंग्रेज कवि, एवं पादरी जॉन डन्य ने लिखा है कि, “ जब मैं प्रार्थना के समय अपने मन को एकाग्र करने की चेष्टा करता हूँ उसी क्षण विगत काल के सांसारिक विकास की स्मृति भावी कल की आशांकायें मेरे नेत्रों में धूमिल प्रकाश ये सब प्रकट और प्रच्छन्न हेतु मेरे मस्तिष्क को आक्रान्त करते हुए मेरी चेष्टा को असफल कर देते हैं । डन्य का अनुभव इसी चेतना का प्रवाह का एक सजीव उदाहरण है । “चेतना प्रवाह के इस सिद्धान्त ने समकालीन उपन्यास साहित्य के शिल्प विधि के क्षेत्र में एक नया युग आरम्भ किया ।

<sup>५८</sup> डॉ. अजब सिंह : चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, पृ. ५७

### कॉन्शसनेस अथवा वर्ग चेतना :

वह तत्त्व या शक्ति जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदन कराती है । सूक्ष्म विश्लेषण करने पर निखिल सृष्टि के समस्त पदार्थ या तो जड़ रूपक में लक्षित होते हैं या चेतन रूप में जो जड़ है उनमें संवेदना इच्छा और सजग क्रिया का नितान्त अभाव होता है । चेतना चल है उसमें संवेदना इच्छा है और सजग क्रिया है जब यह प्रश्न किया जाता है कि दोनों में कौन सा प्रधान है उत्तर दो प्रकार के मिलते हैं एक उत्तर उन भाववादियों या आत्मवादियों का है जो चेतना को प्रधान ही नहीं मानते हैं व चेतना को ही सारी सृष्टि का आधार मानते हैं दूसरा उत्तर भौतिकवादियों का है जो चेतना को जड़ तत्त्व के परमवंशों की विशिष्ट गतियों की परिणति मानते हैं । इधर चेतना प्रवाहवाद ने साहित्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया है ।

चेतना की दो स्थितियाँ हैं भौतिक एवं आध्यात्मिक यही चेतना के विकास की यात्रा भी है बुद्धि और चेतना संयुक्त रूप से दोनों 'चित्त' में निहित होती है अव्यक्त रूप में प्राण और पदार्थ दोनों विद्यमान हैं ।

मार्क्सवादी विचारधारा की एक मान्यता यह भी है कि प्रत्येक साहित्य में किसी वर्ग चेतना अभिव्यक्त होती है और आज के क्रांतिकारी साहित्य में सर्वहारा वर्ग की चेतना होनी चाहिए जिस सीमा तक साहित्यकार की वर्ग चेतना स्पष्ट और तीव्र होगी उसकी सीमा तक वह अपने साहित्य को अधिक प्रखर और प्रभावशाली बना सकेगा । इस प्रकार मार्क्सवादी विचारक साहित्य में मानवीय चेतना और भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर संकुचित वर्ग चेतना की ही तलाश करते हैं और उसी को प्रधानता देते हैं ।

### चेतना तत्त्व :

चेतना एक वस्तुगत सर्वव्यापी, अनिवार्य, धारणा के रूप में न कि व्यक्तिगत मन की प्रक्रियाओं की समष्टि के रूप में । स्पष्ट है कि इस अर्थ में चेतना का अस्तित्व केवल प्रत्याक्षात्मक ही हो सकता है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक ने विशेषतः मनोविश्लेषण में 'कांशस' शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है । 'कांशस' मन का वह भाग है जिसकी स्थितियों के विषय में व्यक्ति को स्पष्ट ज्ञान हो ।

फ्रायड के अनुसार— अवेचतन या अचेतन की तुलना में चेतना का विस्तार बहुत छोटा है । उसमें केवल उन्हीं विचारों और इच्छाओं में मिलता है जो व्यक्ति की नैतिक और सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप होती है वह आंतरिक चेतना जिसके द्वारा कर्त्ता को कर्म के उचित या अनुचित शुभ या अशुभ होने का बोध होता है जो उसे शुभ कर्म करने के लिए उत्साह करती है प्राचीन दर्शन में 'प्लेटिनस' मध्ययुग में एलबर्ड और आधुनिक युग में बटलर ने सविवेक बुद्धि को नैतिक जीवन का सर्वोच्च निर्णायक माना है । टालस्टाय और महात्मा गान्धी ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया सद्विवेक की सर्वोच्च नैतिक निर्णायक मानने में एक कठिनाई यह है कि यह व्यक्तिगत मानक है और इससे किसी ऐसे निरपेक्ष नैतिक निर्णय को प्राप्त नहीं किया जा सकता जो कि सर्वमान्य हो । दूसरी कठिनाई यह है कि प्रत्यक्ष व्यवहार में सद्विवेक बुद्धि प्रायः हमें एक दिशा में ले जाती है । आधुनिक विचारधारा में नैतिक मान्यताओं का निर्धारण मानवीय व्यवहार और मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में किया जाता है ।

### कांशस अथवा चेतन :

मानस चेतन पक्ष मनुष्य के सामान्य व्यवहार में व्यक्त होता है चेतन मानस में वे अनुभव और व्यापार आते हैं जिनका हमें पूर्ण ज्ञान है । स्नायविक दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि जब स्नायविक क्रिया एक आवश्यक मात्रा

तक गहरी हो जाती है हमें अनुभव होने लगता है मनोविश्लेषण के प्रभाव से चेतन मन की धारणा में परिवर्तन ही है पूर्वकालीन मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि मानस सदा चेतन है अचेतन मानस की कल्पना ही इनके लिए असम्भव थी । परन्तु अब यह सभी स्वीकार करते हैं कि चेतन मानस हमारे सम्पूर्ण का मानस का एक अंश मात्र है यह वह अंश, जो बाह्य जगत के सम्पर्क में आता है और पूर्णतः व्यक्त होता है मानस का यह भाग हमारी जाग्रत अवस्था में क्रियाशील रहता है यह यथार्थ से संचालित होता है विचारशील है विवेक तर्क, ध्यान संवेदना तथा प्रत्यक्ष ज्ञान इसकी प्रक्रियाएँ हैं । इस पक्ष में व्यक्ति में अहम और सुपर ईगो का सम्बन्ध होता है पर इसकी पहुँच के बाहर ।

इसका अध्ययन करने पर सृष्टि के सारे पदार्थ दो वर्गों में बंटे दिखाई पड़ते हैं । एक वर्ग इन पदार्थों का है जिन पर बाहरी वातावरण की थोड़ी या बहुत प्रतिक्रिया होती है और जो चर है तथा दूसरा उनका जिन पर बाहरी वातावरण का कोई प्रभाव नहीं होता और जो अचर है । प्रथम प्रकार के अचेतन या जड़ इसके अतिरिक्त साहित्य में 'चेतन' शब्द का कुछ और अर्थ विस्तार हो जाता है एवं 'कान्शस' का अर्थ 'आर्टिस्ट' के रूप में प्रयोग किया गया है । कौशस शब्द का अभिप्राय चेतन होकर सजग कलाकार है अर्थात् वह कलाकार जो रचना शिल्प के समस्त सूक्ष्म पक्षों से अवगत होकर निर्माण में प्रवृत्त होता है ।

### मनोविज्ञान और चेतना :

'चेतना' शब्द का प्रयोग मनोवैज्ञानिक अर्थ में होता है पर कभी-कभी इसका प्रयोग दार्शनिक अर्थ में हो सकता है विज्ञानवादी और प्रत्यवादी दार्शनिक चेतना या विज्ञान का शाश्वत एक सत्ता मानते हैं इस अर्थ में 'चेतना' शब्द आत्मा का समानार्थक हो जाता है परन्तु साहित्य में और दर्शन में भी इस अर्थ में प्रायः 'चैतन्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है चेतना शब्द सामान्य मनोवैज्ञानिक अर्थ में

ही अधिक आता है ।<sup>५९</sup> वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें मानव मन की विभिन्न अवस्थाओं और क्रियाओं का तथा उनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है अंग्रेजी में इसे साइकॉलोजी कहते हैं ।

“एडलर ने मनोविज्ञान के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन बिन्दुओं को मूल आधार माना है । हीनता का बोध, हीनता जनित क्षतिपूर्ति की आकांक्षा, और उस आकांक्षा की पूर्ति के लिए शक्ति प्राप्ति की भावना ।”<sup>६०</sup>

एडलर का मनोविज्ञान फ्रायड का ‘साइको अनैलिसिस’ होते हुए भी मनोविश्लेषण की ही कोटि में आता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध जाग्रत चेतना सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक से नहीं बल्कि अवचेतना सम्बन्धी मनोविज्ञान से है । युग का मनोविज्ञान फ्रायड और एडलर दोनों से भिन्न है और दोनों से बहुत आगे बढ़ा हुआ अधिक व्यापक और अधिक गहरा है फ्रायड ने अवचेतना का अविष्कार तो किया, पर उसे अत्यन्त संकुचित दायरे के भीतर बाँध दिया । उसके मतानुसार व्यक्ति की अवचेतना का निर्माण उसके पैदा होने के बाद उसकी यौन—प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया हास या विकास के अनुसार होता है व्यक्ति के जीवन की दमित प्रवृत्तियों का संचय ही उसकी अवचेतना है पर युग की अवचेतना का दायरा बहुत बड़ा है ।

समस्त मानव जाति के आदिकाल से लेकर आज तक युग युग में जिन सामूहिक प्रवृत्तियों का दमन सभ्यता की ओर मनुष्य की क्रमिक गति के साथ होता चला आया है वह युग—युग की मानवीय भावनाओं की थाती है । वैसे युग वैयक्तिक अवचेतना का अस्तित्व भी किसी हद तक स्वीकार करता है । इस व्यापक चेतना को युग ने सामूहिक अवचेतना कहा है । इस सामूहिक अवचेतना के आधार पर उसने ऐसी इमारत खड़ी कर दी है, जिसकी ऊँचाई या गहराई तक उससे पहले कोई पाश्चात्य चिन्तक नहीं पहुँच पाया था । इस ऊँची उड़ान और

<sup>५९</sup> डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश

<sup>६०</sup> डॉ. रामचन्द्र तिवारी : साहित्य निकष, पृ. १५६

गहरी डुबकी के लिए उसने प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक मनोविज्ञान तथा दर्शन का सहाय लिया है अन्त में वह इस परिणाम पर पहुँचा कि अवचेतना की अन्य शक्तियों के सन्तुलन के लिए आध्यात्मिक शक्तियों का जगाने की आवश्यकता है ।

हमारे प्राचीन मनोवैज्ञानिक ने मानवीय मनोवृत्तियों का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण करके एक ओर युग—युग से विकास प्राप्त कर अवचेतना सागर का पूर्ण मन्थन किया और दूसरी ओर अवचेतना की अन्धशक्तियों के संतुलन अथवा निराकरण के लिए अतिचेतना के आकाश का भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया और अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समस्त द्वन्द्वात्मक स्थितियों से उभरकर मन की सारी प्रवृत्तियों और क्रियाओं को योगावस्था करके समदर्शन प्राप्त करने से मनुष्य समस्त बाहरी और भीतरी विषमताओं से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं व्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्धयसिद्धयो समो भूतवा समत्वं योग उच्यते ॥

अर्थात् संसक्ति त्यागकर, सिद्धि तथा असिद्धि में समबुद्धि होकर सभी कर्मों को योगस्थ करो, क्योंकि समत्व का भाव ही वास्तविक योग है और इसी योग में वैयक्तिक तथा सामूहिक मानव का कल्याण है ।

## द्वितीय अध्याय

### हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

छायावाद एवं छायावादोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना



## अध्याय—दो

### हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय साहित्य किसी एक ही अर्थ का द्योतक नहीं कहा जा सकता है, राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त साहित्य को लिया जा सकता है जो किसी देश की जातीय विशेषताओं का परिचायक हो । इस प्रकार के साहित्य में जाति का समस्त स्वरूप उसके उत्थान—पतन आदि का विवरण आ सकता है, उसका होना एक प्रकार से अनिवार्य है 'महाभारत' और 'रामायण' भारत के राष्ट्रीय काव्य है ।

राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत हिन्दी में तुलसी के 'रामचरितमानस' और प्रेमचन्द के समस्त साहित्य को रखा जा सकता है । प्रसाद के नाटक भी इसी कोटि में रखे जा सकते हैं । रवीन्द्रनाथ की अधिकांश कृतियाँ राष्ट्रीय जन—जीवन से अनुप्राणित हैं ।

हिन्दी में राष्ट्रीय साहित्य की समृद्ध परम्परा अभी तक कई कारणों से सुदृढ़ नहीं हो सकी है। स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दी भारत की एक बहुसंख्यक जनता की भाषा होकर भी राजभाषा नहीं थी। बंगाली, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में पर्याप्त साहित्य सृजन हुआ, जो अपने प्रदेश का जन—जीवन चित्रित करता है ।

परम्परा के प्रति आग्रह के रूप में कभी—कभी राष्ट्रीय साहित्य का व्यवहार होता है । अंग्रेजों में कभी—कभी 'क्लासिक' शब्द को प्रयोग में लाया जाता है । टी.एस. इलियट ने अपनी पुस्तक 'क्लासिक' क्या है ? ( What is a Classic ? ) में इसका विवेचन किया है । गिलवर्ट हिवेट ने अपने ग्रन्थ 'द क्लासिक ट्रेडिशन' में विस्तार से क्लासिक परम्परा पर विचार किया है । हिन्दी साहित्य के रूप में क्लासिक को अपेक्षाकृत कम ही स्वीकार किया गया है ।

राष्ट्रीय साहित्य का सर्वाधिक प्रयोग उस साहित्य के लिये किया जाता है जिसमें देश प्रेम की भावना प्रबल रहती है । इस प्रकार की रचनाएँ विशेष प्रकार

की राजनीति परिस्थितियों में प्रस्तुत की जाती है । जब दो देश अथवा दो जातियाँ आपस में संघर्षरत होती है तब इस प्रकार की साहित्य सृष्टि होती है । यहाँ तक कि युद्ध गीत भी लिखे जाते हैं एक परतंत्र देश में जागरण के साथ—साथ राष्ट्रीय भावना प्रबल रहती है । देश भक्ति से अनुप्राणित साहित्य में एक आवेश उत्साह और साथ ही साथ वीरत्व का भाव प्रबल रहता है इसमें अतीत गौरव का गान किया जाता है । पूर्वजों का गुणगान किया जाता है । देश की महिमा का अंकन होता है किन्तु साथ ही इस प्रकार के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और उपेक्षा का भाव भी परिलक्षित होता है।

### आदिकालीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना :

आदि काल में हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना पर आधारित काव्य देखा जा सकता है, देश प्रेम, देश की दुर्दशा, देश को पुण्यभूमि समझकर उसकी पूजा—वन्दना और राष्ट्रीयता के अन्तर्गत आते हैं ये सभी विशेषता आदिकालीन हिन्दी काव्य से प्राप्त होती है । उदाहरणस्वरूप कवि हेमचन्द्र का कथन द्रष्टव्य है—

पुत्ते आये कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएणु ।

जा बणी की भुँहड़ी चम्पिज्ज अवरेणु ॥

ऐसा पुत्र होने से क्या लाभ तथा मरने से क्या हानि, जिसने अपने पिता की भूमि दूसरे के द्वारा अधिकृत हो जाने दी ।

जैन कवि हेमचन्द्र ने बारहवीं शताब्दी में ये विचार प्रकट किये राष्ट्रीय सुरक्षा एवं एकता की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र की रक्षा करें तथा अपने देश की सुरक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए उद्यत है।

आदिकालीन हिन्दी काव्य राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । कवि हेमचन्द्र का एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है एक स्त्री से आकर कहा अच्छा

हुआ जो मेरा पति मारा गया यदि वह देश के लिए लड़े जा रहे युद्ध से भागकर आ जाता तो मुझे अपनी समवयस्काओं में लज्जित होना पड़ता । जैसे—

भला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु ।

लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा धरू अंतु ॥

राष्ट्रीय—चेतना का पूर्ण परिपाक वीर रस तथा उत्साह स्थायीभाव में होता है । वीर रस पर आधारित बहुत सा काव्य आदिकाल में लिखा गया। स्वयंभू कृत 'पउमचरित' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

अण्णे कहाँ जाहँ सुकतं देश अहुल्लइ पुल्लइ नतरू लेइ ।

ण समिच्छमि हउँ तुतु मज्जे । एतिउ सिरूयिव इलानि कज्जे ।

अण्णेक कहो थक—भूसणइ देह, अण्णे कहु तपि तणि सम गणेइ ॥

कि गंधे कि चन्दन रसेण मह अंग पसा हेव्वउ जसेण ॥

अर्थात् किसी सेनानी की स्त्री उसे फूलों की माला दे रही है परन्तु वह नहीं लेता कहता कि मेरा सिर आज स्वामी के काम आयेगा इसलिए तुम्हीं इसे ले लो । किसी की पत्नी उसे आभूषण दे रही है परन्तु वह उन्हें तृण के समान समझ रहा है । एक वीर जिसका जीवन युद्ध के लिए है कहता है कि गन्ध और रस क्या ? मैं तो यश से अपने शरीर को सजाऊँगा । पुष्पदंत, हेमचन्द्र, शारंगदेव, चन्दवरदाई, आदि कवियों ने देश—प्रेम तथा उस पर मर—मिटने की लालसा का बड़ा शक्तिशाली चित्रण किया है, इन कवियों ने स्त्रियों में भी वीरता का भाव दिखाया है । स्त्रियों की यही इच्छा रहती थी कि उन्हें युद्ध में शौर्य दिखानेवाला, मत्तगजों के बीच समर में जूझनेवाला पति प्राप्त हो तथा युद्ध में वीरत्व की लाज रखने वाला पुत्र प्राप्त हो ।

कवि विद्यापति ने कीर्तिलता में राजा कीर्ति सिंह के शौर्य एवं पराक्रम का सुन्दर वर्णन किया है, कीर्ति सिंह ने सैनिकों की स्वतंत्रता का संदेश देते हुए कहा

है कि मानविहीन भोजन, शत्रु के दिये हुए राज्य का उपयोग तथा शरणागत होकर जीना, ये तीनों कायर के काम हैं—

मान विहूना भोजना सतुक देत्रैल राज ।

शरण पइठे जीअना तीन् काअर काज ॥<sup>१</sup>

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन रचनाओं में कवि चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराजरासो' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज की वीरता, पराक्रम तथा शूरता का सुन्दर वर्णन हुआ है । चारण कवि चन्दवरदाई ने इस रचना की ओजस्वी वाणी द्वारा पृथ्वीराज और उनके सामन्तों को शिथिलता त्याग कर रणक्षेत्र में बलिदान के लिये प्रेरित किया है कवि ने सामन्तों का सम्बोधन करते हुए कहा है—

डर दुग्गम खरह रहि, अढ़र परहि गरूअ गिरि ।

त्रिन बन घन टूटत धरनि णसमसहि सयनि ह्यनि भरि ॥

सर समुँद खरभरहि, डिढ़ डझह करक्कहि ।

कमठ पिड्डु कलमलहि, पहुमि महि प्रलय पलट्टहि ॥<sup>२</sup>

आदिकाल के वीर काव्य में कालिंजर के राजा मरमाल के दरबारी कवि जगनिक द्वारा रचित 'आल्ह खण्ड' आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन है । वीरों के उत्साहपूर्ण कथन, स्वदेश की रक्षा के लिए हर समय तत्पर रहना निडरता आदि श्रेष्ठ भावों से यह रचना भरी पड़ी है । पत्नी कहे गये आल्ह के कथन द्रष्टव्य है—

न गर्जत बोले आल्हा ठाकुर का तू रही मोहि डरपाय

दैखि भयंकर क्षत्री डरपै कीरति जावै सबै नशाय ॥

हो अपकीरति जब दुनियाँ में तब तो मृत्यु निकि है जाय ।

<sup>१</sup> वासुदेव अग्रवाल : संपा. कीर्तिलता, पृ. २१९

<sup>२</sup> चन्दवरदाई : पृथ्वीराजरासो, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पृ. ५६३

ऐसे वैसे हम क्षत्री ना जो अब देवें धर्म नशाय ॥<sup>३</sup>

सच्चा वीर देश के लिए कम आयु में ही शहीद हो जाता है जगनिक का कथन द्रष्टव्य है—

बारह बरस लौ कूकर जीवै, तेरह लौ जीवै सियार ।

बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार ॥

आदिकाल के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तान की धरती को स्वर्ग कहा है :

किश्वरे हिंद अस्त वहिश्ती बज़मी ।

(हिन्दुस्तान दुनियाँ में जन्नत है ) ।

अरबी फारसी के श्रेष्ठ विद्वान होते हुए भी अमीर खुसरो ने भारत की तात्कालिक जनभाषा हिन्दवी में रचना करने में गर्व का अनुभव किया । उनका कथन है—

चू मन तूतिह हिन्दियम, रास्त पुर्सी ।

ज मन हिन्दवी पुरस, ता नाज गीयम ॥

खुसरो ने फ़ारसी हिन्दी मिश्रित गज़ले लिखकर भाषा के क्षेत्र में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया । ऐसी गज़ले अत्यन्त लोकप्रिय हुई—

जे हाल किसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाए बतियाँ ।

कि तजाबे हिजॉ न दारम ऐ जाँ लेहु काहे लगाय क्षतियाँ ।

अर्थात् आखें छिपा के और बनाके दुखियों की दशा की अवहेलना मत करो ऐ मेरी जान ! मैं विरह सहने में असमर्थ हूँ मुझे क्यों नहीं छाती से लगा लेती ।

<sup>३</sup> कविराज मोहन सिंह : पृथ्वीराज रासौ, चतुर्थ समय, पृ. ३५६

आदिकालीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के ग्रन्थों में वीरों की उत्तेजक भावनाएँ, स्वामिभक्ति, भूमि प्रेम, राजपूती गौरव व आन के लिए मर मिटने की भावना तो परिव्याप्त है परन्तु व्यापक राष्ट्रीय चेतना की कमी है इनकी वीर भावना अपने आश्रयदाता के शौर्य व शक्ति के लम्बे आख्यानो तक ही सीमित है रासो के ग्रन्थों में शृंगार का भी पुट मिलता है । इस काल की वीर भावना या देश प्रेम व्यक्तिगत तथा एक-देशीय है चारणों और कवियों में उदार वीर भावना की कमी पाई जाती है— इनकी समस्त भावनाएँ अपने सामंतों, आश्रयदाता और उनके जीवन की छोटी-मोटी घटनाओं तक सीमित है । व्यापक देश, राष्ट्र के हित की भावना उसके लिए कोई महत्व नहीं था । चारणों के लिए छोटे राज्य ही राष्ट्रतुल्य रहते थे । व्यापक भारतवर्ष के प्रति प्रेमभावना की अभिव्यक्ति नहीं हुई थी। विदेशियों के प्रतिरोध प्रधान रहता था ।

#### भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना :

भक्तिकाल के समय राजनीति के प्रांगणों में जो हिंसात्मक प्रवृत्ति, द्वेष, संघर्ष, अराजकता, देश में व्याप्त वर्ण व्यवस्था तथा विभिन्न सम्प्रदायों के कारण फैलती उसकी प्रतिक्रिया समाज और धर्म में दिखाई देने लगी । देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित होता रहा था जिसके फलस्वरूप हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह क्षीण होने लगा, ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे, और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे ।

“इतने महान राजनीतिक परिवर्तन के पश्चात् हिन्दू जन-समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही ‘ अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ।”

मुस्लिम आक्रमणों के प्रतिकार स्वरूप कुछ हिन्दू राजाओं ने भी युद्ध क्षेत्र में बढ़ाकर मातृभूमि की रक्षार्थ बलिदान दिये किन्तु एक संगठित शक्ति न होने के

कारण शत्रु को पराजित नहीं किया जा सका । गुलाम वंश के शासकों ने विद्रोही हिन्दू नरेशों का दमन कर मालवा तथा सिन्ध तक अपना साम्राज्य बढ़ाया । सन् १८९६ से १९१६ तक मुस्लिम सत्ता को दृढ़ और स्थायी बनाने का काम अलाउद्दीन खिलजी ने किया, जिसने अपने अन्तर्गत लगभग समस्त भारत को लाकर एक सूत्र में बाँधने का कुछ प्रयत्न किया किन्तु एकता स्थायी न रह पाई और सभी योजना असफल रही और उसके अन्तिम दिनों में राज्य व्यापी विद्रोह की लहर उठने लगी । अभी तक मुस्लिम शासकों का लक्ष्य भारत की धन सम्पत्ति लूटकर ऐश करने की ओर अधिक थी । प्रजा की सुरक्षा सुख शांति की ओर ध्यान , फिरोज तुगलक ने ही सन् १३५१ में दिया उसने लोक कल्याण के कई कार्य किये नगर बसाए, बाग लगवाये, राजप्रसाद तथा मदरसे बनाए किन्तु तैमूर के आक्रमणों ने उसके इस आदर्श को महान आघात पहुँचाया । भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव बाबर ने डाली उसके अतिरिक्त इस काल में हुमायूँ और शेरशाह आदि ने राज्य काल के पश्चात् सम्राट अकबर ने अपनी दूरदर्शिता तथा सूझबूझ के कारण इस देश के उत्तरी और दक्षिणी भाग के राज्यों को एक सूत्र में बाँधा । बीस वर्षों के सतत् संघर्ष और युद्धमय जीवन के पश्चात् अकबर मेवाड़ नहीं जीत पाया — मेवाड़ के स्वाभिमानी वीर पुत्रों ने अपनी मातृभूमियों की रक्षा के लिए केसरिया बाना पहन प्राणों की बाजी लगा दी अपनी जान को हथेली पर रखकर लाखों की संख्या में वीर योद्धा तथा परिवारों को छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में बस कर मुगल सेना से लड़ने के लिए तैयार हो गये थे । अकबर ने कुछ राजपूतों से मित्रता और उदार नीति प्रदर्शित कर अपनी ओर आकर्षित किया तथा कुछ राजपूत वंशों की कन्याओं से विवाह भी किया । धर्म के प्रति उसका उदार दृष्टिकोण था उसकी धार्मिक सहिष्णुता की नीति ने तथा हिन्दुओं को राज्य पद में उच्च स्थान देने की नीति ने उसे लोकप्रिय बनाया और राष्ट्रीय राज्य का भी निर्माण किया, उसके सामाजिक सुधारों दीनेइलाही, भूमिकर,

अन्य नये तथा लोककल्याणी कार्यों के कारण समाज में शांतिमय वातावरण कहीं—कहीं दिखाई दिया और राष्ट्रीय राजतंत्र का मार्ग सुलभ होने लगा । इस समय रणथंभौर और चित्तौड़ आदि ही ऐसे स्थान रह गये थे जो अपना मस्तक उठाये रहे । देश सामूहिक राष्ट्रीय चेतना की कमी के कारण देश को विदेशी शत्रुओं के पंजों से नहीं छुड़ाया जा सका था ।

राजनीतिक क्षेत्र में इस काल में मुसलमानों का आधिपत्य भले ही रहा हो किन्तु वे आर्थिक सत्ता हिन्दुओं से नहीं छीन सके शासन संचालन भूमिकर एकत्रित करने वास्तुकला, भवननिर्माण आदि में हिन्दू ही कुशल और उपयुक्त थे ।

इसलिए राज्य संचालन में हिन्दुओं का सहयोग आवश्यक था । पहले तो हिन्दू जनता मुसलमानों से युद्ध करती रही किन्तु वर्षों के संघर्ष के पश्चात् बहुत से हिन्दुओं ने मुस्लिम सत्ता को स्वीकार कर लिया और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहा । कुछ मुसलमान शासकों ने धर्मनिरपेक्ष की स्थापना कर देश में कला व्यवसाय तथा लोकहितकारी कार्यों की उन्नति प्रारम्भ की तथा उन्होंने ललित कलाओं और साहित्य को राज्यश्रय देकर प्रोत्साहित किया । हिन्दू संस्कृति पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ा है और हिन्दू धर्म, हिन्दू कला, साहित्य तथा विज्ञान की मुस्लिम तत्वों से प्रभावित नहीं हुए किन्तु संस्कृति की भावना में भी परिवर्तन हुआ ।

कुछ विद्वानों का मत है कि— “ अपनी राजनैतिक निर्बलता के होने पर भी मध्ययुगीन भारत सांस्कृतिक दृष्टि से इतना चेतनामय था कि उसने अपनी अन्तरात्मा को किसी के वश में नहीं होने दिया । भारत ने रणक्षेत्र में चाहे कुछ भी खो दिया हो किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में शास्त्रों द्वारा पुनः प्राप्त किया ।

राष्ट्रीय चेतना राजनीतिक क्षेत्र में चाहे सुस्त रही हो किन्तु बिल्कुल नष्ट नहीं हुई । सन् १८५७ के विद्रोह में तथा अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता के आन्दोलनों में आगे चलकर यह प्रबल हुई मध्ययुग में यह चेतना कहीं राजनीति में



अवश्य प्रकट हुई किन्तु अधिकतर इसका रूप हमें धर्म में दिखाई देता है । हिन्दू जनता अपनी राजसत्ता के विलुप्त हो जाने पर बड़ी उद्विग्न थी उस पर कठोर अनुशासन किया जाता था तथा ऊँचे पदों से हटा दिया गया था इतना ही नहीं हिन्दू धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म को नहीं छोड़ा और प्रभावशाली बने रहे हिन्दुओं के पुर्नजागरण आन्दोलन का वीरतापूर्वक संचालन किया तथा उत्तरी भारत के बहुत से भाग मुस्लिम विजय से बचाने का प्रयत्न किया।

भक्तिकालीन कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता और अखण्डता को मजबूत बनाने का सराहनीय कार्य किया ।

भक्तिकालीन हिन्दी कवि सभी अलगाववादी संकीर्णताओं को त्यागकर मानवता का संदेश सुना रहे थे ।

संत रज्जबदास का कथन द्रष्टव्य है—

नारायण और नगर के रज्जब पंथ अनेक ।

कोई आवै केसि दिसि आगे स्थल एक ॥

दुनियाँ में तुम मेल मुहब्बत करने के लिए आये हो । दंगा फिसाद फैलाने और अलग कराने के लिए नहीं । संत नामदेव ने कहा कि भगवान् के लिए सब बराबर है—

जाति—पांति पूछे ना कोई ।

हरि को भजै सो हरि को कोई ॥

संत कबीर ने भी हिन्दू—मुस्लिम एकता पर अत्यन्त बल दिया—

अव्वल अलह नूर उपजाया कुदरत के सब बंदे ।

एक ज्योति से सब जग उपज्या कौन भले को मंदे ॥

राम और रहीम के नाम पर लड़ना व्यर्थ है—

हिन्दू कहँ मोहि राम प्यारा मुसलमान रहिमाना ।

आपस में दोऊ लरि मुए मरम न काहू जाना ।।

भक्तिकाल में कुतुबन, मंझन, जायसी, रहीम और रसखान ने प्रेम और भक्तिपरक रचनाएँ की । वेद पुराण और गीता के अनुवाद फारसी में हुये । गुरुनानक देव ने हिन्दू मुसलमान की वैर विरोध भावनाओं को त्याग कर एकता और भ्रातृत्व भावना का प्रचार किया । ज्ञान प्राप्त होने पर उन्होंने ' ना हिन्दू ना मुसलमान ' की वाणी का प्रवचन किया और वे जीवन भर अपनी इस वाणी का अपने विचार तथा व्यवहार में आदर्श उपस्थित करते रहे ।

भारत की राष्ट्रीय चेतना को मजबूत बनाने में प्रेम कथाकार सूफी कवियों का अमित योगदान रहा । वे सच्चे समन्वयवादी थे और सभी धर्मों तथा कृतियों का सम्मिलित कर एकता की भावना का प्रचार—प्रसार चाहते थे सभी के प्रति सम्मानभाव रखकर उन्होंने प्रेम का प्रतिपादन किया ।

सूफी कवियों ने सभी प्रकार के भेदभाव को भुलाकर प्रेमपूर्वक मिलजुलकर रहने पर बल दिया । मुल्ला दाऊद का कथन है—

जरम न छूट पिरम कर बाँधा ।

जायसी के निकट मत—मतान्तर आदि का कोई भेद न था । वे सभी धर्मों को परम्परा तक पहुँचने का मार्ग मानते थे उन्होंने 'अखरावट' में कहा है—

विधना के मारग है तेते सरग नखत तन रोवां जेते ।

जायसी ने सभी मनुष्यों को एक समान बताया है उन्होंने सभी मनुष्यों को एक ही मिट्टी के बने हुए भिन्न—भिन्न नाम रूप वाले बर्तनों के समान देखा —

एक चाक सब पिंडा चढ़े भाँति—भाँति के भांडा गढ़े ।

एक ही मूल वाली वृक्ष की दो डालियों की भाँति हिन्दू और मुसलमान भी एक ही ब्रह्म के पक्ष के दो पक्ष है फिर भी जाति भेद के कारण वैमनस्य बढ़ाना उचित नहीं—

बिरछि एक लागी दुइ डारा, एकहि ते नाना परकारा ।

मातु के रक्त पिता के बिन्दू उपजै दुवै तुरक और हिन्दू ॥

कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद, आदि सूफी कवियों ने भी प्रेम प्रीति से भरे सांस्कृतिक एकता पर आधारित काव्य रचना की ।

भक्तिकाल में रचित हिन्दी—कृष्ण—काव्य में आचार्य बल्लभ और उनके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ की प्रमुख भूमिका रही है । बल्लभाचार्य जी ने भगवान् श्री कृष्ण को परम ब्रह्म मानकर उनकी रूप माधुरी का गायन और प्रेम लक्षणा भक्ति काल में आठ प्रमुख कवियों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की । अष्टछाप के कवियों में से चार कुम्भनदास, परमानन्द दास, सूरदास और कृष्णदास, बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और गोविन्द स्वामी, नन्ददास चतुर्भुजदास तथा छीतस्वामी विठ्ठलनाथ जी के शिष्य थे । इन कवियों में अंधे सूरदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इन सभी कवियों की रचनाओं में भावात्मक एकता स्थापित करने पर अत्यन्त बल दिया गया है । सूरदास ने भक्त और भगवान् को बराबर बताया । जाति—पाँति का स्पष्ट खण्डन किया है—

खेलत को मैं काको गुसैयाँ ।

हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैया ।

जाति—पाँति हमतें बर नाही बसत तुम्हारी छैयाँ ।

अति अधिकार जनावत यातै जातै अधिक तुम्हारे गैया ।

रूठि करै तासौ को खेले रहे बैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ

सूरदास प्रभु खेल्यौ चाहत दाऊ दियो करि नंद दुहैया ।

भगवान् के समक्ष जाति—पाँति का कोई महत्त्व नहीं —

जाति—पाँति पूछत ना कोऊ श्रीपति के दरबार ।

ब्रह्म रूप कृष्ण अपने भक्तों के साथ मिल जुलकर खाना खा रहे हैं—

ग्वालनि कर तै कौर छुड़ावत

जूठौ लेत सवनि के मुख कौ अपने मुख लै नावत ।  
 पटरस के पकवान धरे सब , तिनमें रुचि नाहिं लावत ॥  
 हा हा करि—करि मांगि लेत है कहत मोहि अति भावत ।  
 यह महिमा येहि वै जानत, जातै आयु बंधावत ।  
 सूर स्याम अपने दस्सत, मुनि जन ध्यान लगावत ॥

ऐसे ही श्रेष्ठ विचार अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी व्यक्त किये हैं । भक्तिकाल में अनेक उदारमना मुसलमान कवि हिन्दू धर्म में विशेष रूप से पूज्य देवी—देवताओं की भक्ति पर आधारित काव्य रचना कर रहे थे । ऐसे कवियों में रहीम और रसखान प्रमुख हैं रहीम का मन सदैव श्रीकृष्ण की ओर लगा रहा है—

तै रहीम मन आपनों, कीन्हीं चारु चकोर ।

निसिबासर लाग्यो रहै, कृष्णनन्द की ओर ॥

भक्त रसखान ने गोविन्द भक्ति का उपदेश देते हुए कहा—‘रसखान गुविन्दहि यौ भजिये नागरि को चित गागर मै । रसखान को श्रीकृष्ण पर अटल विश्वास है—

काहे को सोच करै रसखानि कहा करि है रविनंद विचारौ ।

ताखन जाखन राखियै माखन—चाखन हारौ सो राखन हारौ ॥

भक्तिकाल के रामभक्त कवियों में स्वामी रामानन्द अग्रदास, तुलसी, केशव दास, रहीम आदि उल्लेखनीय हैं । इन कवियों में तुलसीदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है । रामकथा में सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का प्रयास किया गया है । इस कथा का प्रारम्भिक भाग अवध प्रान्त से सम्बन्धित है मध्यभाग चित्रकूट एक मध्य भारत से तथा उत्तर भाग दक्षिण भारत के प्रान्त से सम्बन्धित है अन्त में पूरे भारत पर एक नक्षत्र राम राज्य स्थापित हुआ है । रामराज्य में कोई दरिद्र अथवा दुःखी नहीं है इसी रामराज्य की स्थापना पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने बल दिया—

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नाहिं काहुहि व्यापा ।

अल्प मृत्यु नहिं कवनेउ पीरा, सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ।  
 नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना नहिं कोउ अबुध न लखन हीना ।  
 सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी, नर और नारि चतुर अवगुनी ।

तुलसीदास ने स्पष्ट कहा है कि जिसके राज्य में प्रजा दुखी है वह राजा ठीक नहीं है—

“ जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।  
 सो नृप अबसि नरक अधिकारी ॥

तुलसीदास ने अपना काव्यादर्श बताते हुए कहा है—

“कीरत भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।  
 भगवान् राम भक्त—वत्सल एवं समदर्शी है जाति—पाँति की उन्हें कोई  
 परवाह नहीं है, उन्हें तो केवल प्रेम प्यारा है—जानि लेइ जे जाननिहार ।

तुलसीदास का कथन है कि मुखिया मुख जैसा होना चाहिए, जो बिना  
 किसी भेदभाव के समुचित ढंग से सभी का पालन—पोषण करे ।

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक ।  
 पाले पौषे सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥

भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि अब्दुरहीम खान खाना ने वाल्मीकि रामायण का  
 फारसी भाषा में अनुवाद कराया ।

भक्तिकालीन हिन्दी कवियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि राम तथा अन्य  
 सभी देवी—देवता समग्र विश्व के लिए पूज्य है । यही कारण है कि आज विश्व  
 के अनेक देशों में इन देवी—देवताओं की उपासना की जाती है । संत सुन्दरदास  
 ने राम और अल्लाह को एक ही बताया —

हिन्दू की हद छाँडिकै तजी तुरक की राह ।  
 सुन्दर सहजै चीन्हया एकै राम अल्लाह ॥

भक्तिकाल में वल्लभाचार्य के अतिरिक्त रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बर्काचार्य आदि महापुरुष तथा उनके अनुयायी आदि भी वैष्णव भक्ति के माध्यम से भारत में एकता अखण्डता बनाए रखने का प्रयत्न कर रहे थे । यही कार्य मीराबाई और अकबरी दरबार में रहकर अनेक कवि कर रहे थे । उदारमना अकबर स्वयं हिन्दी में कविता करते थे । वह 'गुरून गुरू' करके प्रसिद्ध थे । बादशाह अबकर की एकता से कृष्ण भक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

शाह अकबर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिं ।  
आह तो अबला निरख्यों चकि चौकि चली करि आतुर चालहिं ॥  
त्यों बलि बेनी सुधारि धरि सु भई छवियों ललना अरु बालहिं ।  
चंपक चारू कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहिबालहिं ।

सम्राट अकबर के दरबार में सम्बद्ध हिन्दी कवियों में रहीम, गंग नरहरि, टोडरमल, वीरबल, मनोहर आदि विशेष रूप में उल्लेखनीय है ।

भक्तिकालीन हिन्दी कवियों ने लिपि एवं भाषा के भेद को भी मिटाकर भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास किया है । रहीम में संस्कृत और हिन्दी भाषा को मिलाकर काव्य रचना की । " खेट कौतुकम् " नामक रचना में रहीम ने संस्कृत और फारसी भाषाओं का समन्वित प्रयोग किया है उदाहरण द्रष्टव्य है —

खेट कौतुक जातकम्, फारसी पद मिलित ग्रन्थाः

खल पण्डितैः कृताः पूवैः

सम्प्राप्य तत्पदार्थं करखणि खेट कौतुक पदयै—

तालेवर सत्यबचा सप्त मेंच भवेन्नरः कबिल वामु रौबतः ।

जायसी आदि सूफियों ने भारतीय और फारसी दोनों रचना शैलियों को मिलाकर परम्परा से आती हुई भारतीय प्रेम कथाओं को सर्वग्राह्य रूप में पेश

किया है उन्होंने उसी भाषा को श्रेष्ठ बताया जिसमें प्रेम भाव हो—

अरबी तुरबी हिन्दुई भाषा जेति आहि ।

जेहि मेंह मारण प्रेम का सबै सराहै ताहि ॥

भारत की एकता और अखण्डता से महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले अनेक काव्यों की रचना भक्तिकाल में हुई धर्म, दर्शन, समाज, विचार लिपि एवं भाषा सभी क्षेत्रों में भावात्मक एकता की स्थापना का सफल प्रयास भक्ति कवियों ने किया । इन कवियों का हृदय सभी प्रकार की संकुचित भावनाओं से ऊपर उठ गया । पूरे विश्व की जनता को भक्तिकालीन कवियों की उदारता से शिक्षा चाहिए । विश्व बन्धुत्व की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त उपयोगी है ।

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना :

सन् १५२६ में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना की । बाबर जैसे अनुभवी बादशाह को यह जान लेने में देर न लगी कि भारत में राज्य करने के लिए यहाँ की भाषा सीखना आवश्यक है । मुगल बादशाहों के लिए हिन्दी का प्रश्न, धर्म, का प्रश्न न था वे उपयोगिता की दृष्टि से वे हिन्दी को महत्व देते थे । लोक में मंगल और शासन के सुभीते के लिए वे हिन्दी को फारसी से अधिक उपयोगी और लाभप्रद समझते थे । ब्रजभाषा ही उस समय की शिष्ट और काव्य की प्रधान भाषा थी । मुगल शहजादों की अरबी फारसी और तुर्की के साथ ही ब्रजभाषा की भी शिक्षा दी जाती थी । यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इसमें केवल ब्रजभाषा ही राष्ट्र भाषा थी ।

हिन्दी शाहजहाँ की जननी और जन्मभूमि दोनों की भाषा थी । शाहजहाँ की माता राजपूत राजा उदयसिंह की पुत्री मानवती थी । उसका पिता जहाँगीर भी भी हिन्दू रानी जोधाबाई का पुत्र था । बचपन में शाहजहाँ का पालन—पोषण उदारदृष्टि महान् सम्राट अकबर की देखरेख में हुआ था । शाहजहाँ के जन्म

पर जो जश्न मनाया गया था उसमें राजपूती रस्में बरती गयी थी जो सोहिले गाए गये वे हिन्दी सुरों में थे । शाहजहाँ की दादी महारानी जोधाबाई प्रसन्न मुद्रा में पास खड़ी है, दाई शहजादे का नाल काटने से पहले महान् दान माँगती है—

माँग है जौधा जी को राज,

लला जू कौ नाल छवावै ।

थाल पर मोती जोधा रानी लाई,

वह भी लेवै न यह दाई ।

लला जू कौ नाल छवावै ॥

संस्कृत ग्रन्थ ‘रस गंगाधर’ के रचनाकार पंडित राजजगन्नाथ ‘पंडितराज’ की उपाधि शाहजहाँ ने ही दी थी और इन्हें चाँदी के सिक्का में तुलवाकर सिक्के भी दिये थे । रीतिकाल में बादशाह शाहजहाँ कवियों को वस्त्र, अलंकार, घोड़े, हाथी, हीरे, मोती, मनसब आदि पुरस्कार के रूप में प्रदान करता था । उसने हिन्दी के कवि सुन्दरदास के दान सम्मान के साथ पहले ‘कविराय’ की बाद में ‘महाकविराय’ की उपाधि दी थी।

सुन्दरदास ने नायक—नायिका भेद के काव्य ‘सुन्दरशृंगार’ की रचना थी । इसके अतिरिक्त ‘बारहमासा’ और ‘सिंहासन बत्तीसी’ भी उन्हीं की रचनाएँ हैं।

भूषण के बड़े भाई चिन्तामणि भी शाहजहाँ के दरबार में थे । यही चिन्तामणि हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्तक माने जाते हैं । उन्होंने छन्द विचार ‘काव्य विवेक’ ‘कविकुलकल्पतरु’ तथा ‘काव्यप्रकाश’ नामक ग्रन्थों की रचना की । कवित्त तथा अन्य छन्दों में लिखी हुई इनकी ‘रामायण’ अपूर्व है । शाहजहाँ के एक अन्यदरबारी कवि शिरोमणि ने भी शाहजहाँ के दान की बहुत प्रशंसा की है । उनके दरबारी कवि ‘कवीन्द्र आचार्य’ ‘कवीन्द्रकल्पलता’ नामक ग्रन्थ की रचना की है । रचना शाहजहाँ तथा उसके पुत्रों की प्रशंसा में की थी ।



मुगल बादशाहों ने हिन्दी कवियों को आश्रय ही नहीं दिया बल्कि स्वयं भी हिन्दी भाषा में कविताएँ की । मुगल बादशाहों की हिन्दी कविताओं में गानों की प्रधानता है । सभी बादशाह गानों में मग्न दिखाई देते हैं । सम्राट् शाहजहाँ भी इस कार्य में पीछे न था । वह भारतीय संगीत का ज्ञाता था । उसने भी हिन्दी भाषा में सरस गीतों की रचना की थी । एक उदाहरण देखें—

भादों कैसे दिनन माई श्याम काहे को आवेंगे ।

कोकिला की कुहुक धुनि छाती भाती राती भई ।

विरही आगे ऊधो फूँक—फूँक जरावेगें ।

शाहजहाँ पिया तुम बहुनायक ।

विरहिन के अँसुवन की तपन बुझावेंगे ।

शाहजहाँ हिन्दी भाषा लिखने में भी सिद्धहस्त था । औरंगजेब द्वारा आगरा के किले में नज़र कैद किये जाने पर उसने दाराशिकोह और शुजा को हिन्दी में ही पत्र लिखे थे ।

शाहजहाँ के काल की कमलकार भट्टकृत 'निर्णयसिंधु' तथा कवीन्द्राचार्य कृत 'ऋग्वेद की व्याख्या' उल्लेखनीय है । उसके काल की हिन्दी गद्य के उदाहरण हमें चिन्तामणि द्वारा रची गई अकबर शाह कृत 'शृंगारमंजरी' की टीका में प्राप्त होते हैं । उसके काल में संगीत की भी उन्नति हुई । संगीत शास्त्र में अहोबल का 'संगीत पारिजात' नामक ग्रन्थ शाहजहाँ के काल में ही रचना गया । उसके संरक्षण में वेदांगराज ने ज्योतिष शास्त्र सामुद्रिक विद्या में प्रयुक्त होने वाली फारसी तथा अरबी शब्दों का कोश संस्कृत में प्रयुक्त किया । मित्र मिश्र जिसके द्वारा व्याख्यात हिन्दू विधानों की मान्यता अब भी भारत के विशिष्ट न्यायालयों में स्वीकार की जाती है, शाहजहाँ का समकालीन था । हिन्दी से प्रेम होने के कारण शाहजहाँ ने 'चीजशाहजहानी' का अनुवाद हिन्दुस्तानी जबान ब्रज भाषा में

कराया था । इस प्रकार रीतिकाल में बादशाह शाहजहाँ के काल में हिन्दी भाषा का सर्वतोमुखी विकास हुआ ।

### आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

इस काल का काव्य पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय आधुनिक युग में घुटन का समय था । उस समय के मनुष्य घुटन की साँस ले रहे थे और अपने राष्ट्र में व्यक्तियों वर्गों, सम्प्रदायों, जातियों, उपजातियों प्रान्तों तथा भाषाओं के टकरावों एवं विश्व के रंगमंच पर विभिन्न राष्ट्रों के संकीर्ण स्वार्थों ने ऐसी दारुण अवस्था निर्मित की है कि शान्ति, सुख, आनन्द और प्रगति का नाम लेना भी हास्यास्पद जान पड़ता है ।

इसी घोर छाया को लेकर हम लोगों ने स्वार्थ, हिंसा, भ्रष्टाचार, शोषण, द्वेष , अलगाववाद, आतंकवाद, बेकारी, दरिद्रता, तुष्टीकरण की कुत्सित राजनीति और परानुकरणप्रियता के दानव से जूझने का संकल्प किया है । शुभ—संकल्प की शक्ति अपार होती है । यह प्रेरणा का विषय है कि हमारे देश के विविध प्रान्तों के आस्थावादी साहित्यकारों ने चतुर वैद्य की भाँति राष्ट्र की पीड़ा को पहचान कर मानव कल्याणकारी संस्कृति से प्रभावित ऐसी काव्य औषधि प्रदान की जिससे राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान और स्वदेशाभिमान की भावना प्रकट होकर समाज का सर्वांगीण विकास और मानवीय मूल्यों की स्थापना में बल मिल सके ।

हिन्दी जगत् में नवजागरण की चेतना तीव्र से तीव्र होती जा रही थी। राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलन जिस ढंग से विस्तार हो रहा था, उसी ढंग से सर्जनात्मकता बदल रही थी।<sup>१</sup> उन्नीसवीं सदी के अन्त तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्पूर्ण भारत के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की लहरें तरंगित हुई, वे अंग्रेजों के आगमन , आक्रमण और आर्य संस्कृति के प्रति भ्रामक प्रचार की

---

<sup>१</sup> डॉ. मिथिलेश कश्यप : भूमिका—भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना

प्रतिक्रियाएँ मात्र नहीं थीं । आधुनिक हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय चेतना के जागरण काल को हम 'हिन्दू नवोत्थान काल' कह सकते हैं ।

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने हमारे साहित्य और संस्कृति पर तिहरा आक्रमण शुरू कर दिया था—धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक । मिशनरी क्रॉस के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तराजू और क्लाइव जैसे लड़ाकुओं की बन्दूकों का भी हमें सामना करना पड़ा और पाठशालाएँ बन्द कर गयी । हमारे देश की भाषाओं एवं लिपियों की उपेक्षा की गई । हमारी मान्यता के भ्रामक प्रचार किये गये । उस समय अधिकांश नेता आंग्लविद्या विभूषित और आर्यसंस्कृति विहीन थे वे अंग्रेजों के हिमायती थे । हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ होता है । सन् १८५७ के विद्रोह के समय उनकी उम्र सात वर्ष की थी । बाल्यावस्था में ही उन्होंने १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम का दृश्य भी देखा था । बाद में अपना तन, मन, धन, खोकर उन्होंने साहित्य संस्कृति एवं स्वदेशाभिमान की ज्वाला को आजीवन दीप्त रखा और अत्यल्प जीवन में सौम्य प्रतिभा की जो विमल ज्योत्स्ना बिखेर दी जिससे हम आज भी आलोकित और आह्लादित हो रहे हैं ।<sup>१</sup> बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' में उत्कट देशप्रेम और प्रगाढ़ समाज हितैषिता के भाव थे । परन्तु साथ ही हम यह भी मान लेते हैं कि उनका देशानुराग जातिप्रेम आदि बाह्य परिस्थितियों के फलस्वरूप थे। उन्होंने जीवन के प्रभा से नहीं देखा था। उनकी स्वदेश प्रेम सम्बन्धी रचनायें विशेष तन्मयता की सूचना नहीं देती ।

### अतीत का गुणगान :

अतीत के गौरवमय चित्रों की सुन्दर झांकियाँ देश के जनमानस को उत्साहित करती हैं तथा देश को उन्नत और समृद्ध बनाने की प्रेरणा देते हैं ।

<sup>१</sup> डॉ. के.के. शर्मा : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास, पृ. १३२-३३

अतीत केवल वर्तमान के दुःख को भुलाने के लिये सुखद स्वप्न की भाँति चित्रित नहीं किया गया बल्कि भविष्य की प्रेरणा बनकर भी सक्षम उपस्थित होता है। जन्मभूमि के प्रति प्रेम भी स्वाभाविक है। माता के समान ही मातृभूमि वन्दना भी प्रत्येक स्वाभाविक मानी देश प्रेमी के हृदय में व्याप्त रहती है।

महाभारतकाल तथा मध्यकाल आदि के सम्बन्ध में अतीत का वर्णन करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं—

जदपि न भोज न व्यास नहिं बालमीकी नहिं राम,  
शाक्यसिंह हरिचंद बलि करन जुधिष्ठिर श्याम,  
जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदासहू नहिं  
प्रतिष्ठान साकेत मुनि दिल्ली मगध कन्नौज  
जदपि अबे उजरी परी नगरि सबैं बिनु मौज ।

अभिनव राष्ट्र—चेतना के परिणामस्वरूप छायावाद पूर्व भी आधुनिक साहित्य देश—प्रेम, सम्बन्धी उद्गार , अतीत गौरव गाथा और अंग्रेजी राज्य की शोषण नीति के प्रति आक्रोश से भर गया था । भारतेन्दु कालीन कवियों ने अंग्रेजों की प्रशंसा भी कम नहीं है । उनमें राज्यभक्ति की भावना भी प्रचुर परिणाम में पाई जाती है । कुछ लोग इस आधार पर उन्हें अंग्रेजों का पिछू होने का फतवा देने लग जाते हैं । किन्तु यह ठीक नहीं बात यह है कि आठ सौ नौ सौ वर्षों के कुल मिलाकर धर्मान्ध मुस्लिम शासन से पीड़ित और त्रस्त हिन्दू जनता को शान्ति प्रेमी और उदार ब्रिटिश शासन की छत्र—छाया में राहत की सांस लेने के अवसर प्राप्त हुआ था । उसे अपने व्यक्तित्व का मार्ग दिखायी दिया था ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में उत्कट देश—प्रेम और प्रगाढ़ समाज—सेवा के भाव थे परन्तु साथ ही हम यह भी मान लेते हैं कि उनका देशानुराग जाति प्रेम आदि वाह्य परिस्थितियों के फलस्वरूप थे; उन्हें जीवन के प्रवाह के भीतर से नहीं देखा था उनकी स्वदेश प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ विशेष तन्मयता की सूचना नहीं देती ।

पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के 'स्वदेश बिन्दु' देशभक्तिपूर्ण गीतों की सुन्दर रचना हुई जिसमें देश की वंदना की गयी है —

जय जय भारत भूमि भवानी

जाकी सुयश पताका जग के दसँहु दिसि फहरानी ।<sup>६</sup>

प्रेमघन ने 'जीर्णजनपद' कविता में मातृभूमि के प्रति सहज स्नेह का वर्णन बड़ी ही सुन्दर और ललित भाषा में किया है । ग्राम जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

खेतन में जल भरयों शस्य उठि ऊपर लहरत ।

चारहु ओरन हरियारी ही की छबि छहरत ।

भोरी भोरी ग्राम वधू इक संग मिलि गावत ।

इक सुर के रस भरी गीत झन्कार मचावति ॥<sup>७</sup>

श्री राधाकृष्ण ने 'पृथ्वीराज प्रयाण' तथा 'प्रताप विसर्जन' काव्य लिख कर गौरवपूर्ण अतीत का अंकन किया है—

जननी हमें सीख अब दीजै ।

परम कुपूत तेरो यह ताहि विदा अब कीजै ।

इसमें पृथ्वीराज जब कैद होकर गजनवी से लाये जाते हैं तब भारत माँ से विदा लेते हैं — 'प्रताप विसर्जन' में भी राणा प्रताप के समक्ष वीरों ने चित्तौड़ की स्वाधीनता की रक्षा का व्रत नले लिया तथा प्रसन्नता से मृत्यु का आलिङ्गन किया—

अत मोल स्वधीनता तुच्छ विषय के दाम ।

बेचि सिसोदित कीर्ति को यहकरिहै अवसि निकाम ।

रफकै हम सोच एहि ।

<sup>६</sup> स्वदेशबिन्दु : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ६४५

<sup>७</sup> जीर्णजनपद : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ४१-४२

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन का विगत के बलिदानी वीरों का स्मरण हो जाता है और मातृभूमि की वर्तमान दुर्दशा या उन्हें अत्यन्त दुःख होता है—

पाटलि पुत्र गयो कहाँ, तेरा गजब गरुर ।  
 नहिं चितौर वह जहाँ, एक एक से वीर ।  
 रह्यो न वह पंजाब अब रह्यो न वह कशमीर ।  
 पूना करि सुना गयो, कितै शिवाजी वीर ।<sup>१</sup>

बालमुकुन्द गुप्त “ श्रीराम स्त्रोत ” में प्राचीन भारत के समृद्धि का गौरवपूर्ण स्मरण करते हैं। और समकालीन भारत की दुर्दशा पर तरसते हैं कविता में अंग्रेजों के शोषण के प्रति उनका आक्रोश द्रष्टव्य है, क्योंकि उन शासकों ने भारतीयों को भूखे मरने का अभियान किया—

“गज रथ तुरंग विहीन भये ताको डर नाही ।  
 चंवर क्षत्र को चाव नाहिं हमरे उर माहीं ।  
 सिंहासन अरु राजपाट को नाहिं उरहनो  
 ना हम चाहत अस्त्र— वस्त्र सुन्दर पट गहनों  
 पे हाथ जोरि हम आज यह, रोय रोय विनती करें  
 या भूखे पापी पेट कहैं मत कहो कैसे भरें ?

### वर्तमान के प्रति क्षोभ :

कवियों ने देश दुर्दशा के प्रति तीव्र क्षोभ (दुःख) प्रकट किया । अंग्रेजों ने व्यापारिक क्षेत्र में पक्षपातपूर्ण नीति अपनायी । टैक्स—महसूल आदि के नाम पर शोषण कर उन्होंने भारत को आर्थिक दृष्टि से खोखला बना दिया । देशी एवं विदेशी वस्तुओं पर लगने वाली चुंगी में अत्यधिक अन्तर था, ऐसी स्थिति में देश

<sup>१</sup> पितर प्रलाप : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. १५७-५८

के कला कौशल की उन्नति कैसे हो सकती है 'प्रेमघन' ने शासन की स्वार्थपूर्ण नीति का कड़ा विरोध इस तरह से किया है—

लूटि विलायत भारत खाय । माल ताल बहु विधि फैलाय ।

ताको मासूली छूटि जाय । जामै लाभ दिखाय ॥

देसी मालन इहाँ बिचाय । घाटा भारत के सिर जाय ।

राओ मुँह बाय बाय । हय हय टिक्कस हाय हाय ॥<sup>१</sup>

वीर पराक्रमी तथा सम्पन्न होते हुए भी भारतवासी पराधीन क्यों हुए ? निश्चय ही देश में व्याप्त आपसी फूट पारस्परिक कलह ही इसका कारण थी । भारतेन्दु जी फूट को देखकर विषाद से भर उठते हैं —

बैर फूट ही सों भयो सब भारत का नास ।

तबहु न छाँड़त याहि सब बंधे मोह के फाँस ।

प्रतापनारायण मिश्र बालविवाह, बृद्धविवाह, आदि सामाजिक कुरीतियों के घोर विरोधी थे । भारतीयों की करुण दशा देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो उठता था वहीं विधवाओं की चीत्कार है तो कहीं गौ की पुकार मंहगी के मारे सब कुछ अपना संभव नहीं, एकता, शांति एवं बुद्धि का नाश हो चुका है । स्वरक्षा के लिए अस्त्र—शस्त्र रखना भी अपराध है । तत्कालीन दूरावस्था चित्र स्पष्ट है—

विधवा बिलपें, नित धेतु कटै, कोउ लागत हाय गुहार नहीं ।

पट भूषण बेचि भरै कर को, तबहुँ लखिए बयपार नहीं ॥

मंहगी दुरभिक्ष, कुरोगन ते, भर पेट जहात अहार नहीं ।

निजता, इकता, बल बुद्धि नहीं तिहिं ऊपर हाथ हथ्यार नहीं ॥

‘ भारत दुर्दशा ’ नामक हास्य रूपक में भारतेन्दु ने वर्तमान दुर्दशा के कारणों एवं उसके प्राचीन गौरव के दिग्दर्शन तथा उसके उन्नयन के उपाय आदि का

<sup>१</sup> होली की नकल या मुहर्रम की शकल : प्रेमघन सर्वस्व भाग-१, पृ. १८६-८७

ओजपूर्ण चित्रण किया है । भारत की दुर्दशा देखकर कवि के हृदय में जब क्रन्दन कर उठा तो समस्त राष्ट्र को मिलकर रोने के लिए आह्वान किया—

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई ।

हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥

बालमुकुन्द गुप्त ने “आगवानी” देश की इतनी भयंकर दुर्दशा हो गई कि दुर्गामाता के स्तवन काल में उसे समझ नहीं आता किस प्रकार आराधना करे ? भूखे पेट भजन कहाँ संभव है । आगवानी के एक पद में उसके अन्तर का क्रन्दन सुनिए—

का दै जननी पूजा करै तुम्हार ।

पेटहु कै निस दिन हाहाकार ॥

### राष्ट्रभक्ति के साथ राजभक्ति :

भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना के राष्ट्रभक्ति के साथ राजभक्ति का भी स्वर है । वे परिस्थितियाँ ही ऐसी थी जिनमें राष्ट्रभक्ति की भावना एक साथ रहना स्वाभाविक था । १८५७ ई. क्रांति के पश्चात् जनता अंग्रेजी शासन को ईश्वर मानने लगी थी । विक्टोरिया की घोषणा ने लोगों को धैर्य बंधाया । इसके अलावा यवनों के पक्षपातपूर्ण तथा देशी राज्यों के अव्यवस्थित शासन से युक्ति, ठगी, से सुरक्षा, रेल, डाक तार, व्यवस्था एवं शिक्षा के प्रचार समय समय पर होने वाले शासन सुधारों के कारण जनता अंग्रेजी राज्य के प्रति सम्मान की भावना थी । किन्तु इस युग के काव्य में स्वदेश—प्रेम की झलक भी विद्यमान है । “ जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही राजभक्ति की आड़ ली गयी ” भारतेन्दु ने जहाँ अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की वहाँ शासन द्वारा आर्थिक शोषण के फलस्वरूप देश के आर्थिक दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए—दुःख भी प्रकट किया—

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।



पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ॥

देश में अंग्रेजी शासन के दृढ़ होने के अनन्तर शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित हो गयी थी । प्रेमघन ने विभिन्न सुख सुविधाएँ प्रदान करने वाले अंग्रेजी राज्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए लिखा है—

रेलयान परभाय अंधेरी रातहुँ निधरक ।

डाक तार को जो प्रबंध तेहि जगत राहत ।

सड़क हजारन कड़ी छाँह को वृच्छ करोरन ॥

x x x

वने विश्वविद्यालय विद्यालय पाठालय ।

पावत प्रजा अलभ्य लाभ से जितने विज संसय ॥

किन्तु आंग्ला—सत्ता के अभिशापों से वे अपरिचित नहीं थे । अंग्रेजी राज्य के अन्याय के कारण ही भारतीय आर्थिक दृष्टि से सर्वथा दीन हीन हो गये —

पै दुःख अति भारी इक यह जो बढ़त दीनता ।

भारत में सम्पत्ति की दिन दिन होत छीनता ॥

### राष्ट्रीय चेतना :

भारतेन्दु युग के कवि स्वदेश एवं जाति के उद्धार के लिए कृतसंकल्प थे । उन्होंने मातृभूमि के प्रति अटूट स्नेह प्रदर्शित किया । स्वदेश के उत्थान से विमुख रहनेवाला मनुष्य जड़वत है । प्रेमघन को संसार के समस्त सुन्दर स्थानों में से अपनी जन्मभूमि ही अधिक मनोरम एवं सुखदायक प्रतीत होती है—

जन्मभूमि हित के हित चिन्ता जा हिय नाही ।

तिहि जानौ जड़ जीव, प्रगट, मानव, तन माहीं ॥

यद्यपि वस्यो संसार सुख थल विविध लखाहीं ।

जन्मभूमि की पै छवि मन तें विसरत नाही ॥

बालमुकुन्द गुप्त ने भारतवासियों से विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार का आह्वान किया । हर एक भारतीयों की स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन कर आत्मनिर्भर बनना चाहिए तथा उन्हें भी व्यवहार में प्रयुक्त करना चाहिए—

छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो ख्याल ।

अपने चीजें आप बनाओं, उनसे अपना अंग सजाओ ।<sup>१२</sup>

समाज में व्याप्त मनोमालिन्य को देखकर प्रतापनारायण मिश्र को अत्यन्त दुःख होता है वे देश की उन्नति के लिए अपने यहाँ के निवासियों में पारस्परिक सहयोग एवं सहानुभूति आवश्यक मानते हैं । कवि देश को एकता के सूत्र में बाँधना चाहता है—

प्रीति परस्पर राखहु मीत ।

जइहैं सब दुख सह जहि बीत ॥

नहि एकता सरिस बना कोय ।

एक —एक मिल ग्यारह होय ॥

राष्ट्रीय भावना के सहज प्रसार के लिए यह अपेक्षित है कि वह देश के बहुसंख्यक वर्ग की भाषा हो । निःसंदेह यह भाषा हिन्दी ही थी । निज भाषा का महत्व बताते हुए भारतेन्दु ने लिखा है—

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन ।

पै निज भाषा जान विन रहत हीन के हीन ॥

भारतेन्दु युग के कवि जन सामान्य के कलाकार थे । उन्होंने जनता में राष्ट्रीय चेतना की भावना का प्रसार किया और आशामय जागृति का शुभारम्भ किया । कवियों शासक—शासित के मध्य के अन्तर को अभिव्यक्त किया तथा

<sup>१०</sup> हार्दिक हर्षादर्श : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २७४—७५

<sup>११</sup> जीर्ण जनपद : जन्मभूमि के प्रति प्रेम, प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. ६

<sup>१२</sup> डॉ. चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा, पृ. १००

शासित वर्ग में गौरव एवं स्वत्व की चेतना उत्पन्न की। उन्होंने उज्ज्वल अतीत को प्रस्तुत कर हीनता समाप्त करने का प्रयास किया ।

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने अपने देश की भाषा के प्रचार—प्रसार पर बल दिया है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।

बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत हिय को सूल ॥

पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया और उर्दू भाषा पर भी इस युग के कवियों ने बड़े व्यंग्य भरे उद्गार प्रकट किये हैं—

पुरब वत सो बीच कहचरी उर्दू बीबी ।

बैठी ऐंठी करत अजहु सौ सौ विधि सीसी ।

लखि आवत नागरी बरन बरन तकि

नाक सिकोरत, भौह मरोरति औचकहि चरि ।<sup>१३</sup>

प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दी भाषा के प्रेम के सम्बन्ध में लिखा है—

देवनागरिहि गो लगाओ पै हो मोद महान,

रहो निःशंक प्रेम मद मात श्री प्रताप समान ।

सिखहि नागरी नागरी नागर बनहि सु लोय ।

ब्राह्मण की आसीस ते घर घर मंगल होय ॥

राधाचरण गोस्वामी भी हिन्दी भाषा के कट्टर हिमामयी थे तथा उन्होंने सन् १८८३ में शिक्षा कमीशन के सम्मुख २१ हजार हिन्दी प्रेमियों से हिन्दी भाषा के पक्ष में हस्ताक्षर एकत्रित करके प्रेषित किये । हिन्दी के सम्बन्ध में खूब प्रचार किया—

कवि पंडित, परिजन, प्रभृति छात्र, रसिक रिझवार,

<sup>१३</sup> आनन्द वधाई : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. ३१४

राजा प्रजा सप्रेम बस करि हिन्दी को प्यार ।

हिन्दी हिन्दुस्तान की भाषा विशद विशाल ।

जन्म होत सबसों कहैं मां ! मां ! दा ! दा ! बाल ।<sup>१५</sup>

राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिन्दी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

### द्विवेदी युगीन साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना :

महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना के पल्लवन के साथ स्वतंत्र-समर के महायज्ञ की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी । ' राष्ट्रीय चेतना मुख्य रूप से पराधीनता की लौह शृंखलाओं को तोड़ने के लिए , परकीयों के दमन के विरुद्ध संघर्ष की भावना जगाने के लिए उज्ज्वल अतीत के गौरव गान के रूप में स्वदेश एवं स्वधर्म की वर्तमान दुर्दशा में परिहार के प्रयत्न के रूप में, देश के भविष्य के निर्माण के संकल्प के रूप में तथा परमपावन मातृभूमि की वंदना के रूप में अभिव्यक्त हुई है ।<sup>१५</sup>

राष्ट्रीय चेतना का मूलमंत्र समग्र आधुनिक साहित्य में विद्यमान है । भारत माता को सजीव मानकर उसका भवभीना स्तवन किया । स्वदेश प्रेम राष्ट्रीय काव्य का मुख्य तत्व है । ' राष्ट्रीय काव्य प्रायः देशभक्ति की भावना की प्रतिकृति रहा है ।'<sup>१६</sup>

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भावधारा में भी जिस भौगोलिक इकाई में हम जन्म पाते हैं जिसका अन्न, जल और वायु सेवन कर हमारा पोषण होता है, जिसके रजकण में खेल-खेल कर हम बड़े हुए हैं उस मातृभूमि को प्रणाम है । भारत का अमृतमय करते रहे हैं सबके माथे शृंगार करते हैं—

<sup>१५</sup> चन्द्र प्रकाश आर्य : राष्ट्रीयता की अवधारणा और श्याम नारायण पाण्डेय का काव्य, पृ. १६२

<sup>१६</sup> डॉ. भुवनेश्वर गुरुमैता : आधुनिक भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, पृ. ३-४

<sup>१७</sup> डॉ. रवीन्द्र नाथ दर्शन : छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना, पृ. १२९

“ रज भी इस मातृभूमि की सबके माथे का शृंगार ।”

निराला ने तो मातृभूमि को देवी के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है—

“ भारति जय विजय करे । कनक शस्य कमल धरे ।

मुकुट शुभ्र हिम तुषार । प्राण प्रणव ओंकार ।

ध्वनित दिशाएं । शतमुख मुखरे ॥

यद्यपि इतिहासकारों में इस विषय में मतैक्य नहीं है कि आर्यों की आदि भूमि कहाँ थी किन्तु प्रसाद जी के अनुसार आर्यों का मूल स्थान भारत वर्ष ही था । उन्हें मातृभूमि की प्राकृतिक रमणीयता पर गर्व है । कवि स्वदेश पर सर्वस्व बलिदान करने का शंखनाद करते हुए लिखा है—

किसी का हमने दीना नहीं , प्रकृति का रहा पालना यहीं ।

हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं ॥

जिये तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष ।

निछावर कर दै हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ॥

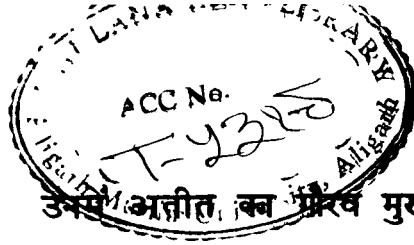
अतः तत्कालीन कविता का मुख्य स्वर राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी है। प्रायः सभी कवियों ने देश भक्तिपूर्ण कविताओं का प्रणयन किया और पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा परतंत्रता प्राप्ति के लिये क्रान्ति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी । कविवर शंकर ने बलिदान गीत में राष्ट्रीय चेतना द्रष्टव्य है—

देश भक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा ।

प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा ॥<sup>१७</sup>

अतीतकालीन वीरों एवं वैभव के माध्यम से राष्ट्रवासियों को जागरण का संदेश दिया । आधुनिक काल की राष्ट्रीय वीणा का सबसे ऊँचा सांस्कृतिक स्वर अतीत का गौरवगान ही है— “ दिनकर जी रचनाओं में वीर भावना का उत्कृष्ट

<sup>१७</sup> डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ४८९



रूप दृष्टिगोचर होता है । उसने अतीत का प्रेक्षक मुखर हो उठा है । कवि ने पाटलिपुत्र की गंगा के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त किया है—

विजयी चन्द्रगुप्त के पद सैल्यूकस की वह मनुहार ।

तुझे याद है देवि ! मगध का वह विराट उज्ज्वल शृंगार ॥

जगती पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल ।

बार—बार झुकते थे पद पर ग्रीक—यवन के उन्नत माल ॥

सुभद्राकुमारी चौहान की ओजस्वी कविताओं में भारतीयों में अपूर्व उत्साह का संचार किया उनकी “झाँसी की रानी” कविता राष्ट्र की तरुणाई को स्वाधीनता के लिए संघर्षज्ञरत रहने का पावन संदेश सुनाती है । रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान की गाथा सुनाते हुए कवयित्री राष्ट्रीय भावनाओं को उद्दीप्त करने में सफल हुई ।

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी ।

बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी ।

गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी ।

दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी ।

चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी ।

बुन्देलों हरबोलों के मुँह हम सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥

स्वाधीनता के लिए सर्वस्व बलिदान का संकल्प भारतीयों की कष्टों को सहन करने की शक्ति ने ब्रिटिश सत्ता को किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया था अनेक कवियों ने भी राष्ट्र में व्याप्त बलिदान की चेतना को वाणी दी इनमें माखनलाल चतुर्वेदी सर्वप्रमुख हैं । कवि देशवासियों को कष्ट सहन करते हुए कर्तव्य—पथ पर आरूढ़ रहने का संदेश देता है उसकी वाणी में मातृभूमि के स्वातंत्र्य के लिए प्राण विसर्जन की प्रबल उमंग है —

ज्वाला जगी कि अपनी बलि हम पहले दें प्यारे ।

हम से ही बनते देखे हैं दुनिया ने अगारे ॥

मिट्टी में मिलना हरियाना, फिर होना अगारे ।

विद्रोही हैं— ये सब कुछ होते अवतार हमारे ॥

परतंत्रता से अभिशप्त राष्ट्रवासी स्वतंत्रता के महायज्ञ में बलिदान के लिए प्रस्तुत थे । रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने ओजमयी वाणी में इस राष्ट्रीय चेतना को स्वर प्रदान किया —

गरज रहा है रक्त—सिंधु भारत की जनता का चंचल ।

फड़क उठी है कोटि—कोटि बाहें उतावली रण विह्वल ॥

श्री लक्ष्मण सिंह क्षत्रि 'मयंक' ने तथा भवानीशंकर याज्ञिक ने देश के लिए बलिदान करने तथा उसकी स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार सम्बन्धी कई राष्ट्रीय रचनाएँ की जिनमें हमें उस युग की राजनीति चेतना की झांकी मिलती है—

स्वराज्य के लिए जियो स्वदेश के लिए मरो ।

उठो प्रभात हो गया विचार का प्रभात हो ।

स्वराज्य का सूर्य को उदै, स्वतंत्र सुप्रभात हो ।

तभी होगा हमको सन्तोष, होय जब भारत को परितोष ,

हमारे जन्मसिद्ध अधिकार , करे जब प्राप्त न्याय अनुसार ॥

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में अतीत के वीरों की वीरता तथा पराक्रम की पृष्ठभूमि में राष्ट्र के इस संकल्प को वाणी दी । योद्धाओं में राष्ट्र स्वातंत्र्य निमित्त जीवनोसर्ग की अदम्य उमंग विद्यमान है—

प्राण हथेली पर धरै किये ओजमल पान ।

तबर तीर—तलवार लै चले जुझिबे ज्वान ॥

आर्थिक शोषण की ओर दृष्टिपात — भारत में अंग्रेजी शासन का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शोषण ही था ब्रिटिश शासकों ने कृषि की आत्मनिर्भर प्रणाली और कुटीर उद्योगों का विनाश कर इस देश के आर्थिक ढाँचे को छिन्न—भिन्न कर

दिया । कवियों ने इस अन्यायपूर्ण नीति का विरोध किया और स्वदेश की आर्थिक विपन्नता का मार्मिक अंकन किया है । अंग्रेजी शासन के शोषण के विषय में कवि की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया  
 टापू में ले चल कर रखा और कैद किया ॥  
 एक का डंका बजा ।  
 बहुतों की आँख झपी ॥  
 लह लही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा ।  
 जोत में जल दिया ।  
 धोखा छिपा, जल छिपा ।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने विदेशी शासन के आर्थिक अत्याचार एवं लोक—उत्पीड़नकारी नीति का उद्घाटन कर भारतीयों की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया है । बच्चों की भूख और दूध के लिए उनकी पुकार अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । आंग्ल—सत्ता के शोषण के विरुद्ध कवि की ललकार में प्रलयकारी चेतना है —

वे भी यहीं , दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं ।  
 वे बच्चे भी यही कब्र में 'दूध—दूध' ! जो चिल्लाते हैं ।

X                      X                      X

हटो व्योम के मेष, मंथ से, स्वर्ग लूटने हम जाते हैं ।

‘दूध —दूध ‘ ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं ॥

कृषि और उद्योग भारत की आर्थिक सुव्यवस्था के आधार हैं इसलिए कृषकों और श्रमिकों की दया अत्यन्त शोचनीय थी । आर्थिक शोषण ने कृषकों को अत्यन्त दीनहीन स्थिति में पहुँचा दिया था दूसरों का भरण—पोषण करनेवाला किसान स्वयं झाड़ फूस के शिविरों में रहने के लिए विवश था। सुमित्रानन्दन 'पंत' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—



यह तो मानव लोक नहीं रे यह है, नरक अपरिचित ।

यह भारत ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित ॥

झाड़ फूँस के विवर—यही क्या जीवन शिल्पी के घर ।

कीड़ों से रेंगते कौन थे ? बुद्धि प्राण नारी नर ॥

ऊँची अट्टालिकाओं वाले रम्य महल और टपकते छप्परों वाली झोपड़ियों का वैषम्य देखकर कवि क्षुब्ध हो उठता है—

इसमें इतना कपड़ा बनता है।

यह दुनिया सारी ढक जाय ।

फिर भी इसे बनाने वाले ।

अपनी देह नहीं ढक पाये ॥

इधर खड़े हैं रम्य महल वे ।

आसमान को छूने वाले ॥

और बगल में बनी झोपड़ी ।

जिसके छप्पर चूने वाले ॥

बाह्याडम्बरोँ का विरोध , राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए बाहरी आडम्बरोँ विनाश आवश्यक है । अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त जनता उन्नति के पथ पर कैसे अग्रसर हो सकेगी ? श्री गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' ने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन के समर्थक हैं । वे राष्ट्र की प्रगति में बाधक सामाजिक विसंगतियों के बन्धनों को समाप्त कर देना चाहते हैं—

उठो युवकगण उठो, भेद का भंडा फोड़ो ।

आड़े आयें और रुढ़ि के बन्धन तोड़ो ॥

पंत का बाह्याडम्बरोँ के विरुद्ध विद्रोहात्मक स्वर हैं । उनकी दृष्टि में जाति, कुल एवं वर्ग के भेद निरर्थक है। तथा पुरातन अन्धविश्वास , रूढ़ियों एवं रीतियों त्याज्य है । कवि इन सब के विनष्ट होने की कामना करता है —

झरें जाति कुल वर्ग वर्ण घन ।  
 अंध नीड़ से रुढ़ि रीति छन ।  
 व्यक्ति—राष्ट्र—गत—राग—द्वेष—रण ।  
 झरें, मरे, विस्मृति में तत्क्षण ।  
 गा कोकिल गा कर मत चिन्तन ॥

मैथिलीशरण गुप्त अछूतोद्धार के समर्थक हैं । कठिन परिश्रम कर देश को पूत रखने वाले लोग अछूत कैसे हो सकते हैं ? मानवता के कारण राष्ट्र के सभी निवासी सम्मान के अधिकारी हैं । कवि सामाजिक संकीर्णता का विरोध करता है—

बड़ो बड़ाओ अपनी बांह करो अछूत जनों पर छाँह ।  
 है समाज के वे ही सपूत रखते हैं जो सबको पूत ॥

पराधीन भारत में विदेशी पूँजीवाद भारतीय अर्थव्यवस्था को छिन्नभिन्न कर रहा था । अतः राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था की सुदृढ़ता हेतु आत्मनिर्भरता अत्यन्त आवश्यक थी । स्वाधीनता संग्राम में दिनों में असंख्य भारतीयों ने विदेशी वस्तुओं के त्याग का व्रत ग्रहण किया था । तत्कालीन कवियों ने इस भावना को बल प्रदान किया । रूपनारायण पाण्डेय ने 'चर्खे' को 'सुदर्शनचक्र' माना और स्वराज्य प्राप्त करने का साधन बताया—

यह चर्खा चक्रसुदर्शन है मनोहर जिसका दर्शन है ।  
 किया विश्वकर्मा गाँधी ने इसका पुनः प्रचार ।  
 दिया जनार्दन जनता के वर करने को उद्धार ॥  
 यह दुख स्वराज्य साधन है, यह चर्खा चक्र सुदर्शन है ।

खादी के द्वारा देश में स्वाधीनता का क्रांतिकारी संदेश जन जन तक पहुँच रहा था । सोहन लाल द्विवेदी ने खादी के राष्ट्रीय महत्व को प्रदर्शित करते हुए

प्रसिद्ध 'खादी गीत' रचा । कवि की दृष्टि में खादी पहनना राष्ट्र के आर्थिक उद्धार का उपाय, स्वदेश प्रेम का प्रतीक और स्वाधीनता प्राप्ति का एक साधन है—

खादी में कितने ही नंगों भिखमंगों की है आस छिपी ।

कितनों की इसमें भूख छिपी कितनों की इसमें प्यास छिपी ।

खादी ही भर भर देश प्रेम का प्याला मधुर पिलाएगी ।

खादी ही भारत से रूठी आजादी को घर लायेगी ॥

हिन्दू —मुस्लिम ऐक्य—परतन्त्र भारत में भारतीय विदेशी शासन से स्वाधीनता प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगाकर संघर्ष कर रहे थे । निःसन्देह इस संघर्ष में भारतीयों द्वारा साम्प्रदायिक भेदों को त्यागकर भाग लेने से त्वरित परिणाम की आशा थी । जन साधारण को पारस्परिक सौहार्द एवं राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया । साम्प्रदायिकता के विष को समाप्त करने का प्रयास किया । इनका विश्वास था कि दोनों जातियों के संगठित प्रयास से राष्ट्र शीघ्र ही दासता के दण्ड से मुक्त हो जायेगा । नरेन्द्र शर्मा दोनों जातियों से मानवता के नाते संकीर्ण भेद एवं सन्देह त्याग देने का आग्रह करते हैं तथा स्वाधीनता संग्राम में संगठित योगदान का उद्घोष करते हैं—

मैं हिन्दु तुम मुसलमान, पर क्या दोनों इन्सान नहीं ।

दोनों ही धरती के जाये, हम अनचाहे मेहमान नहीं ।

X                      X                      X

जन क्रांति जगाने आई है उठ ! हिन्दू ! उठ ! ओ मुसलमान !

संकीर्ण भेद— सन्देह त्याग, उठ महादेश के महा प्राण ॥

द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना का प्रखर रूप दृष्टिगोचर होता है । भारतेन्दु युग की सामंजस्यवादी और द्विवेदी युग की सुधारवादी प्रवृत्ति समाप्त हो गयी तथा राष्ट्रीय चेतना में पूर्ण स्वराज्य की भावना का उदय हुआ स्वदेशी आन्दोलन

और हिन्दू—मुस्लिम एक्य के आह्वान में विदेशी शासन के कुचक्रों को विफल करने का प्रयास किया ।

भाषा के सम्बन्ध द्विवेदी के विचार नागरी दुर्दशा का वर्णन करते हुए उसके गुणों पर प्रकाश डाला है—

नागरी तेरी यह दशा

माता त्वदीय शुचि संस्कृत देवयानी ।

वर्णावलीतवमनोहर रूपखानी ।

अत्यन्त शुद्ध लिपि होती सदैव तेरी ।

अल्प प्रयास महं सिद्धि सधे नागरी ॥

श्री हरिप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी स्वतःकविता में मातृभाषा की वंदना है—

जयति जय जनननि भारती हिन्दी भाषा

मधुर मनोहर मूरति पुण्य प्रकासा ।

शुभ राष्ट्रीय विचार प्रकट हिन्दी में कीजै,

याकौ पुण्य प्रचार देश भर में करि दीजै ।

पं. जगदेव उपाध्याय ने हिन्दी की ओर से अपील करते हुए कहा—

यदि चरन परमेश वदन कहं सीस नवाऊं,

हिन्दी हित की कथा हितैषी जनन सुनाऊं

यदि समस्त भारत मे एक प्रबल आनंद उमाहो,

ते नागरी प्रचार करने की रुचि अवगाहो ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम जनता में उत्पन्न करने का सतत् प्रयत्न किया । जातीय भाषा की उन्नति में ही देश की उन्नति है तथा हिन्दी भाषा के साहित्य की समृद्धि करने का महान कार्य किया है तथा प्रेरणा दी “ हरिऔध’ जी की उद्बोधन तथा जातीय भाषा शीर्षक कविताओं में इसी प्रकार उद्गारों की अभिव्यक्ति हुई है—

सज्जनों देखिए निज काम बनाना होगा  
जाति भाषा के लिए योग कमाना होगा  
सामने आके बड़े बीरों लो, मान हिन्दी का बढ़ाना होगा ।  
स्वर्ग और मुक्ति के झगड़ों के किनारे रहकर ।  
हिन्दी सेवा ही में सब जन्म बिताना होगा ।  
दूर हो सब विघ्न बाधा भाग हिन्दी का जगे ।  
जाति भाषा के लिए राजसुख वो राजगने ॥

द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना के विकास राष्ट्र भाषा का सजन व महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

छायावाद एवं छायावादोत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति राष्ट्रीय चेतना :

छायावाद युग में राष्ट्रीय चेतना और प्रकृति-प्रेम उद्बलित हो उठे । छायावाद में स्वानुभूति और हृदय के कोमल भावों की अभिव्यक्ति मुक्तक गीतों द्वारा की जाने लगी । धार्मिक कविता की उपासना तथा आत्मसमर्पण की भावना का ही नए रूप में विकास होने लगा । इस युग की कविता में दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं — अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रवृत्ति छायावाद और रहस्यवाद के रूप में प्रकट हुई तथा बहिर्मुखी प्रवृत्ति राष्ट्रीय कविता द्वारा अभिव्यक्ति हुई । छायावाद तथा रहस्यवाद के असत्य के व्यापक प्रचार से जनता में सच्चे कवियों की कलापूर्ण रचनाओं के प्रति भी अरुचि उत्पन्न हो गई, जिसके फलस्वरूप विरोध किया जाने लगा । जनता के दुःख और दीन अवस्था ने देश और देशभक्त कवियों का हृदय व्यथित कर दिया । कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन तथा अहिंसा व सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना में देशभक्त कवियों ने योगदान दिया और स्वयं अनेकों कष्ट और यातनायें सही । श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'भारती आत्मा', सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर, नवीन, आदि इस कोटि के कवि हैं ।" राजनैतिक आन्दोलनों के कारण नगरों तथा ग्रामों में बसनेवाली

अधिकांश जनता में चेतना आई और राजनीतिक एवं आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाने लगी, अब सरकार से याचना और कृपा की आकांक्षा के स्थान पर कवियों ने देशवासियों की स्वतन्त्रता—देवी के चरणों में उत्सर्ग व आत्मबलिदान करने की प्रेरणा भरी । पश्चिम के राजनीतिक आन्दोलन की गूँज पूरे भारत में भी पहुँची जिसके फलस्वरूप किसान आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन, अछूतोद्धार आदि तीव्र स्वर इस युग के कवियों की वाणी में सुनाई दिया ।

वर्तमान युग में देशभक्तिपूर्ण कविता के साथ ही क्रान्तिकारी कविता का सृजन हुआ । आज के इस युग की अशान्ति और सन्तोषजनक स्थिति ने क्रान्तिकारी कविता को नई प्रेरणा दी है, ये कवि कुरीति, अंधविश्वास, आर्थिक अन्याय जैसे रूढ़ि से मुक्त नई व्यवस्था का जन्म देखना चाहते हैं— अब हम वर्तमान युग के प्रमुख देशभक्त कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीय भावनाओं का स्वरूप देखेंगे ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की स्वर्णित अतीत तथा देशानुराग सम्बन्धी रचनाएँ द्विवेदी युग में बहुत प्रकाशित हुई गुप्त जी दोनों के साहित्याकाश में अपना प्रकाश—पुंज लिए हुए चमक रहे हैं । इसलिए उनका उल्लेख वर्तमान युग में आवश्यक है । उन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों के आधार पर गौरवपूर्ण अतीत तथा मातृभूमि वंदना विषयक सौन्दर्यपूर्ण रचनाओं का सृजन किया जैसे—

तेरे प्यारे बच्चे हम सब, बन्धन में बहु बार पड़े ।

जननी, तेरे लिए भला हम किससे कब न अड़े ।

भाई भाई भले ही टूट सका कब नाता ।

जय जय भारतमाता॥

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने दीर्घकाल के उपरान्त मातृभूमि की दासता की बेड़ियाँ कटने पर आनन्दविभोर हैं । कवि स्वदेश की मुक्ति को उपनिवेशवाद से समस्त परतंत्र राष्ट्रों की मुक्ति प्रतीक मानता है—

मुक्त मगन है, मुक्त पवन है, मुक्त साँस गरबीली ।

लाँघ सात लांबी सदियों की हुई शृंखला ढीली ।

सागर की बाहें लांघे हैं, तट — चुम्बित भू—सीमा ।

तू भी सीमा लांघ, जगा एशिया, उठा भुज भीमा ॥

जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविताओं और नाटकों द्वारा राष्ट्रीय चेतना का महान् संदेश कविवर जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में बड़े ही सुन्दर भावों के साथ भारत का स्तवन किया है—

“अरुण यह मधुमय देश हमारा ।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।

सरस तामरसगर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोरम ।

छिटा जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा ॥”

प्रसाद जी ने स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग देने के लिए भारतीय जनता का आह्वान किया । अलका द्वारा 'चन्द्रगुप्त' नाटक में गाया गया गीत द्रष्टव्य है —

हिमाद्रि तुंग शृंग से

प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयं प्रभा समुज्ज्वला

स्वतंत्रता पुकारती ॥

अमर्त्य वीर पुत्र हो— दृढ़ प्रतिज्ञ स्नेहः ले

प्रशस्त पुष्प पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी वाणी में भारत का भव्य चित्र खींचते हुए उसके साथ भारती को संश्लिष्ट कर दिया और शब्द ब्रह्म के प्रथम वर्वत

प्रणय को उसकी प्राण शक्ति के रूप में कल्पित करते हुए पूरे चित्र को दिव्य ज्योति से मातृभूमि को देवी के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है—

भारति जय विजयकरे ! कनक शस्य कमल धरे !

मुकुट शुभ्र हिम तुषार ! प्राण प्रणव ओंकार ।

ध्वनित दिशायें । शत मुख —शतरव मुखरे ।

निराला जी ने जागरण गीत के रूप में भारतीय जनता का आह्वान करते हुए कहा —

जागो फिर एक बार ।

प्यारे जगत्ते हुए हारे सब तारे तुम्हें

अरुण पंख तरुण किरण

खड़ी बोलती है द्वार

जागो फिर एक बार ।<sup>१६</sup>

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय चेतना को एक नया मोड़ दिया 'सत्य और अहिंसा' के द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को एक नया आयाम दिया । कवि सुमित्रानन्दन पंत ने उनकी स्तुति में लिखा—

भौतिक विज्ञानो की प्रसूति

जीवन उपकरण चयन प्रधान

मथ सूक्ष्म—स्थूल जग तुम बोले,

मानव मानवता का विधान ।

सोहनलाल द्विवेदी ने देशोद्धार तथा समाज सुधार के कार्यों में लगे रहे । राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया तथा चेतना से ओत—प्रोत जोशीली

---

<sup>१६</sup> निराला ग्रन्थावली : भाग—१, पृ. ४९



कविता लिखकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया । उनकी ये पंक्तियाँ निश्चय ही मर्म का स्पर्श करती हैं —

आज चली है सेना फिर से धीर वीर मस्तानों की ।

आजादी के दीपक पर है भीड़ लगी परवानों की ॥<sup>१७</sup>

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर आदि कवियों ने राष्ट्रीय चेतना में एक नवीन स्फूर्ति भर दी । बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने माता के बन्धन को तोड़ने के लिए क्रान्तिकारियों का साथ दिया तथा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन की असफलता पर लिखा—

आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ ।

विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ ॥''

कवि ने इस विप्लव का गायन इसीलिए किया था कि'' एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाए, अंधे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जावे, नवीन ने घोषणा की—

कोटि—कोटि कंठों से निकली आज स्वर धारा ।

भारतवर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है ।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की ' झांसी की रानी' लक्ष्मीबाई के प्रति गायी गयी प्रस्तुत पंक्तियों ने भारतीय युवकों तथा स्त्रियों में नवीन वीरता उत्साह एवं जोश भर दिया—

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी ।

बूढ़े भारत में श्री आर्द्र फिर से नई जवानी थी ॥

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।

बुन्देले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

<sup>१७</sup> सोहन लाल द्विवेदी : ग्रन्थावली, पृ. ५

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ॥

स्वतंत्रता के लिए शस्त्रहीन संग्राम के संचालक परमपूज्य महामानव गाँधी के प्रति कवि के श्रद्धालु हृदय के पावन उद्गार उसके कव्य राष्ट्रीय चेतना की ओर इंगित करते हैं । गाँधी के देवतुल्य दिव्य व्यक्तित्व से कवि की चेतना पूर्णतया प्रभावित है वह उन्हें मानव—आत्मा का उद्धारक मानता है— सत्य अहिंसा प्रेम और शांति अग्रदूत माना जाता है—

किन तत्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानव को ?

किस प्रकाश में भर जाओगे इस समरोन्मुख भव को ?

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?

अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायेगा जग जीवंत ?

आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता ?

प्रेम शक्ति से चिर निरस्त हो जावेगी पाशवता ?<sup>१८</sup>

आलोच्य युग में लिखित नाटक, उपन्यास कहानी, निबन्ध एकांकी पत्रिकाएँ तथा अन्य सभी साहित्यिक विधाएँ चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

सुप्रसिद्ध कथाकर एवं उपन्यास में सम्राट प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में हिन्दू—मुस्लिम एकता पर बल देते हुए लिखा— “ कर्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव नहीं दो एक ही नाव में बैठे हुए हैं डूबेंगे तो दोनों डूबेंगे, बचेंगे तो दोनों बचेंगे ।” 'सेवासदन' उपन्यास में उन्होंने भारतीय जनता की बिगड़ती हुई मानसिकता का उद्घाटन करते हुए लिखा— “ यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे चरित्रवान हो, कितने ही विचारशील हों पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं ।”

प्रसिद्ध विद्वान् पुरुषोत्तम दास टंडन ने विदेशी भाषा के स्थान पर हिन्दी एवं

<sup>१८</sup> डॉ. महेन्द्रपाल कौशिक : छायावादी काव्य में युग चेतना और सामाजिक व्यंग्य, पृ. १८७

मातृभाषा को महत्व देते हुए कहा —

१. “ हिन्दी राष्ट्रीय चेतना के मूल को सींचती और उसे दृढ़ करती है ।”
२. “ हमें जनता की भाषा से ही जनता के पास जाना होगा ।”
३. “मनुष्य की मातृभाषा उतनी ही महत्व रखती है जितनी कि उसकी माता और मातृभूमि रखती है । आदि ।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह ‘दिनकर’ भी बिहार की धूल में खिले हुए ऐसे फूल हैं जिसकी सुगंध देश के दिग—दिगन्त में व्याप्त है उन्होंने ‘प्रणति— नामक कविता में देश के लिए शहीद वीरों की जय—जयकार करते हुए लिखा—

कलम ! आज उनकी जय बोल !

जला अस्थियाँ बारी—बारी,

छिटकायी जिनने चिनगारी ,

जो चढ़ पुष्प वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल ।

कमल आज उनकी जय बोल ।”

क्रान्ति की भावना से परिपूर्ण “जनतंत्र का जन्म” नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

सदियों की ठण्डी राख सुगबुगा उठी,

मिट्टी सोने, का ताज पहन इठलाती है,

दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

छायावाद के बाद नयी कविता की पहचान बनाने वाले कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (१९२७—१९८४)का विशेष योगदान है । वह ‘तीसरा सप्तक’ कवि है रोमानियत के साथ ही उनके काव्य में देश के दुःख दर्द को भी अभिव्यक्ति मिली है भारत देश की असमर्थता से दुखी से दुखी होकर उन्होंने कहा—

असमर्थ देश  
असमर्थ प्यार  
दोनों को मेरा नमस्कार ।

नरेन्द्र शर्मा और शिवमंगल सुमन ने परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने और स्वतंत्रता की ज्वाला में अपने मस्तक अर्पित करने की चेतना के साथ ही शोषितों के प्रति अपार सहानुभूति प्रकट करके शोषकों के अनुमानबिक व्यवहार के प्रति अपना रोष व्यक्त किया है ।

कवि शील स्वतन्त्र आन्दोलन के समय अनेक बार जेल गये । स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए १५ अगस्त १९४७ को कवि ने लिखा—

आज देश जय घोष रहा ।  
महलों में बांसो की छत पर नई चेतना आई ।  
स्वतंत्रता के प्रथम सूर्य का है अभिनन्दन—वन्दन  
न अब देश फूटी आँखों भी देखेगा जन क्रन्दन

अब न भूख का ज्वार  
ज्वार में लाशें  
लाखों स्वर्ण के निर्मित होंगे गेह ।  
अब न देश में चल पायेगा लोहू का व्यापार ।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भारत के सफल भविष्य की आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहा—

भारत भू का भाग्य होगा भविष्य में ।  
राष्ट्र यज्ञ हित हृदय हमारा हो भविष्य में ॥

वर्तमान युग के अनेक उपन्यासकारों, नाटककारों निबन्ध लेखकों आदि ने अपनी लेखनी द्वारा जन—जन में राष्ट्रीयता की भावना अथवा राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के महत्त्व को उजागर करते हुए सत्य ही कहा है—

हिन्दी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभाज्य ।

यों तो रूस और अमेरिका, जितना है उसका जनराज्य ॥

सियाराम शरण गुप्त की वाणी में नवीन आशा और विश्वास है । अब प्रत्येक देशवासी को विकास के अवसर प्राप्त होंगे । कवि के स्वर में राष्ट्रीय चेतना का व्यापक दृष्टिकोण है । भारत की स्वाधीनता से साम्राज्यवाद के शिकंजे में जकड़े विश्व के अन्य राष्ट्रों को भी प्रेरणा प्राप्त होगी । कवि स्वदेश के भविष्य की मंगल कामना करता है । उसकी आकांक्षा है कि राष्ट्र की स्वतंत्रता सुरक्षित रहे और सदा उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे—

प्रार्थना है आज मन मन की ,

जन की न होके यह जनता की जय हो ।

निखिल भवन की पीड़ित मनुष्यता जहाँ हों अभय हो ।

भारत रहे स्वतंत्र शुभतंत्र ।

हे प्रभो सुरक्षित हो उसका सुधर्म मन्त्र ।

उसका महात्म्य बल अक्षय हो ।

जय हो सदैव प्रभु । भारत की जय हो ।

मानवतावादी भावना में स्वतंत्र काल के राष्ट्रीय काव्य मानववादी स्वर मुख्य है । मानव प्रेम भगवद्प्रेम का प्रथम सोपान है । इन्सानों को प्यार करना कवि

अपना परम धर्म मानता है । जो व्यक्ति मानव की गोद में पलकर मानव को प्यार नहीं कर पाया वह भला भगवान को क्या प्यार करेगा —

क्या करेगा प्यार वह भगवान को ।

क्या करेगा प्यार वह इन्सान को ।

जन्म लेकर गोद में इन्सान की ।

प्यार न कर पाया जो इन्सान को ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में राष्ट्रीय भावना में परिवर्तन आया । इस युग के काव्य में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उत्कर्ष की भावना मुख्यतः अभिव्यक्त हुई है।

तृतीय अध्याय  
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का  
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

## अध्याय—तीन

### बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' हिन्दी साहित्य के महान् साहित्यकार हैं । उन्होंने निबन्ध, नाटक, आलोचना आदि समीक्षाओं पर लिखा एवं साहित्य की उन्नति में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रस्तुत अध्याय उनकी जीवन कृतियों का विवेचन किया जा रहा है।

#### पूर्वज :

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के पूर्वज 'खोरिया' नामक गाँव, जिला बस्ती से सुल्तानपुर जिले के दोस्तपुर नामक गाँव में आ बसे थे । उसके बाद वे जिला आजमगढ़ के दत्तापुर गाँव में आकर रहने लगे । ”<sup>१</sup> जहाँ से बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के दादा पं. जगन्नाथ प्रसाद को अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए मिर्जापुर आना पड़ा । वहाँ वे सन् १८३० के पूर्व मुहल्ला गुरहट्टी में आकर रहने लगे । पं. जगन्नाथ प्रसाद के तीन पुत्र थे—बकतूराम, शिवसहाय , पं. शीतल प्रसाद । इन तीनों में प्रथम दो को पंडित जगन्नाथ प्रसाद अपने साथ मिर्जापुर ले आये और तीसरे पुत्र शीतल प्रसाद को खेतीबाड़ी की देखरेख के लिए 'दत्तापुर' गाँव में ही छोड़ आये । शीतल प्रसाद ने अपनी लगन से कुछ लिखना—पढ़ना सीख लिया था । वहाँ उनका मन नहीं लगता था अतः वे अपने पिता के कारोबार में हाथ बटाने के उद्देश्य से मिर्जापुर चले आये । पिता के कार्य में विशेष रुचि न होने के कारण वे किसी अन्य (दूसरे) धन्धे की बात सोचने लगे । अपने चातुर्य व यत्न से उन्होंने मिर्जापुर के तत्कालीन जिलाधीश श्री ए.एच. बुइकाक (A.H.Wood Cock) को प्रसन्न कर लिया । परिणामतः वे सरकार की ओर से बैलगाड़ियों के चौधरी नियुक्त होगये । चौधराने का पं. जगन्नाथ प्रसाद ने बड़ी

<sup>१</sup> प्रेमघन सर्वस्व भाग—१ द्वितीय संस्करण का निवेदन, पं. दिनेश नारायण उपाध्याय, पृ. १५



तत्परता से कार्य किया । अतः पं. जगन्नाथ प्रसाद को इस कार्य में आशातीत सफलता मिली । थोड़े ही समय में वे मिर्जापुर के एक बहुत बड़े सेठ हो गये थे । धनाढ्य के साथ वे धार्मिक सदाचारी व उदार व्यक्ति थे ।<sup>2</sup>

चौधरी शीतल प्रसाद के एकमेव पुत्र पं. गुरुचरणलाल की अभिरुचि व्यवसाय में रही , अपितु आप विद्या के प्रेमी निकले अपार धन सम्पत्ति के स्वामी इन्हें सदार में धन व्यय करने में संकोच न हुआ । चौधरी शीतल प्रसाद के एकमेव पुत्र श्री गुरुचरणलाल थे जिन्होंने अपने पिता से विरासत में विपुल सम्पत्ति के साथ धार्मिक अभिरुचि भी प्राप्त की थी । उनका दुनियादारी के झंझटों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा । किन्तु उनकी मृत्यु के साथ उनके दुर्बल कंधों पर उत्तरदायित्व का भारी बोझ आ पड़ा । गृहस्थी और इतने विस्तीर्ण कारोबार की देखभाल उनके सामर्थ्य की बात नहीं थी । पं. नर्मदेश्वर उपाध्याय ने लिखा है— “ इतनी बड़ी आत्मा शीतल प्रसाद के प्रस्थान पर विचार कर सकते हैं कि उनके पुत्र की क्या अवस्था हुई होगी । एक तो उनके ओजस्वी, प्रतापशाली, भाग्यशाली पिता केवल ४६ वर्ष की अवस्था में प्रस्थान कर गये, काम इतने स्थानों पर दुकानें इतनी अधिक थी चौधराना कई जिलों में छः मिंट मौजे जिनका बसाना अभी पूरा नहीं हुआ था, लूखखा रूपये का अभी लेहना, छोटे—छोटे बच्चे इन सब बातों से वह परम दुःखी हुए और सगते में आ गये । उन्होंने स्थिर किया कि इतना कारोबार उनके वश की बात नहीं । अस्तु पहिला काम तो उन्होंने यह किया कि दस्तावेजात से भरी तीन बोरियाँ बिना देखें कि वह कितने के थे श्री गंगाजी में डुबो दिये, कलकत्ता, फैजाबाद, मेहदावल के गुमाश्ते को लिख दिया कि दुकान बन्द कर दो और माल बेच दो सिवाय मिर्जापुर के बनारस के चौधराने से भी

<sup>2</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमधन और उनका कृतित्व, पृ. ६१

इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार सब कामों को समेट कर अपने कार्य क्षेत्र को सीमित किया।<sup>3</sup>

इसी बीच आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से विशेष प्रभावित हुए चौधरी गुरुचरण लाल फ़ारसी व संस्कृत के विद्वान थे। संस्कृत का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा, स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से गुरुचरण लाल ने संस्कृत भाषा व वैदिक मत—प्रचार के लिए मिर्जापुर, अयोध्या इलाहाबाद और बस्ती में पाठशालायें खोलीं जिसमें ब्राह्मण वैदिक पाठशाला— अयोध्या में चल रही है।

चौधरी गुरुचरण लाल के तीन पत्नियाँ थी, प्रथम तुलसादेवी तथा अन्य दो, गोविन्दी एवं लक्खी देवी आप में बहिनें थीं। तुलसादेवी विदुषी व शीलवती थीं। अतएव चौधरी शीतला प्रसाद तक उनका बड़ा आदर करते थे। उनसे सात पुत्र इस प्रकार हैं — बदरीनारायण प्रेमघन, वासुदेव प्रसाद, मथुरा प्रसाद, यदुनाथ प्रसाद, हरिश्चन्द्र, अनन्त प्रसाद और लोचन प्रसाद तथा एक पुत्री ने जन्म लिया। अन्य दो पत्नियों में गोविन्दी से केवल एक पुत्र (चन्द्रचूड़ प्रसाद) और लक्खीदेवी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया। (चन्द्रमौली, दुष्यन्त तथा श्रीनिवास) इस प्रकार चौधरी गुरुचरणलाल के कुल मिलाकर बारह संताने थीं जिनमें हमारे चरित नायक बदरीनारायण प्रेमघन सबसे बड़े थे। श्री जगन्नाथ धाम के पुरोहित—पत्र में अपना परिचय देते हुये लिखते हैं—

मिर्जापुर गिरजा निकट सुरसारि सरिता तीर ।

तहँ कटरा बृजराज में इक आनन्द कुटीर ॥

सुचि सरजूपारीण कुल उपाध्याय द्विजराज ।

शीतल प्रसाद चौधरी सहित सकल सुख साज ॥

निवसत संमानित तनय तासु गुरुचरण लाल ।

<sup>3</sup> शीतल प्रसाद का जीवन चरित्र : 'सरजूपारीण' पत्रिका, भाग ८ अंक, २५ मई, १९४७

मूर्ति धर्म रिषि कल्प जस फैल्यो जासु विशाल ।

बदरीनारायण तनय तासु प्रेमघन नाम ।

लिख्यो पुरोहित —पत्र यह देय समय पर काम ।<sup>४</sup>

### जन्म काल :

चौधरी बदरी नारायण प्रेमघन का जन्म भाद्रपद कृष्ण ६, सं. १९१२ को इनके पूर्वजों के गांव दत्तापुर जिला गोंडा में हुआ था ।<sup>५</sup> कुछ विद्वानों का मत है कि चौधरी, बदरीनारायण 'प्रेमघन' का जन्म मिर्जापुर के एक अभिजात ब्राह्मण वंश में भाद्र कृष्ण ६ सं. १९१२ को हुआ और इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं । अंग्रेजी तिथि के अनुसार यह दिन २१ अगस्त ईस्वी सन् १८५६ ठहरता है । परन्तु प्रेमघन जी की जन्मपत्रिका के अभाव में उनके जन्म—मुहूर्त के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं । एक जन्म—चक्र जो उनका बतलाया जाता है उसके आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उनका जन्म मध्यरात्रि को हुआ होगा ।

### नाम :

जन्म—पत्रिका के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रेमघन जी का जन्म नाम क्या था ? और उपनाम 'प्रेमघन' जिसे सुविधानुसार 'घनप्रेम' भी लिख दिया करते थे । जैसे— कीरति, वच, परिवार औ राज दराज में है 'प्रेमघन को सौनी ।<sup>६</sup> उर्दू कविताओं में वे अपना तखल्लुस 'अब्र' रखते थे । इस प्रकार है—

नहीं आसां है आना, अब इस बागे मोहब्बत में,

जहाँ दोनों से जाते हैं, वहीं इस जा पर आते हैं।<sup>७</sup>

<sup>४</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २६४, हिन्दी सम्मेलन प्रयाग, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, प्रो.बा.—७०, बनारस ।

<sup>५</sup> किशोरीलाल गुप्त — भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और अन्य सहयोगी कवि— प्रकाशक : ओमप्रकाश बेरी, मुद्रक— ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस ।

<sup>६</sup> प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ.सं. २६७ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग)।

<sup>७</sup> वही, पृ. ४६६

वर्षा ऋतु और बादल अधिक प्रिय होने से प्रेमघन जी ने अपने उपनाम भी 'बादल' के पर्याय ही रखे हैं। उनके नाम के साथ 'चौधरी' शब्द उनके पारिवारिक व्यवसाय का परिचायक है। शुरू से ही प्रेमघन अपनी कविताओं में पूरा नाम लिखते थे, परन्तु आगे चलकर सुविधा की दृष्टि से वे प्रायः उपनाम ही लिखने लगे। उन्हें अपना उपनाम — 'प्रेमघन' रुचिकर हुआ पर पहले वे इसके प्रयोग में संकोच करते रहे। जब काशी की एक विद्वान मण्डली ने उन्हें इसके प्रयोग की स्वीकृति दे दी। तब से इसका प्रयोग करने लगे न केवल नई कविताओं में ही वरन् पुरानी कविताओं में भी उन्होंने अपने मूल नाम के स्थान पर बहुधा इसे रखना आरम्भ कर दिया। इस प्रसंग में वे लिखते हैं— “ जब—जब विचार करता तो यद्यपि कई अच्छे उपनाम स्मरण आते तो भी 'प्रेमघन' के अतिरिक्त चित्त को और न भाते.....भारतेन्दु के स्वर्ग सिंधारने के पश्चात् उस मण्डली के अनेक सज्जन तथा अन्य कई नवीन सुकवियों का भी समावेश श्री गोपाल मंदिर के अधिष्ठाता बल्लभकुलाचार्य गोस्वामी श्रीमानजी जीवनलाल जी महाराज एवं कांकरौली नरेश श्रीमान् गोस्वामी बालकृष्ण लाल जी महाराज के यहाँ विराजमान रहने पर प्रायः उक्त मंदिर में भी वैसा ही होता, वहाँ भी विशेषकर कविता ही की झड़ी लगती और मेरी कविता के साथ ही यह पुराना प्रश्न भी पुनः पूर्ववत् उठता। ..... किन्तु एक दिन मेरे एक कवित्त पढ़ने पर उस माननीय मण्डली में इस विषय में विशेष आन्दोलन हो, यह स्थिरत हो गया और एक ऐसे मुखारविन्द से आज्ञा हुई जिसे सुनकर मान ही लेना पड़ा। ..... निदान तब से ऐसा ही करता चला।”

<sup>१</sup> बा. ब्रजरत्नदास, बी.ए., एल.एल.बी. : भारतेन्दु मण्डल, पृ. ७८, २००६ विक्रमी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

### जन्म स्थान :

चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' के जन्मस्थान के सम्बन्ध में हिन्दी संसार में कुछ मतभेद हैं । कतिपय लेखकों ने उनका जन्मस्थान मिर्जापुर माना है । तो कुछ ने दत्तापुर । मिर्जापुर से प्रेमघन का दीर्घकालिक सम्बन्ध रहा है और उनके जीवन का अधिकांश समय वहीं व्यतीत हुआ परन्तु उससे उनका जन्म सम्बन्ध स्थापित करना भ्रामक है । ऐसा कतिपय वाह्य एवं अंतसाक्षियों के आधार पर कहा जा सकता है । पं. दिनेश नारायण उपाध्याय लिखते हैं— 'प्रेमघन के पितामह पण्डित जगन्नाथ प्रसाद ने नवाबी के समय जिला आजमगढ़ के दत्तापुर ग्राम अपना निवास स्थान बनाया जहाँ पर प्रेमघन का जन्म भी हुआ ।<sup>9</sup> स्वयं चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने 'दत्तापुर' का अपनी जन्मभूमि के रूप में बार—बार उल्लेख किया है । अपनी जन्मभूमि से उन्हें अत्यधिक प्यार था उससे सम्बन्ध टूट जाने पर भी उनकी मधुर जन्मभूमि से अत्यधिक स्मृतियाँ प्रायः उनके मानस में कौंधती रहती थीं । प्रेमघन का अपनी जन्मभूमि से अत्यधिक प्यार था 'दुर्दशा दत्तापुर' नामक कविता में प्रायः अभिव्यक्त हुआ है इसका स्पष्ट उदाहरण इस प्रकार है—

“जन्मभूमि वह यदपि, तऊ सम्बन्ध न कछु अब ।

अपनो वा सो रह्यो, टूटि सो गयो कबै सब ॥

और और ही ठौर भयो अब तो गृह अपनो ।

तऊ लखत मन किह कारन बाही को सपनों ॥<sup>10</sup>

प्रेमघन जी के बालकपन के दिन भी बहुधा वहीं व्यतीत हुए थे—

“जहँ बीते दिन अपने बहुधा बालकपन के ।

जहँ के सहज सब विनोद हे मोहन मन के ॥<sup>11</sup>

<sup>9</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—एक, पृ. १५

<sup>10</sup> श्री प्रभाकरेश्वर, प्रेम सर्वस्व, भाग—१, दुर्दशा नामक कविता, पृ. ५

<sup>11</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २

अतः अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रेमघन का जन्म दत्तापुर में हुआ था न कि मिर्जापुर में । दत्तापुर अपने कुछ प्राचीन अवशेषों के साथ एक छोटे उजड़े से गाँव के रूप में अब भी विद्यमान है ।

### बाल्यकाल एवं शिक्षा :

पं. बदरीनारयण चौधरी 'प्रेमघन' जी का बाल्यकाल अपने जन्मस्थान 'दत्तापुर' में बड़े सुखद रूप में व्यतीत हुआ । उस समय के सुखद क्षणों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं :

“ समालोचना आनन्दप्रद समाय ठाँव की ।

होत जबै, सुधि आवति तब प्रिय वही गाँव की ॥

जहाँ बीते दिन अपने बहुधा बालकपन के ।

जहाँ के सहज सब विनोद है मोहनमन के ।<sup>12</sup>

उनकी विदुषी माता ने उन्हें छोटी उम्र में ही हिन्दी का अक्षर—ज्ञान कराना आरम्भ कर दिया था । तदनन्तर उन्हें विधिवत् पढ़ाने का प्रबन्ध कर दिया था । उस समय फारसी का विशेष प्रचलन था अतः प्रेमघन को फारसी की शिक्षा दिलाई गयी ।<sup>13</sup> उन्होंने फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा 'दत्तापुर' के मकतबखाने में ही प्राप्त की थी । 'दुर्दशा दत्तापुर' नामक कविता से यह भलीभाँति विदित हो जाता है दत्तापुर के मकतबखाने का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं:

यही ठौर हुतो हाय वह मकतब खाना ।

पढ़न पारसी विद्या शिशुगन हेतु ठिकाना ।

पढ़त रहे बचपन मैं हम जहाँ निपज भाइन संग ।

अजहुँ आय सुधि जाकी पुनि मन रंगत सोई रंग ॥<sup>14</sup>

<sup>12</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २

<sup>13</sup> बा. ब्रजरत्न दास, बी.ए.एल.एल.बी., भारतेन्दु मण्डल, वि. २००६, पृ. ७९

<sup>14</sup> प्रेमघन सर्वस्व : भाग—एक, पृ. १७

प्रेमघन के समय में शासकों की अंग्रेजी भाषा का बोलबाला होना स्वाभाविक था । देश में उसका प्रचार-प्रसार दिनोंदिन बढ़ रहा था । युग की हवा और आवश्यकता के अनुसार प्रेमघन को भी अंग्रेजी शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की गयी । इसलिए उन्हें फैजाबाद के राजकीय स्कूल में प्रविष्ट कराया गया । फैजाबाद के पूर्व गोंडा में भी उनकी शिक्षा का उल्लेख कतिपय लेखकों ने किया है । पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं— “ कुछ कालांतर में गोंडे में अंग्रेजी की शिक्षा के सिलसिले में भेजे गये । जहाँ अवधेश महाराज पर प्रतापनारायण सिंह, लाला त्रिलोकी नाथ सिंह और राजा उदयनारायण सिंह के साथ हो जाने से उन्हें अश्वारोहण, गज संचालन, लक्षवेध और मृगया से अधिक अनुराग हो गया। ”<sup>१५</sup>

किन्तु पं. दिनेश नारायण उपाध्याय ने प्रेमघन की गोंडा में शिक्षा का प्रतिवाद करते हैं वे लिखते हैं — “ प्रेमघन ने फैजाबाद के पूर्व अन्य किसी अंग्रेजी स्कूल में शिक्षा नहीं पायी थी । फैजाबाद के गवर्नमेंट स्कूल में पढ़े थे— गोंडा में शिक्षा प्राप्त करना आदि बिल्कुल गलत है । उस समय गोंडा में हाई स्कूल था ही नहीं, फैजाबाद में कमिशनरी होने के नाते एक हाईस्कूल नहीं था। ”<sup>१६</sup>

अंतर्संक्षिप्त के आधार पर त्रिपाठी के इस कथन की भी पुष्टि नहीं होती कि प्रेमघन का अवधेश महाराज सर प्रताप नारायण सिंह आदि से गोंडा में परिचय हुआ था क्योंकि स्वयं प्रेमघन ने फैजाबाद स्कूल में उनसे परिचय का उल्लेख किया है यदि इसके पूर्व भी उनसे परिचय होता तो वे उसका अवश्य उल्लेख करते । वे लिखते हैं— “ यद्यपि हम लोग उनके अंतरंग भेदों के जानकार थे और सम्बन्ध हमारा अत्यन्त घनिष्ठ था किशोरावस्था, अर्थात् छात्रावस्था ही से हम लोग परस्पर परिचित थे । क्योंकि हम भी उन दिनों फैजाबाद के जिला स्कूल में पढ़ते

<sup>१५</sup> पं. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, दूसरा भाग, वि.सं. १९८३

<sup>१६</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ६८

थे, उस समय भी हमें उनकी अलौकिकता भस्मपुंज में छिपी आग की चिनगारी सी जुगजुगाती लखाती थी ।<sup>17</sup> अतः यह कहना अधिक संगत है कि प्रेमघन की अंग्रेजी शिक्षा पहले फैजाबाद जिला स्कूल में हुई थी ।

प्रेमघन जब फैजाबाद स्कूल में पढ़ते थे उन दिनों वे अयोध्या में अपने पिता की सरयूबाग वाली ब्राह्मण वैदिक संस्कृत पाठशाला में रहा करते थे । फैजाबाद स्कूल में ही उनका प्रतापनारायण सिंह, लाला त्रिलोकीनाथ सिंह और उदय नारायण सिंह आदि से सम्पर्क हुआ जो मित्रता के परिणत हो गया ।

उक्त महानुभाव के संसर्ग से प्रेमघन की घुड़सवारी, गजसंचालन और लक्ष्यभेद के प्रति आकृष्ट हुए । इस सम्बन्ध में जब उनके पितामह पं. शीतल प्रसाद जी को ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रेमघन को अपने पास मिर्जापुर बुला लिया और घर पर ही प्रेमघन के पढ़ने की व्यवस्था की गयी । उन्हें पढ़ाने के लिए मौलवी और पंडित नियुक्त किये गये ।

पं. नर्मदेश्वर उपाध्याय इसे स्वीकार करते हैं । वे लिखते हैं — “ चौधरी शीतल प्रसाद —पितामह को पता चला कि पौत्र वहाँ शिकार खेलता है, गज संचालन में विशेष रुचि है मिर्जापुर बुला लिया यहाँ स्कूल में भरती नहीं हुए । एक मौलवी और एक पंडित पढ़ाने को आते थे इससे बाबा ब्रजरत्नदास का यह कथन असंगत प्रतीत होता है कि पितामह की मृत्यु पर प्रेमघन फैजाबाद से मिर्जापुर लौट आये और वहाँ के स्कूल में पढ़ने लगे ।<sup>18</sup>

मिर्जापुर में प्रेमघन का अध्ययन क्रम घर पर ही चलता रहा । हिन्दी संस्कृत उन्हें पं. रामानन्द पढ़ाते थे । उनका संसर्ग प्रेमघन के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना थी क्योंकि हिन्दी—संस्कृत का ज्ञान प्रदान करने के साथ ही वे उन्हें कविता

<sup>17</sup> वही, पृ. ६८

<sup>18</sup> बा. ब्रजरत्न दास, बी.ए.एन.एल.बी., ‘भारतेन्दु मण्डल’ वि.सं. २००६, पृ. ७९



के क्षेत्र में भी प्रेरित कर रहे थे । प्रेमघन के ही शब्दों में —“ एक बार मेरे पिता यहाँ के एक माफीदार श्री पण्डित रामानन्द जी पाठक जो कि पूज्य चरण मेरे पिताजी के पारिषदों में संस्कृत विद्या के प्रौढ़ विद्वान थे, व्याकरण, न्याय, साहित्य, वेदान्त आदि शास्त्रों में जिनका अच्छा अधिकार था और जो संस्कृत ब्रजभाषा के भी उत्तम कवि थे , मुझे संस्कृत पढ़ाते हुए मेरी बातें और युक्तियों को सुनकर कह उठे , कि अवश्य ही आप एक अच्छे कवि होने वाले से अनुमित होते हैं अच्छा तो कुछ साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ भी पढ़िए । प्रेमघन का अध्ययन क्रम कुछ समय तक सुचारु रूप से चलता रहा किन्तु सन् १८६८ ई. में उनके पितामह चौधरी शीतल प्रसाद के निधनोपरान्त सन् १८६८ ई. में जब घर का सारा कार्यभार उनके पिता चौधरी गुरुचरणलाल के कंधों पर और कुछ स्वयं प्रेमघन पर आ पड़ा तो उनके अध्ययन का नियमित क्रम टूट गया । फिर भी वे समय मिलने पर स्वाध्यायरत रहे और विद्वानों का सत्संग बराबर बना रहा । प्रेमघन के पढ़ने लिखने के बढ़ते हुए उत्साह और प्रगति में उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ सदा बाधक रहीं । बाबा श्यामसुन्दरदास ने ठीक ही लिखा है— कि पढ़ने लिखने के विषय में उनका बारम्बार बढ़ता हुआ उत्साह घर के लोगों ने ऐसा भंग किया कि ये प्रायः इस अंश से उत्साहीन हो गये । प्रेमघन पारिवारिक परतंत्रता उनके विद्यानुराग में बड़ी बाधक हुई ।<sup>१९</sup>

#### पारिवारिक जीवन :

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन सम्मिलित परिवार के सदस्य थे । अल्प—आयु में विवाह होने के कारण उनका विवाह कम उम्र बारह वर्ष की आयु ही में विक्रम संवत् १९२४ में हो गया । उनकी पत्नी श्रीमती जानकी देवी जिला जौनपुर के समनसा गाँव की, पण्डित देवी दयाल उपाध्याय की पुत्री थी ।

<sup>१९</sup> डॉ श्यामसुन्दर दास : हिन्दी के निर्माता, भाग-१, पृ. ४७

प्रेमघन जी का उनके साथ आजीवन मधुर सम्बन्ध रहा । बहुत समय तक संतानोत्पत्ति न होने तथा परिवार के लोगों के आग्रह करने पर भी उन्होंने अन्य विवाह करने की बात नहीं सोची । कहा जाता है कि संतान के लिए उन्हें कठोर साधनारत होकर सूर्यपूजा करनी पड़ी थी जिसके प्रसाद स्वरूप संवत् १९४९ में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । सूर्य का प्रसाद समझकर ही मानों पुत्र का नाम प्रभाकरेश्वर प्रसाद रखा गया । न केवल पुत्र का ही बल्कि ज्येष्ठ पौत्र का नाम भी सूर्य से ही संबन्धित दिनेश नारायण रखा गया । प्रेमघन जी के एकमेव संतान प्रभाकरेश्वर प्रसाद ही थे । इस सम्बन्ध में कतिपय भ्रांतियाँ देखने में आई है । किसी ने उनके अनेक पुत्रों<sup>२०</sup> का तो किसी ने प्रभाकरेश्वर प्रसाद का उनके पौत्र के रूप में उल्लेख किया है ।<sup>२१</sup> पं. प्रभाकरेश्वर प्रसाद का निधन २० जनवरी सन् १९६३ को हुआ ।<sup>२२</sup> उनके दो पुत्र हुए जिनमें ज्येष्ठ पं. दिनेश नारायण उपाध्याय अधुना शीतलगंज में रहते हैं और कनिष्ठ पं. सुरेश नारायण एडवोकेट गोंडा में वकालत करते हैं । दोनों—सुख—सम्पन्नता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

गुरुचरण लाल की तीन पत्नियाँ थी । सबसे पहली का नाम तुलसादेवी, दूसरी का नाम गोविंदी और तीसरी का लक्खी देवी । प्रथम पत्नी तुलसादेवी के सात संताने थीं दूसरी पत्नी ने एक और तीसरी पत्नी की दो संतान थीं ।

प्रथम पत्नी की पहली संतान का नाम चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन और अन्य छः के नाम इस प्रकार हैं : वासुदेव प्रसाद, मथुरा प्रसाद, यदुनाथ प्रसाद, हरिश्चन्द्र, अनन्त प्रसाद, लोचन प्रसाद, पहली संतान यानि चौधरी बदरीनारायण के पुत्र १. प्रभाकरेश्वर प्रसाद है और प्रभाकरेश्वर के दो पुत्र १. निदेश नारायण ,एम. ए. सा.रत्न, २. पं. सुरेश नारायण,एल.एल.बी. ।

<sup>२०</sup> बा. ब्रजरत्नदास,बी.ए.एल.एल.बी. : 'भारतेन्दु मण्डल, प्रथम संस्करण, २००६वि.सं., पृ. ८३

<sup>२१</sup> डॉ. किशोरी लाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, १९६५, पृ.सं. ३६२-२२७ दि. लेख के लिखे पत्रों में दिनेश नारायण उपाध्याय का परिशिष्ट सं. १२

<sup>२२</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, द्वि.सं. के निवेदन में पृ.सं.१५

दिनेश नारायण का एक पुत्र जिसका नाम राजीवरंजन एम.एस.सी. और सुरेश नारायण के दो पुत्र हैं—१. तारकेश्वर, २. सोमेश्वर ।

प्रेमघन के जीवन का एक पक्ष सुख सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण रहा है तो दूसरा मनस्ताप से विदग्ध । इन मनस्ताप का मुख्य कारण उनकी पारिवारिक प्रतिकूल परिस्थितियाँ थी । परिवार की दो अग्रिय घटनाओं ने उनके जीवन को झकझोर डाला था । उनमें से एक घटना थी स्थायी सम्पत्ति को लेकर पिता के विरुद्ध चलनेवाले अभियोग की जिसमें प्रेमघन जी के साथ उनके सभी सहोदर सम्मिलित थे । संवत् १९४० में प्रेमघन के पिता (चौधरी गुरुचरणलाल) ने अपनी पैतृक सम्पत्ति का एक बड़ा अंश अयोध्या की संस्कृत पाठशाला के नाम धर्मार्थ दान कर दिया था ।<sup>२३</sup>

संततियों की सम्पत्ति के बिना पैतृक सम्पत्ति का यह दान अवैध था । ऐसी स्थिति में प्रेमघन को बाध्य होकर पिता के विरुद्ध मुकदमा लड़ना पड़ा जिसका निर्णय अंत में प्रेमघन के पक्ष में हुआ । दूसरी अग्रिय घटना थी सहोदरों के दुर्व्यवहार के कारण सम्पत्ति के बँटवारे की । यह बँटवारा ई. १९२० के लगभग हुआ । इस बँटवारे से प्रेमघन को मानसिक आघात पहुँचा और वे जीवन के अंतिम वर्षों में अपने प्रिय स्थान मिर्जापुर से शीतलगंज आकर रहने लगे । इस समय वे पारिवारिक कलह द्वेष और दुर्व्यवहार के शिकार हो चुके थे । उनकी अर्न्तव्यथा छन्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए बिना न रह सकी । परिस्थितियों की विषमता से अभिव्यक्त हुए बिना न रह सकी । परिस्थितियों की विषमता में , कवि की विवशता और आत्म प्रबोधन प्रस्तुत छन्द में द्रष्टव्य है—“जग बाह्यो विरुद्ध बखानि न बैर विरोध बढावनो है ।

कुल रीति अचार विचार सबै, गुन गौरव भूरि भुलावनो है ।

लखि तुच्छता और सठता घनप्रेम, हिये न व्यथा उपजावनो है ।

<sup>२३</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ७२, अनुपम प्रकाशन, जयपुर

अब तो नर नीचन बीचन मैं, बसि के यह बैस वितावनो है ।<sup>24</sup>

प्रेमघन के पारिवारिक व्यथा के सम्बन्ध में पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—  
“चौधरी जी ने एक दिन संध्या के समय स्वयं पधारकर प्रयाग में मुझे दर्शन दिया था । उस समय गृहस्थी सम्बन्धी कुछ मानसिक चिन्ता से पीड़ित दिखाई पड़ते थे ।<sup>25</sup> पारिवारिक फूट और दुर्व्यवहार उनकी आमरण व्यथा का कारण बन गये ।

### व्यवसाय :

विपुल पैतृक सम्पत्ति और चौधराने के परम्परागत व्यवसाय की देखरेख ही प्रेमघन का प्रमुख कार्य था । इससे प्राप्त आय उनके सम्मिलित कुटुम्ब के लिए पर्याप्त थी । अतएव उन्होंने कोई नया व्यवसाय नहीं किया और शायद उन्हें इसकी आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई । उन्होंने “आनन्द कादम्बिनी” नामक एक यंत्रालय की स्थापना अवश्य की थी किन्तु वह भी मूलतः किसी व्यावसायिक दृष्टि से नहीं ।

### कार्यक्षेत्र :

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ का कार्यक्षेत्र व्यापक था वे साहित्यकार एवं सम्पादक होने के साथ जाति, धर्म, समाज तथा देशहित के कार्यों में रत रहते थे । हिन्दी भाषा व साहित्य की उन्नति में वे आजीवन लगे रहे । वे हिन्दी के प्रबल समर्थकों में थे तथा देश की एकता के लिए उन्होंने हिन्दी या नागरी को ही एक मात्र उपयुक्त भाषा समझा था ।<sup>26</sup>

बदरीनारायण ‘प्रेमघन’ ने विविध विद्याओं —कविता, नाटक—प्रहसन, निबन्ध और आलोचना आदि के द्वारा हिन्दी साहित्य को परिपुष्ट किया । अपने समय के भाषा—साहित्य—सेवियों में वे अग्रगण्य थे । इस दिशा में उनका सक्रिय

<sup>24</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २१९-२२०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

<sup>25</sup> पं. रामनरेश त्रिपाठी ‘कविता कौमुदी’, वि.संवत्, १९८३, पृ. ३६

<sup>26</sup> आनन्द वधाई : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ. ३१९-३२०

महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । उनकी हिन्दी भाषा—साहित्य विषयक महत्त्वपूर्ण सेवाओं को पुरस्कार स्वरूप ही “ हिन्दी साहित्य सम्मेलन” ने उन्हें अपने तृतीय अधिवेशन ( वि.सं. १९७०) का सभापति निर्वाचित किया था । उस समय बा. राजेन्द्र प्रसाद अधिवेशन की स्वागत कार्यकारिणी समिति के मंत्री तथा बा. पुरुषोत्तमदास टण्डन सम्मेलन के प्रधान मंत्री थे ।<sup>२७</sup>

सम्पादक के रूप में प्रेमघन ने “आनन्द कादम्बिनी” नामक एक मासिक पत्रिका और “नागरी नीरद” नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन किया था । वे अपने समय के हिन्दी सम्पादकों में विशेष रूप से सम्मान्य थे ।<sup>२</sup> सन् १९०७ ई. में प्रयाग की सम्पादक समिति के वे उपसभापति और १९११ ई. में सभापति निर्वाचित हुए ।<sup>२८</sup>

प्रेमघन हिन्दू जाति, धर्म और समाज की शुभ परम्पराओं के प्रबल समर्थक थे । नव शिक्षितों द्वारा अपनी श्रेयस्कर परम्पराओं का परित्याग करना तथा पाश्चात्य सभ्यता के अंधप्रवाह में बहते आना उन्हें अहितकर प्रतीत होता था । इसे वे देश के लिए घातक समझते थे । साथ ही वे भारत के नवोद्भूत समाजों ब्राह्मसमाज, व आर्य समाज—आदि के भी पक्ष में नहीं थे । वे लिखते हैं—ईसाई, मुसाई, यवन, मलेच्छादि, हमारे धर्म, कर्म, आचार—विचार के पूरे शत्रु हैं और ब्राह्मसमाजी, आर्य समाजी तथा अंग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभाव से विकृत मस्तिष्क वाले कानों साहब लोग व जिन्हें नकली अंग्रेजी कहना चाहिए, आधे शत्रु हैं । अथवा यो कहिये कि वे दाना, दुश्मन और ये नादान दोस्त हैं । क्योंकि उनका आघात केवल धर्म ही पर होता है और वे केवल हमारे विश्वास का नाश करना चाहते , परन्तु ये तो आचार—विचार व्यवहार और जातीय संस्कार आदि सभी को

<sup>२७</sup> तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन : कलकत्ता कार्य विवरण, पहला भाग, वि.सं. १९७०, पृ. १

<sup>२८</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ८३

समूल नाश करने की ताक में अहर्निश पड़े रहते हैं ।<sup>29</sup> जाति, धर्म और समाज के विकास की दिशा में उनका सक्रिय योग था । इनकी श्रेष्ठ परम्पराओं के रक्षणार्थ उन्होंने साहित्य व पत्रकारिता का सहारा तो लिया ही अपने नगर में इन विशेषताओं से सम्बन्धित अनेक सभाएँ भी स्थापित कीं ।

देश की राजनीतिक हलचलों पर उनकी दृष्टि बराबर टिकी रहती थी । बदरीनारायण चौधरी की रचनाओं में राजनीतिक विषयों का समावेश प्रायः रहा करता था । 'भारत सौभाग्य' रूपक देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ज्वलंत चित्र प्रस्तुत करता है । जातीय सभा (नेशनल कांग्रेस) को ये देश की दास्यमुक्ति का एक अतीव महत्वपूर्ण साधन मानते थे और उसके प्रति वे विशेष आशान्वित थे । मिर्जापुर के प्रतिनिधि रूप में वे उसके अधिवेशनों में प्रायः भाग लिया करते थे तथा ऐसे अवसरों पर राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण कविताएँ रचकर उन्हें सदस्यों में वितरित कर दिया करते थे । 'शुभसम्मिलन' उनकी एक ऐसी ही रचना है ।<sup>30</sup>

प्रेमघन का देश की विविध सभा—समितियों से सम्बन्ध था तथा उन्होंने जनजागरण के प्रयोजन से मिर्जापुर में भी अनेक सभा—समितियाँ स्थापित की थी । उनमें कतिपय सभा समितियाँ जिनसे उनका सम्बन्ध था । इस प्रकार हैं<sup>31</sup>—

(अ) धर्म सम्बन्धी : सनातन धर्म, महामण्डल, श्री सनातन धर्म रक्षिणी सभा, सद्धर्म सभा, और गोरक्षिणी सभा आदि ।

(ब) जाति व समाज सम्बन्धी : प्रादेशिक सरयूपारीण ब्राह्मण समाज, हिन्दू समाज, पेट पालनी सभा, और मिर्जापुर उपकार सभा आदि ।

<sup>29</sup> श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, पृ. २१२

<sup>30</sup> शुभ सम्मिलन— प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ. ३६५

<sup>31</sup> रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ८४

(स) भाषा—साहित्य सम्बन्धी : रसिक समाज, नागरी नाटक मण्डली, नागरी संबर्द्धिनी सभा तथा नागरी साहित्य संबर्द्धिनी सभा आदि ।

(द) राजनीति सम्बन्धी : जातीय महासभा (Indian National Congress) ।

उक्त सभा समितियों में से प्रेमघन ही संस्थापक थे और उनका सम्बन्ध प्रायः मिर्जापुर से ही था । इन सभा समितियों से सम्बन्धित विज्ञप्तियों और सूचनाओं को देखने से विदित होता है कि इनके अधिवेशन या आयोजन की बहुधा प्रेमघन के ही निवास स्थान पर ही हुआ करते थे तथा उनके विज्ञापन एवं सूचनाएं भी प्रायः प्रेमघन के 'आनन्द कादम्बिनी' यंत्रालय से ही निकला करती थी । यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि प्रेमघन मिर्जापुर के सांस्कृतिक जीवन के मूल प्रेरणा स्रोत थे किन्तु खेद का विषय है कि ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य का मिर्जापुर के जन जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो आज वहाँ कोई सार्वजनिक स्मारक भी नहीं है ।

### अभिरुचि :

व्यक्ति की अभिरुचि बहुत कुछ उसकी परिस्थितियों और संस्कारों पर निर्भर करती है । इसका सम्बन्ध उसके वयक्रम व अनुभवों से भी हुआ करता है । लड़कपन में प्रेमघन जी का सम्बन्ध राजपुत्रों से रहा और वे घर से बाहर भी रहे । उस समय उन पर किसी उत्तरदायित्व का कोई भार भी न था । अतः उस समय उनकी अभिरुचि के विषय अश्वारोहण, लक्ष्यवेध और गजसंचालन आदि रहे । कालांतर में जब उन्होंने अपने घर का कारोबार सम्भाला और अर्थसत्ता उनके हाथ में आई उनकी रुचि में परिवर्तन हुआ । उत्तरोत्तर उनका सुझाव काव्य साहित्य और नृत्य संगीतादि ललित कलाओं की ओर हो चला । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से सम्पर्क स्थापित होने पर तो उनकी कलात्मक अभिरुचि और भी उद्दीप्त हो उठी । अब उनका अधिकांश समय आमोद—प्रमोद, संगीत—नृत्य, साहित्य सृजन व

एतद्विषयक चर्चाओं में व्यतीत होने लगा और 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्' की उक्ति चरितार्थ होने लगी ।

बदरीनारायण प्रेमघन साहित्य—संगीत के मर्मज्ञ थे वैसे उनकी प्रतिभा के अनेक दिशाओं में चमत्कार दिखलाया परन्तु उनकी विशेष रुचि कविता की ओर थी । वे लिखते हैं—“ कविता से स्वभावतः अनुराग तो मुझे बचपन से ही। विद्याध्ययन के समय में भी गद्य की अपेक्षा पद्य को विशेष रुचि से पढ़ता, उत्तम—उत्तम छन्दों को कण्ठ करता, अन्य भाषा की पुस्तकों के अर्थ लिखने और कहने में भी प्रायः तुकबन्दी किया करता बल्कि कभी—कभी दूसरी भाषा के छन्दों का अनुवाद भी करता, सहपाठियों से सुनाता और प्रशंसा पाकर प्रसन्न होता था।”<sup>32</sup> प्रेमघन के शिक्षा गुरुओं में पं. रामानन्द जी पाठक का विशिष्ट स्थान था वे ही उनके कविता गुरु भी थे । आरम्भ में उनके काव्य प्रेम और प्रतिभा को उद्दीप्त करने और उसे सुनिर्दिष्ट मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले वे ही थे । प्रेमघन लिखते हैं— “कविताओं की समस्यायें भी दे देते, मैं उसकी पूर्ति करता, जिसे सुनकर वे प्रायः प्रसन्न हो मेरी प्रशंसा करते अशुद्धियों को बतलाते एवम् संशोधन भी कर देते ..... अपने यहाँ आनेवाली कवि और बन्दीजनों से भी सुने कवित्तों तथा महफिल आदि में सुनी ठुमरियों के भी जोड़े जोड़ता ..... इस प्रकार किशोरावस्था के व्यतीत होते वयोवृद्धि के साथ ही साथ कुछ—कुछ इसकी भी वृद्धि होती चली और इस प्रकार फुटकर तुकबन्दियों की शक्ति मानों एक प्रकार की कविता का रूप धारण कर चली ।

प्रेमघन बेमन का लिखना पसन्द नहीं करते थे । रुचि होने पर ही वे लिखते और उसके उचटते ही लिखना बन्द कर दिया करते थे क्योंकि—

“गौहरे मज़मूं निकलते हैं मगर बे आब्दार ।

<sup>32</sup> रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ८५



जबकि दर्याये तबीअत जोश पर होता नहीं ॥

इसीलिए उनकी अनेक कहानियाँ अधूरी ही रह गयीं हैं । कहा जाता है कि वे प्रायः घूमते हुए छंद —रचना करते थे—सुबह बहुधा मिर्जापुर की कोठी के ऊपरी बरामदे में तो सायंकाल विजया लेकर छत पर । छत की एक दीवार पर एक छोटी शिला (जो अब भी वहीं लगी हुई है ) उनकी कविता के पृष्ठाधार का काम दिया करती थी । आगे चलकर जब लिखने में उनका हाथ कॉपने लगा था वे बहुधा दूसरों से लिपिक का काम लेने लगे थे ।

प्रेमघन की अभिरुचि का दूसरा विषय संगीत था । इसमें उनकी विशेष गति थी । उन्हें न केवल स्वर लय और तालादि का तलस्पर्शी ज्ञान ही था वरन् वे संगीतकाव्य के रचयिता भी थे । विविध राग रागिनियों में रची उनकी अनेक संगीत रचनायें प्रेमघन सर्वस्व के प्रथम भाग में संग्रहीत हैं । विविध लयों में उनकी कजलियाँ हिन्दी की मूल्यवान निधि हैं । उनके संगीतानुराग और संगीत विषयक नैपुण्य के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक स्थान पर लिखा है, “ ऐसे रसिक जीव का संगीत प्रेमी होना आश्चर्य की बात नहीं । उन्होंने बहुत सी गाने की चीजें बनाई जो उन्हीं के सामने मिर्जापुर में गाई जाने लगी । चौधरी साहब कितने बड़े संगीत के आचार्य थे यह उनके गीतों से स्पष्ट रूप से विदित हो जाता है ।<sup>33</sup> अपने संगीतानुराग और संगीत रचना के विषय में प्रेमघन ने इस प्रकार लिखा है—“ यौवनावस्था के आविर्भाव के संग विद्या में अधिक अनुराग उत्पन्न होता चला और एक गान विद्या विशारद परम प्रिय मित्र के घनिष्ठ सम्बन्ध से विशेषतः उनके आग्रह और प्रसन्नतार्थ प्रचरित गाने के गीतों की रचना का अत्यधिक अवसर उपलब्ध हुआ । क्योंकि मैं जो गाने की चीजें गाता, उन्हीं को देता । वे उसे सीख और सुधारकर गाते, मुझे सुनाते और आनन्द की झड़ी लगाते । यों सामान्य भाव भरी ठुमरी, दादरा, होली आदि की सुहावली रागिनी,

<sup>33</sup> श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व—१ परिचय नामक लेख में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. १०

मनोहर स्वर और रसीली लय से सुसज्जित हो जब मयंक मुख से सुधा धारा के समान कान में आन पड़ती, तो कुछ अकथनीय आनन्द अनुभव करा देती थी । मैं यदि उनके गान के बंधन के सुरों के सुधार और संस्कार लय के लालित्य या गानों की विलक्षणता पर बाह—बाह कर लट्टू हो जाता, तो वह मेरी रचना चातुरी पर , जिनकी हों में हों मिलानेवाले अन्य सज्जन सहृदय सुननेवाले भी बहुत कुछ सराहना कर चलते यों वह अपनी सामान्य प्रशंसा भी लाखों के मोल से न्यून न जंचती और उत्साह का अंकुर लगियों ऊँचा हो जाता । क्रमशः समय ने उन सामान्य भोले भावों को भुलाकर चित्त पर पड़ी सच्ची चोटों की व्यवस्थाओं की कथायें कहलाई और उस दृश्य को भी दूर कर अन्य अनेक अनुभूत वक्तव्यांश व्याख्या का भी अवसर दिया । इस प्रकार बहुत दिनों गीतों की रचना का सम्बन्ध रहने से उनकी संख्या भी अधिक हो गयी । <sup>३४</sup>

### देशाटन :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' को विदेश जाने का अवसर नहीं मिला पर उन्होंने देश में दूर—दूर के विभिन्न स्थानों की यात्रायें अवश्य की थीं । जहाँ तक विदित है उन्होंने पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में बम्बई तथा दक्षिण में श्री रामेश्वरम् कन्या कुमारी तक यात्रायें की थीं ।

पर्यटन में उनकी रुचि बचपन से ही थी । वे चरणाद्रि व विंध्यगिरि की श्रेणियों में भ्रमणार्थ प्रायः चले जाया करते थे । कहा जाता है कि इस कार्य में उन्हें कई दिन लग जाते थे और एक बार उनके अभिन्न मित्र बा. हरिश्चन्द्र भी उनके साथ गये थे । प्रेमघन के देशाटन सम्बन्धी जो उल्लेख यत्र—तत्र मिलते हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका गोंडा, आजमगढ़, फैजाबाद, बनारस, कलकत्ता, जौनपुर, इलाहाबाद और लखनऊ आदि स्थानों में प्रायः आना—जाना रहा है । इनके अतिरिक्त पुरी, मद्रास श्री रामेश्वरम् , कन्याकुमारी, पूना, बम्बई,

<sup>34</sup> कजली कादम्बिनी और कजली कुतूहल, वि.सं. १९७० ले. प्रेमघन सूचना, पृ. २३

दिल्ली, आगरा, सिकन्दरा, फतेहपुर सीकरी, मथुरा, चित्रकूट, जबलपुर आदि स्थानों की यात्राओं के भी उल्लेख मिलते हैं । एक बार 'आनन्दकादम्बिनी' के प्रबन्धकर्ता ने प्रेमघन की यात्राओं का इस प्रकार उल्लेख किया था सम्पादक महाशय दो मास पर्यन्त किसी परमावश्यक कार्य से , बम्बई, नर्मदा कन्दर्पकानन के तथा विन्ध्यगिरि अवलोकन में दत्तचित्त रहे ।<sup>35</sup>

देशाटन से प्रेमघन को देश के विविध भागों के लोगों के रहन—सहन तथा उनकी भाषाओं सम्पर्क में आने का अवसर मिला जिनका उन्होंने अपने साहित्य में स्वतंत्रता से उपयोग किया ।

#### मित्र मण्डल :

कार्य क्षेत्र की व्यापकता के कारण प्रेमघन का परिचय क्षेत्र भी बहुत व्यापक था । उनके परिचितों में साहित्यकार, सम्पादक, सेठ—साहूकार, पंडित, राजनीतिक, समाजसुधारक, धर्मगुरु, राजा—महाराजा, हिन्दू—मुसलमान, किसान व नये पुराने आदि विविध वर्गों तथा स्तरों के लोग थे । इन सबका उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं है और न अभीष्ट ही । इनमें से कुछ की सूचना प्रेमघन के पत्रों लेखों, आलोचनाओं और संग्रहग्रन्थों की भूमिकाओं से मिल सकती है उनके निबन्धों में 'गुप्त गोष्ठी गाथा', ' दिल्ली दरबार में मि. मण्डली के यार, तथा 'बनारस का बुढ़वा मंगल, में उनके मित्रों के परिचय उपलब्ध है । 'गुप्तगोष्ठीगाथा' में उन्होंने अपने कतिपय निकट के मित्रों का छद्मनाम से वर्णन किया है । इनके सम्बन्ध में वे लिखते हैं, ये सब के सब प्रायः मेरे अभिन्न मित्र हैं जो अहर्निश कोई न कोई अवश्य मुझे घेरे रहते हैं कि जिससे पिंड छुड़ाना भी कभी—कभी कठिन हो जाता है । यद्यपि उनमें दो एक से मुझे दांतकाटी रोटी और दो शरीर एक प्राण का सम्बन्ध है । परन्तु कोई—कोई ऐसे भी हैं जो बिना स्वागत के सदा उपस्थित

<sup>35</sup> आनन्द कादम्बिनी : माला ३ मेघ १—२, आवरण पृष्ठ के पीछे

रहते और जो बैठ जाते तो उठने का नाम भी भूल जाते।<sup>36</sup> ये मित्र संख्या में ग्यारह थे किन्तु निबन्ध में उनमें से केवल सात का ही उल्लेख हुआ है। इनके छद्म नाम इस प्रकार हैं— विज्ञानशेखर शास्त्री, विद्यावास्पति, भयंकर भट्टाचार्य महाराजा करुणानिधानेश्वर सिंह निशाकरधर, सेठ डरपोकमल, नवाब बेकरारुद्दौला और मुन्शी गुलामलाल।<sup>37</sup> इनमें सच्चे पात्रों का शोध करते हुए पं. दिनेश नारायण जी लिखते हैं श्री विज्ञानशेखर शास्त्री, पंडित चन्द्रभूषण जी, व्याकरणाचार्य, प्रधान अध्यापक, वैदिक पाठशाला, सरजूबाग अयोध्या के तत्कालीन आचार्य थे जिनसे प्रेमघन का भी साख्यभाव था और वे 'आनन्द कादम्बिनी' के लेखकों में से भी थे। सेठ डरपोकमल मिर्जापुर के सेठ बिहारीलाल थे जो उनके बालसखा तथा अनन्य मित्र थे, भयंकर भट्टाचार्य, बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री थे। आपसे भी उनका दिन-प्रतिदिन का वाग्विलास होता और हास-परिहास का जमघट एक दूसरे के घर पर जमता था। करुणानिधानेश्वर सिंह आपके सखा श्री कृष्णदेवशरण सिंह जू देव गोप भारतेन्दु मण्डल के उन व्यक्तियों में से थे जिनका निर्वासन ब्रिटिश राज्याधिकारियों ने करके लंगड़ कर दिया था। निशाकरधर बैरिस्टर मिर्जापुर के बाबू श्रीराम वकील थे जो पास ही में रहते थे और सदा प्रेमघन के साहित्य संगीत के समारोहों में भाग लेते और उनकी मण्डली को उत्साहित और सफल बनाया करते थे। नवाब बेकरारुद्दौला का चरित्र नवाबी साम्राज्य के भग्नावशेष विभूतिधारी एक उनके मित्र का चरित्र है।<sup>38</sup> 'दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार' निबन्ध को देखने से ज्ञात होता है कि नवाब बेकरारुद्दौला प्रेमघन के परममित्र लखनऊ निवासी नवाब फैयाजुद्दौला थे।<sup>39</sup>

<sup>36</sup> श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-२, पृ. ६५

<sup>37</sup> श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-२, गुप्त गोष्ठी गाथा

<sup>38</sup> वही, भूमिका, पृ. १४-१५

<sup>39</sup> वही, दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार', पृ. १३४

पं. नर्मदेश्वर ने अपने एक लेख ' भारतेन्दु संस्मरण' में प्रेमघन और भारतेन्दु की अनन्य मित्रता का उल्लेख किया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं प्रेमघन की घनिष्टता साहित्य संसार में सर्वविदित है । स्वयं प्रेमघन जी ने उनसे अनन्य मित्रता का उल्लेख कई स्थानों पर किया है । अपनी अभिन्नता प्रकट करते हैं । एक स्थान पर वे लिखते हैं— एक दिन मैं अपने अभिन्न हृदय माननीय मित्र भारतेन्दु से संयोगात् कह उठा..... प्रेमघन के स्थानीय मित्रों में बाबा श्रीराम वकील नवाल्क साहु, पं. कान्ता नाथ, भट्ट, इन्द्र नारायण शांगलू, महन्त जयरामगिरि व वामनाचार्य थे तथा भारतेन्दु के अतिरिक्त इतर स्थानीय साहित्यिक मित्रों में पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. अम्बिकादत्त व्यास, बा. रामकृष्ण वर्मा, पं. गोपीचन्द्र पाठक, बा. बालमुकुन्द गुप्त, बा. राधाकृष्ण दास तथा कृष्णदेव शरण सिंह थे । प्रेमघन ने कतिपय आलोचनाओं में पं. राधाचरण गोस्वामी, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध, पं. बालकृष्ण भट्ट, और बाबा गदाधर सिंह का अपने मित्रों के रूप में उल्लेख किया है ।

संक्षेप में प्रेमघन के मित्रों एवं व्यवहारियों में से कुछ की सूची इस प्रकार दी जा सकती है — भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डा. ग्रियर्सन , बा. राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र, कृष्णदेवशरण सिंह, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. मदनमोहन मालवीय, बा. बालमुकुन्द गुप्त, ठा. जहगमोहन सिंह, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, सुधाकर द्विवेदी, अवधेश प्रतापनारायण सिंह, रीवा नरेश रघुराज सिंह (रघुराज) लाल रमेश सिंह, जू देव, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पुरुषोत्तम दास टण्डन, महादेव प्रसाद सेठ, किशोरीलाल गोस्वामी, डॉ. ग्रियर्सन के सहायक रामगरीब चौबे, राधा चरण गोस्वामी, बा. उग्रसैन रामबहादुर बैजनाथ, लोचनप्रसाद पाण्डेय (८ आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल, पं. चन्द्रभूषण, सेठ बिहारीलाल, बा. दुर्गा प्रसाद खत्री, श्रीराम वकील, नवाब फैजाजुद्दौला, नवाल्क साहु, पं. कान्तानाथ भट्ट, इन्द्र नारायण शांगलू, महन्त जयराम गिरि, वामनाचार्य, पं. गोपीचन्द्र पाठक, पं. अयोध्या सिंह

उपाध्याय 'हरिऔध', बा. गदाधर सिंह, भगवानदास, जायसवाल और शैलजा कुमार घोष आदि । उनके मित्रों एवं परिचितों की यह सूची वस्तुतः आंशिक ही है ।

प्रेमघन के मित्रों में से पं. इन्द्रनारायण शांगलू, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्रीकृष्ण देव शरण सिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इस सम्बन्ध में यहाँ तनिक विस्तार से उल्लेख किया जा सकता है—

(क) पं. इन्द्रनारायण शांगलू :

शांगलू प्रेमघन के मित्र व अग्रजतुल्य थे। मिर्जापुर में वहाँ के इलाकों के तहसीलदार थे । जाति से कश्मीरी ब्राह्मण, कुशाग्रबुद्धि, सरस, देश प्रेमी व लोक व्यवहार में प्रवीण थे । अंग्रेजी फारसी और हिन्दी आदि भाषाओं के वे अच्छे ज्ञाता थे तथा उर्दू के कवि संगीत—प्रेमी समाज सुधारक और प्रगतिशील विचारकों के एक जिंदादिल व्यक्ति थे । वि.संवत् १९२९ में उनकी प्रेमघन से मित्रता हुई थी ।<sup>४०</sup> उन्होंने प्रेमघन की प्रतिभा को पहचाना था और पं. रामानन्द पाठक के अनंतखे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने उन्हें कविता की ओर विशेष प्रेरित किया । उर्दू—काव्य रचना की ओर प्रेमघन को आकृष्ट करने वाले ही थे । यह उन्हीं के सम्पर्क का फल है कि आज प्रेमघन की अनेक कविताएँ उर्दू में भी मिलती हैं ।

कहा जाता है कि प्रेमघन के, अपने लेख व कविताएँ सुनाने के आत्मबल तथा सभा समाजों के प्रति उनकी अभिरुचि के पीछे शांगलू की ही प्रेरणा थी । वे जिन सभा समितियों में जाते उनमें प्रायः प्रेमघन को भी अपने साथ ले जाया करते थे तथा वहाँ उन्हें सभापति या सभासद बनाकर उनसे भाषणादि दिलवाया

<sup>40</sup> भारतेन्दु मण्डल, वि.सं. २००६ ब्रजरत्नदास, पृ.सं. ८१

करते थे। इस प्रकार शांगलू के सम्पर्क से ही प्रेमघन में भाषणों के प्रति अभिरुचि जाग्रत हुई तथा सभाज्वर दूर हुआ।

शांगलू के सम्पर्क से ही प्रेमघन के जीवन में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना घटित हुई और वह थी बा. हरिश्चन्द्र से उनके परिचय की।<sup>४१</sup>

### भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

वि. संवत् १९२९ में शांगलू जब काशी गये <sup>१६०</sup> तो वे अपने साथ प्रेमघन को भी ले गये। वहाँ उन्होंने भारतजेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका परिचय कराया। भारतेन्दु ने प्रेमघन में अपनी ही प्रतिमूर्ति देखी। यह परिचय निरन्तर बढ़ता गया और अन्ततोगत्वा अनन्यता में परिण हो गया। दोनों एक दूसरे के यहाँ आते—जाते और दिनों तक साथ ठहरते। “कजली मेले में सम्मिलित होने भारतेन्दु जी प्रेमघन के यहाँ आया करते थे। उत्सवप्रिय दोनों मित्र मिल जाते। न केवल भाव और आचार में समानता थी, किन्तु रूप और वेश भूषा में भी मैत्री थी। दोनों ही सांवले सलोने, दोनों ही काकुल से आकुल, दोनों ही कालिवदार कामदार टोपी के प्रेमी, दोनों ही पान को भोजन से भी अधिक प्रिय समझने वाले, दोनों ही या निशास सर्व भूतानां तस्यां तजाग्रति संयमी करने वाले। फिर क्या था? प्रेमघन का बाहरी द्वार बन्द हो जाता था और कोई आ जा नहीं सकता था। ..... दोनों मित्र एक ही कमरे में सोते, खाते—पीते रहते थे कहीं अपनी अपनी कविता सुनाते और अपने रहस्यों का उद्घाटन करते। नाच रंग का भी रंग रहता।

भारतेन्दु के व्यक्तित्व का प्रभाव संक्रामक था तत्कालीन साहित्यकारों में कदाचित ही कोई ऐसा रहा हो जो उनके सम्पर्क में आने पर उनके प्रभाव से

<sup>41</sup> भारतेन्दु मण्डल, वि.सं. २००६ ब्रजरत्नदस, पृ.सं. ८१

अछूता रह सका हो। उनके मित्रों में प्रेमघन पर उनका रंग सबसे अधिक चढ़ा और वे अंदर बाहर से उनके रंग में रंग गये ।

अपने ऐसे प्राणोपम मित्र के असामयिक निधन पर प्रेमघन जी को कितना मर्माघात हुआ होगा यह सहज ही अनुमेय है । उनके निधन पर रची 'शोकाश्रुबिन्दु' नामक कविता में हृदय रो पड़ा है, क्योंकि—

“ रोवै क्यों न गुनी जाके रहे गुन गाहक ना,

पंडित सुकवि रोय सुख सेज सोवै ना ।

रोवै क्यों न पत्रन प्रचारक हितैषी देश,

सभा को करैया कैसे हिय हरखु खोवैना ॥

दीन मीन दान सिन्धु सूखे किन रोवै,

रोवै भारत समस्त दूजो सत्यप्रिय जोवैना ।

मित्र क्यों न रोवै तेरो शत्रु क्यों न होवे तऊ

पूरो पशु होवे ना तो क्या मजाल रोवै ना । ”<sup>४२</sup>

पं. नर्मदेश्वर उपाध्याय ने भारतेन्दु के निधन पर प्रेमघन की दशा का इन शब्दों में उल्लेख किया—“ भारतेन्दु ऐसे सखा, मित्र सहृदय के दिवंगत होने पर प्रेमघन अत्यन्त व्यथित हृदय काशी में अपने मित्र के निवास स्थान पर बार—बारा तजाते सिर धुनते, बिना स्नान किये बिखरे बाल, दिवाने से घूमते अनेक दिन बिताये । वहाँ से लौटकर वह नाच रंग से उदासीन हो गये और सरस्वती पूजा के अतिरिक्त कजली, दिवाली होली की महफिलें एकदम बन्द हो गयी ।”<sup>४३</sup>

<sup>४२</sup> 'शोकाश्रुबिन्दु' : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. १७५

<sup>४३</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ९३



### रावकृष्णदेवशरण सिंह जी :

रावकृष्णदेवशरण सिंह जी प्रेमघन जी का परिचय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा हुआ । वे भरतपुर के निवासित राजवंशज थे । शिक्षा के प्रयोजन से वे काशी में आये थे और अंत तक वहीं रहे । वे उच्चकोटि के लेखक, संगीताचार्य तथा कलाकोविद थे । प्रेमघन जी पर उनका विशेष स्नेह था । प्रेमघन जब काशी जाते , उनसे अवश्य मिलते थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के उपरान्त तो अकेले वे ही प्रेमघन अंतरंग मित्र रह गये थे । इन दोनों की घनिष्ठता का कारण विचार रुचि और प्रकृति साम्य था । प्रेमघन को लिखे पत्रों से उनकी मैत्री का सहज ही अनुमान लगता जा रहा है । उनके निधन पर प्रेमघन ने ‘नेहिनिधिपयान’ नामक एक शोक कविता लिखी थी जो ‘प्रेमघन सर्वस्व’ प्रथम भाग संगृहीत है ।

### निधन :

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ के परिवार का झगड़ा शान्त होने अपने भाईयों को जमींदारी कार्य की देखरेख देकर प्रेमघन मिर्जापुर में रहने लगे। आपको भाईयों से बंटवारा करना पड़ा और तुरन्त आपको गोड़ा जिले में शीतल गंजह ग्रान्ट नामक ग्राम में अन्तिम समय में रहना पड़ा। सम्वत् १९७८ में प्रेमघन एक बार चौधराने के काम की देख-रेख के सम्बन्ध में शीतलगंज से मिर्जापुर गये थे <sup>४४</sup> वहाँ उन्हें ३१ जनवरी को प्रातः ५ बजे अचानक लकवा मार गया और उनका दाहिना अंग शून्य हो गया । बहुत उपचार किया परन्तु सब निष्फल रहा । कुछ दिन पश्चात् यह पक्षाघात ही उनके निधन का कारण बना । सम्पादक ‘माधुरी’ के अनुसार लकवा तो उनकी मृत्यु का बहाना मात्र था, वास्तव में उन्हें पारिवारिक फूट रूपी सर्पिणी ने ही डस लिया था ।<sup>४५</sup> सन् १९२३ ई. की १४ फरवरी (फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी बुधवार वि.सं. १९७९) को रात्रि के लगभग नौ बजे वे

<sup>४४</sup> प्रेमघन सर्वस्व : प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण का निवेदन, पृ. १८

<sup>४५</sup> रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ९४

इस संसार को छोड़कर चले गये । दूसरे दिन सूर्योदय से पंचक लगने वाले थे इसलिए प्रायः चार बजे पूर्व ही गंगा पार उनका दाह संस्कार कर दिया । हिन्दी भाषा साहित्य के उस महारथी का निधन समाचार हिन्दी जगत में विद्युत वेग से फैल गया और वह हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में काले हाशियों में छापा गया । उनके निधन रूप में ब्रज भाषा-काव्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र सदा के लिए अस्त हो गया ।

#### (क) कविता :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का काव्य लेखन में भी महत्वपूर्ण योगदान है। उसका व्योरा आगे प्रस्तुत है—

प्रेमघन की कविताएँ प्रायः उनकी पत्र-पत्रिकाओं— 'आनन्दकादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' में निकली थीं । कुछ पृथक् रूप में पुस्तक के आकार में भी प्रकाशित हुई जिनका यथास्थान उल्लेख करना अभीष्ट है, किन्तु वे सब सर्वप्रथम वि.संवत् १९९६ में ही प्रेमघन सर्वस्व-प्रथम भाग में एक साथ संकलित हो सकीं । इसमें संदेह नहीं कि प्रेमघन की प्रायः सभी कविताओं को इसमें संकलित करने का प्रयत्न किया गया है फिर भी कतिपय रचनाएँ इसमें सम्मिलित नहीं हो सकी हैं । 'सर्वस्व' की द्वितीयावृत्ति में पं. दिनेशनारायण उपाध्याय का द्वितीय संस्करण का 'निवेदन' और संकलित कविताओं के साथ उनकी परिचयात्मक टिप्पणियाँ अधिक दी हुई हैं; प्रेमघन की जो कविताएँ दृष्टिगोचर हो सकी हैं।

#### युगलमंगल स्तोत्र :

'युगलमंगल स्तोत्र' को प्रेमघन की प्रथम कविता माना जाता है । भाषा-शैली आदि की दृष्टि से यह पर्याप्त परिष्कृत और बाद की रचना प्रतीत होती है इसकी सम्पादकीय पाद-टिप्पणी में लिखा हुआ है— यह प्रेमघन की सर्वप्रथम कविता है । कविताएँ इससे पहले गीतों तथा फुटकर सवैया इत्यादि में होती थीं पर वे न तो प्राप्त हैं और न उनका उल्लेख ही प्रेमघन ने किया है ।

प्रेमघन के द्वारा भी यही कविता प्रथम कही जाती थी । यह ब्रजभाषा में रची स्तोत्र —परम्परा की रचना है इसमें राधाकृष्ण—लीला के मनोहर चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । छन्दों में दोहा कुण्डलियां, मालिनी, छप्पै (छप्पय) हरिगीतिका, नाराचभुजंगप्रयात, सवैया और सोरठा जैसा मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों का व्यवहार हुआ है । यह पहले 'जुगमंगलस्तोत्र' नाम से सन् (१८७७ ई.) में पी.सी. चौधरी एण्ड कम्पनी दशाश्वमेध काशी से प्रकाशित हुई थी ।<sup>४६</sup>

### ब्रजचन्द्र पंचक :

पांच छंदों में पूर्ण होने के कारण इसे 'पंचक' कहा गया है । प्रेमघन ने इसमें श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति—भावना व्यक्त की गई है । यह ब्रजभाषा की रचना है और इसमें दोहा, कुंडलिया तथा छप्पै (छप्पय) छंदों का व्यवहार हुआ है । इसमें प्रेमघन के व्यक्तित्व का आभास मिलता है ।<sup>४७</sup>

### राजराजेश्वरी जयति :

प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग की प्रथमावृत्ति में इसे संकलित नहीं किया गया था । सम्पादक की सूचना के अनुसार यह माघ कृष्ण २ संवत् १९३३ वि. के 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित हुई । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे 'कविवचनसुधा' के 'राजराजेश्वरी की जय' नामक विशेषांक में प्रकाशित किया था । इसमें कवि ने महारानी विक्टोरिया की भारतीय राज्याभिषेक के अवसर पर सराहना की है तथा उनके प्रति शुभकामनाएँ प्रकट की हैं । भारत के विगत—कालीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए कवि ने वर्तमान की दुख दैन्यपूर्ण अवस्था का भी चित्रण किया है । कवि को विक्टोरिया के भारतीय राज्याभिषेक के साथ ही देश में अच्छे दिन के आरम्भ का विश्वास हो गया है । इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

‘सुनि अभिषेक राज राजेश्वरि चित्तमुद मंगल सानहु ।

<sup>४६</sup> रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. ९४

<sup>४७</sup> वही,

भारत सुदिन बीज या छन सों जामों यह मन आनहु ॥<sup>४८</sup>

यह रचना ब्रजभाषा की है तथा 'दोहा' छंद में रची हुई है । अन्त में दो पद भी हैं ।

### 'कलम की कारीगरी' :

यह सर्वप्रथम वि. संवत् १९३८ में पंडित गोपीनाथ पाठक के बनारस लाइट यंत्रालय से पुस्तक रूप में मुद्रित हुई थी । कदाचित् इसका प्रकाशन वि.सं. १९३८ की 'आनन्दकादम्बिनी' के किसी अंक में हुआ था । प्रेमघन सर्वस्व : प्रथम भाग की प्रथमावृत्ति में इसे स्थान नहीं मिला है । द्वितीयावृत्ति में यह उपर्युक्त नाम से छपी है तथा उसमें पृ. १२७ से १३५ तक यह अपने मूलरूप में विद्यमान है । शेष अन्य कविताएँ 'धिक्कार धारा' मिर्जापुर के गोपालमन्दिर के गोस्वामी श्रीजीवनलाल के जन्म पर सोरठा और १ कवित्त, पं. चन्द्रभूषण जी चतुर्वेदी की प्रशस्ति पं. काशीनाथ ज्योतिषी (मिर्जापुर) के सम्बन्ध में प्रेमघन का प्रशंसापत्र और बालकविता इत्यादि भी इसके साथ संकलित कर दिये गये हैं । इनके रचनाकाल का उल्लेख नहीं हुआ है । 'कलम की कारीगरी' में रीतिकालीन-परम्परा के शृंगार प्रधान चमत्कार पूर्ण छंद है । इसमें दोहा, सवैया और कवितादि छन्दों का व्यवहार हुआ है । आरम्भ में 'भंगलाचरण' नाम से एक उर्दू रचना भी है । यह कहना कठिन है कि 'कलम की कारीगरी' के सभी छंदों का रचना-काल एक ही है इसकी 'ब्रज' भाषा है अन्य कविताओं में 'धिक्कारधारा' खड़ी बोली में रची हुई है । 'कलम की कारीगरी' का प्रारम्भिक दोहा इस प्रकार है :

कलम करी कारीगरी, कारीगर के हेतु ।

कुटिलन के चोखी छुरी, कारीगर धर देत ॥<sup>४९</sup>

<sup>४८</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, प्रेमघन सर्वस्व : भाग-१, पृ. १२६

<sup>४९</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग-१, पृ. १२७

### कलिकाल—तर्पण : (वि.सं. १९४२)

यह कविता ब्रजभाषा में लिखित है इसमें चौपाई व छंद २८६ चरण है । इसका सम्बन्ध हिन्दू राष्ट्रीयता से है । कवि ने इसमें हिन्दुओं के गौरवपूर्ण अतीत और दुखद वर्तमान का चित्रण किया है । इसी ढंग की एक कविता 'तृप्यन्ताम्' नाम से पं. प्रतापनारायण मिश्र ने लिखी थी किन्तु प्रेमघन की 'कलिकाल तर्पण' का रचनाकाल इससे पूर्व का है ।

### पितर—प्रलाप : (वि.संवत् १९४२)

यह कविता ब्रजभाषा में सम्पूर्णतः दोहा छंद में रची हुई है । इसका प्रकाशन पहले 'आनन्दकादम्बिनी' में हुआ था । प्रेमघन ने इसमें हिन्दू पितरों के माध्यम से भारत के गौरवपूर्ण अतीत और वर्तमान की शोचनीय अवस्था का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है । यह शोचनीय अवस्था देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और शिक्षा जैसे सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हुई है । इसमें राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रखर है तथापि हिन्दू राष्ट्र ही प्रेमघन की दृष्टि में प्रमुख रहा है । हिन्दू पितरों ने भारत खण्ड में आकर जब यहाँ की दुर्दशा देखी तो उन्होंने संकोच से अपने सिर नीचे कर लिए जो इन पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

“आये ये जो पितर गन भारत खण्ड के बीच ।

देखि यहाँ की दुःखदशा, सकुचि किये सिर नीच ॥<sup>५०</sup>

और अंत में वे यहाँ की शोचनीय अवस्था से घबराकर यह कहते हुए भाग छूटने को उद्यत हुए ।

चलहु चलहु भागहु तुरत, नहिं यां ठहरन जोग ।

भयो प्रबल भारत अटल, अब कलजुग को भोग ॥

देहिं कहा निज वंश कों, हाय और हम शाप ।

<sup>५०</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग—१, पृ. १५६

जस कछु ये करिहैं अवसि, फलहु भोगिहैं आप ॥

X X X X

नहिं विद्या नहिं बाहु बल, नहिं खरचन को दाम ।

दीन हीन हिन्दू की, तू पति राखै राम ॥<sup>51</sup>

शोकाश्रु बिन्दु ' : (वि.संवत् १९४२)

यह बदरीनारायण 'प्रेमघन' की प्रसिद्ध शोक कविता (Elegy) है । इनकी रचना उनके अभिन्न मित्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के असामयिक निधन पर हुई थी। भारतेन्दु के गुणों का उल्लेख करते हुए कवि ने इसमें अपनी मार्मिक वेदना व्यक्त की है और यह कविता पहले 'आनन्दकादम्बिनी' में प्रकाशित हुई थी । भाषा उसकी ब्रज है । इसके आरम्भ में उर्दू का एक शेर और एक सवैया है तथा शेष १०३ दोहे ४ कवित्त १ सोरठा, ४ छप्पय और अंत में १ दोहा है ।

प्रेमघन को भारतेन्दु पर कितना स्नेह था और उनकी कितनी महान् आत्मा थी । इसी का चित्रण इसके अन्तर्गत है । प्रेमघन द्वारा लिखित पंक्तियां द्रष्टव्य है—

‘मित्र क्यों न रोवै, तेरो शत्रु क्यों न होवै तऊ ।

पूरो पशु होवैना, तो क्या मजाल रोवैना ॥

नेहनिधि पयान :

यह ब्रजभाषा में लिखी अन्य शोक कविता है आरम्भ में एक छंद घनाक्षरी का है तथा शेष सभी दोहे हैं ।

‘नेहनिधि’ कृष्णदेव सरन अनन्य भक्त,

कृष्ण देव भाज्यो कृष्णदेव के सरन मैं ।

<sup>51</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग-१, पृ. १६३

इससे यह विदित होता है कि इसकी रचना श्री कृष्णदेवशरण सिंह के निधन पर ही हुई थी, पर इसका निर्दिष्ट—काल जटिलता का विषय है । इसका मुख्य कारण है कि पं. दिनेशनाथ उपाध्याय के अनुसार प्रेमधन ने इसे १३ अप्रैल, १९०६ ई. में श्री कृष्णदेवशरण सिंह की मृत्यु पर लिखा था जबकि बा. ब्रजरत्नदास के अनुसार उनका निधन—काल सन् १८९६—९७ ठहरता है ।<sup>५२</sup> इससे यदि उनका निधन काल यह माना जाय और कविता का रचनाकाल पूर्वोक्त, तो निधन के लगभग दस वर्ष बाद इसका लिखा जाना अधिक संगत प्रतीत नहीं होता , अतएव जब तक इस सम्बन्ध में कोई अन्य विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता । फिर उक्त पद में 'नेहनिधि' उद्धरण—चिन्ह के भीतर दिया हुआ है जिससे वह कृष्णदेवशरण सिंह का उपनाम प्रतीत होता है किन्तु अन्यत्र वह 'गोप' मिलता है । यदि दोनों कृष्णदेव एक ही तो है। तो लगता है कि कदाचित वे उक्त दोनों ही उपनामों से अभिहित होते रहे हैं ।

### होली की नकल या मुहर्रम की शकल :

यह भारतेन्दु कृत ' उर्दू का स्यापा ' के ढंग की रचना है । पहले इसका प्रकाशन वि. संवत् १९४२ की 'आनन्दकादम्बिनी' में हुआ था । तदनन्तर यह किंचित परिवर्तन के साथ 'भारत—सौभाग्य रूपक' में भी दर्शित हुई । यह अंग्रेजों की नीति (विशेषतः आयकर सम्बन्धी) को लेकर लिखी हुई है इसमें अंग्रेजों की शोषक अर्थनीति और विस्तारवादी राज्यनीति का रोचक शैली में उल्लेख किया है ।

<sup>५२</sup> भारतेन्दु मण्डल : संवत् २००६, बा. ब्रजरत्नदास, पृ. ४१

### मन की मौज : (वि.सं. १९४४)

सार छंद में लिखी गयी यह खड़ी बोली की आत्माभिव्यंजक कविता है । इसका प्रकाशन वि.संवत् १९४४ की 'आनन्दकादम्बिनी' माला ३ मेघ १-२ और ३-४ के अंको में हुआ था इसके प्रत्येक आठवें चरण में यह टेक मिलती है —

“कहो प्रेमघन प्रेम कहानी कैसे किसे सुनाऊँ ॥”

यह एक अतिशयोक्तिपूर्ण कविता है—प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए विह्वलता की किन-किन दशाओं में गुजरता है अपने प्रिय प्रदर्शन में उसे कितनी कठिनाई उठानी पड़ती है , और कितनी यातना के बाद उसे अपने प्रेमी के दर्शन और सान्निध्य की प्राप्ति होती है ।

कवि अपने शब्दों में वर्णन करता है—

“ दिल के गुलशन की बहार में मस्त रहूँ सुख पाऊँ ।

नहीं है ख्वाहिश और किसी से जिससे सीस नवाऊँ ॥

### प्रेमपीयूष वर्षा : ( वि.संवत् १९४७)

यह प्रेमघन के समय-समय पर लिखे विविध विषयों के छंदों का संकलन है । इसका निर्देश वस्तुतः संकलन —काल है भाषा, छंद और शैली की दृष्टि से इसके छन्द रीतिकालीन परम्परा के हैं। विषय की दृष्टि से ये भक्ति, राधाकृष्ण—प्रेम रूप वर्णन और ऋतुवर्णन आदि से सम्बन्धित है । इस संकलन में प्रेमघन की कुछ समस्यापूर्तियां भी हैं । खड़ी बोली के कतिपय छन्दों को छोड़ शेष सभी ब्रजभाषा के हैं । छन्दों में दोहा, सवैया और कवित्त विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं । इसके छन्द विविध शीर्षकों में रक्खे हुए हैं । जैसे—मंगलाचरण , प्रार्थना स्फुट, पावस, शरद, सौन्दर्य, नखसिख, मुख, अधर, नेत्र, विरह, कुच, केश, मान और बसन्त आदि, ये शीर्षक, छन्दों के वर्ण्य विषयों को दृष्टि में रखकर दिये गये हैं । इस संकलन में कवि की प्रकृति अलंकार—चमत्कार की ओर विशेष रही है ।



इस संकलन में अनेक छंद 'कलम की कारीगरी' के भी हैं या तो उन्हें ज्यों का त्यों ले लिया गया है या किंचित् परिवर्तन के साथ ।<sup>33</sup>

### सूर्य स्तोत्र : (वि.संवत् १९४९)

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन की सूर्योपासना में विश्वास था । वे सूर्यदेव एक प्रत्यक्ष देवता के रूप में हिन्दू समाज में पूजित हैं । उन्होंने दो खण्डों में सूर्य स्तोत्र प्रस्तुत किये हैं जिनकी भाषा ब्रज है । प्रथम खण्ड में पचीस दोहे और एक सोरठा है तथा दूसरा खण्ड सम्पूर्णतः रोला छंद में है इनमें कवि की भक्ति-भावना और दैन्य प्रकट हुआ है ।

### मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद :

भारतेन्दु युग में आत्मसम्मान की भावना उस समय के कवियों में चेतना आ गई थी । ब्रिटिश शासन से वे परेशान हो गये थे । श्री दादा भाई नौरोजी को जब ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में एक भारतीय को मेम्बर चुना गया , तब कवि के प्रसन्नता का ठिकाना न रहा पर जब उन्हें भी काला कहकर सम्बोधित किया गया तब कवि इस अपमान को न सहन कर सका । इस प्रकार इस कविता में हमें हर्ष और शोक का समन्वय मिलता है और कवि बोल उठता है :

‘‘कारन के ही कारन गोरन लहत बड़ाई ।’’<sup>34</sup>

यह कविता ' नागरी नीरद ' के वर्ष सं.१९४९ के बिन्दु प्रकाशित हुई । 'आनन्द कादम्बिनी' मन्त्रालय मिरजापुर से पुस्तिका में भी निकली थी यह ब्रजभाषा में लिखित है तथा अंत में एक 'कवित्त' और एक 'दोहा' को छोड़ शेष सारी रोला छंद में लिखी हुई है ।

<sup>33</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. १०१

<sup>34</sup> श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग-१, पृ. २४७

### ‘हास्य बिन्दु’ : (वि.संवत् १९५५)

प्रेमघन का जीवन ही हास्य से ओतप्रोत था । स्वजन सम्बन्धी मित्र सबके ऊपर उनकी हास्य की कविताएँ हैं । इन कविताओं में उनकी जिन्दादिली और वैचित्र्य दिखाई पड़ती है । इसके अंतर्गत समय—समय पर लिखी हुई हास—परिहासात्मक अनेक कविताएँ हैं प्रेमघन सर्वस्व—प्रथम भाग में इस बिन्दु के अन्तर्गत कुछ अधिक छंद हैं जिनमें दो एक ऐसे भी हैं जो परिहासात्मक नहीं कहे जा सकते हैं । जैसे—चिरंजीवी वासदेव के प्रथम पुत्र जन्मोत्सव के दिन लिखित सोहर ’ और ‘पुरोहित पत्र’ इन हास परिहासात्मक रचनाओं के आलम्बन या प्रसंग प्रायः व्यक्तिगत या विशिष्ट रहे हैं । इसमें खड़ी बोली, उर्दू, ब्रज, भोजपुरी, और संस्कृत की भी रचनाएँ हैं जो प्रायः विविध राग—रागनियों में रची हुई हैं ।

### हार्दिक हर्षादर्श : (वि.संवत् १९५५)

यह कविता महारानी विक्टोरिया की ‘हीरक—जुबली’ के अवसर पर रची हुई है । उक्त जुबली सन् १८९७ में मनाई गयी थी प्रेमघन सर्वस्व’ प्रथम भाग की प्रथमावृत्ति में इसका समय वि संवत् १९५७ दिया हुआ है और (डॉ.) किशोरीलाल गुप्त ने भी यही मान लिया है,<sup>५५</sup> परन्तु जुबली के समय को देखते हुए वह अशुद्ध ठहरता है सर्वस्व की द्वितीयावृत्ति में प्रथम की अपेक्षा कुछ अंश अधिक है जिसकी रचना प्रेमघन जी ने, विक्टोरिया के राज्यकाल में पचास वर्ष होने पर की थी । इसका प्रकाशन विक्रमी सं. १९४४ की ‘आनन्दकादम्बिनी’ में हुआ था ।

इसकी ब्रजभाषा है मुख्य अंश ‘रोला’ में है तथा कुछ अंश कवित्त, दोहा, हरिगीतिका और सवैया छंदों में भी है ।

यह कविता राजभक्ति विषयक होते हुए भी देश की तत्कालीन दुरवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है तथा अंग्रेजी शासन — नीति पर विस्तार से

<sup>५५</sup> डॉ. किशोरी लाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ. ६९, हिन्दी प्रचारक. पुस्तकालय, बनारस

प्रकाश डालती है । देश में हुए विविध सुधारों के सम्बन्ध में कवि विक्टोरिया—शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, किन्तु साथ ही देश की दुर्दशा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है— । देश के कल्याण की कामना करते हुए प्रेमघन लिखते हैं—

करहु आज सों राज आप केवल भारत हित ।

केवल भारत के हित—साधन में दीनै चित ॥

उमड़ै भारत में सुख, सम्पत्ति, धन , विद्या, बल ।

धर्म, सुनीति, सुमति, उछरह व्यापार ज्ञान भल ।

तेरे सुखद राज की कीरत रहै अटल इत ।

धर्म, राज, रघु राम प्रजा हिय मैं जिमि अंकित ॥

आनन्द बघाई : वि.संवत् १९५८)

‘ आनन्द कादम्बिनी ’ माला ४ संवत् १९५९ मेष १ से लेकर आगे के अनेक अंको में इसका प्रकाशन हुआ था । ‘प्रेमघन सर्वस्व’ प्रथम भाग की दोनों आवृत्तियों में इसका समय संभवतः यह कविता इसी वर्ष की लिखी गयी हो और तदनन्तर कादम्बिनी में प्रकाशित हुई हो । इसकी रचना १८ अप्रैल, सन् १९०० ई. में नागरी —वर्णमाला के कचहरी—प्रवेश पर हुई थी । यह कविता भारतेन्दु युग की रचना— ‘‘हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान’’ का स्मरण दिलाती है ।<sup>५६</sup> नागरी वर्णमाला के कचहरी—प्रवेश से हिन्दी जगत् को विशेष प्रसन्नता हुई । ऐसे शुभ कार्य के उपलक्ष्य में कवि ने कृतज्ञतावश अंग्रेजी शासन और विशेषतः रिपन तथा मेकडोल जैसे न्यायप्रिय शासकों की प्रशंसा की है । साथ ही प्रेमघन ने इस कार्य की सिद्धि में नागरी प्रचारिणी सभा पं. मदनमोहन मालवीय बा. राधाकृष्ण दास और श्यामसुन्दरदास इत्यादि के प्रयत्नों की सराहना करते हुए

<sup>५६</sup> भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा भाग २०१० बा.२ ब्रजरत्नदास, बी.ए.एल.एल.बी.,पृ. ७३१—७३८, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

उन्हें बधाई दी । इसमें फ़ारसी लिपि उर्दू भाषा और तथाकथित हिन्दुस्तानी की अपेक्षा नागरी वर्णों और भाषा की उपादेयता के लिए, देश की एक सम्पर्क भाषा की अनिवार्यता पर बल दिया है और इस प्रयोजन से उन्होंने एक मात्र नागरी को ही सर्वाधिक उपयुक्त माना है ।

एक चाल व्योहार संग सब एक होत जब ।

इक अच्छर इक भाषा बिन किमि काम चलै तब ॥

सो न सकति करि अंग्रेजी बहु दिवस अनंतर ।

और कौन करि सकत नागरी तजि विधि सुन्दर ?<sup>५७</sup>

लालित्य लहरी : (वि.सं. १९५७)

इसके अन्तर्गत वन्दना , धर्म, नीति, ज्ञान, नेत्र केश, कुच, गति और प्रेमादि से सम्बन्धित विविध विषयों के समय—समय पर दोहे हैं । सर्वस्व की निदृष्टकाल दोहों का संग्रह प्रतीत होता है ।

भारत बधाई :

यह कविता सम्राट सप्तम एडवर्ड के भारतीय साम्राज्याभिषेक सम्बन्धी दिल्ली—राजसूय के शुभावसर पर भारतीय प्रजा की बधाई या उसके आनन्दोद्गार को प्रकट करने के लिये लिखी गयी थी । काव्यरूप की दृष्टि से प्रेमघन ने इसे निबन्ध कहा है । सन् १९०३ में यह आनन्द कादम्बिनी प्रेस से पुस्तकाकार मुद्रित हुई थी । इसका उल्लेख प्रेमघन ने अपने निबन्ध 'दिल्ली— दरबार में मित्र—मण्डली के यार ' में भी किया है । इसमें ब्रज भाषा है और यह दोहा, हरिगीत, रोला, सवैया सोरठा, द्रुतविलम्बित, बरवै, तोटक, भुजंगप्रयात और नाराच आदि छंदों में लिखी हुई है । इसमें राजभक्ति के साथ प्रेमघन ने भारत की दयनीय दृश्य का चित्रण भी विस्तार से किया है ।

<sup>57</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. ३२०

### स्वागत पत्र :

सर्वस्व प्रथम भाग की दोनों आवृत्तियों में इसका समय वि.संवत् १९६२ दिया हुआ है, किन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि इसके अंतर्गत अनेक स्वागत पत्र संग्रहीत हैं जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखे गये थे । 'सर्वस्व' की प्रथमावृत्ति में इसके अंतर्गत केवल ३ स्वागत पत्र हैं जबकि द्वितीया वृत्ति में चार ये हैं— भारत की आठवीं जातीय सभा प्रयाग में आये हुए प्रतिनिधियों के स्वागतार्थ, सरयूपारीण सभा में आये अतिथियों के लिए ई. सन् १९०५ में काशी की इक्कीसवीं कांग्रेस में आये अतिथियों के लिए तथा मिरजापुर का प्रजा की ओर से लाजपतराय के स्वागतार्थ रचित । ब्रज भाषा में है तथा छन्दों में बरवै दिक्पाल, दोहा और हरिगीतिका आदि का व्यवहार हुआ है । अब राष्ट्रीय संस्थाओं तथा जातीय सम्मेलनों में प्रादुर्भाव हो चुका था—

“ बहुत दिनन सो आरत भारत देस ।

सहत प्रजा नित जिनकी कठिन कलेस । ”<sup>५८</sup>

### आनन्द अरुणोदय : (वि.सं. १९०६ )

भारतेन्दु युग खड़ी बोली की यह परम सर्वश्रेष्ठ रचना है कवि अब अंग्रेजी राज्याधिकारियों के झूठे आश्वासनों को समझ गया और उनके धोखेवाजियों के प्रति शंखनाद प्रतिध्वनित किया । इस कविता में स्वदेश प्रेम की अखिल धारा प्रवाहित हुई है वन्देमातरम् की ध्वनि पर आर्य सन्तानों को जाग्रत होने के लिए प्रेमघन ने कहा है—

“ ब्रिटिश राज्य स्वातन्त्र्य समय व्यर्थ न बैठ बिताओ ।”

प्रेमघन ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—

<sup>५८</sup> प्रेमघन सर्वस्व—भाग—१, स्वागतपत्र, पृ. ३५०

“ आर्य जाति का हो अभ्युदय भूमि भारत पर । ”<sup>५९</sup>

संभ्रान्त स्वागत : ( वि. संवत् १९६३ )

अफगान—नरेश के भारतागमन पर इस कविता को रचा गया है । इसका प्रभाव संवत् १९३३ वि. की “ आनन्दकादम्बिनी ’ माला ६ मेघ ११—१२ में पृ. २११ पर हुआ था । सर्वस्व की दोनों आवृत्तियों में इसे स्थान नहीं मिला । इसमें कवि ने नीति परायण अफगान—नरेश की प्रशंसा की है और यह आशा व्यक्त की है कि यवनों द्वारा गोवध बन्द करने पर देश के दुःख दूर हो सकते हैं । इस कविता से कवि की हिन्दू—मुस्लिम एकता की भावना का परिचय मिलता है । इसकी रचना ब्रजभाषा में और छप्पय छन्द में हुई ।

आर्याभिनन्दन : (वि.संवत् १९०६)

सन् १९०६ में यह कविता ‘आनन्दकादम्बिनी’ यत्रालय, मिरजापुर से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थी । इसकी रचना जार्ज फ्रेडरिक अर्नेस्ट आलबर्ट प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर उनके स्वागतार्थ हुई थी जिसमें देश की दैन्यावस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । कवि को इस बात का हार्दिक खेद है कि भारत नाममात्र का भारत रह गया है अन्यथा उसमें भारतीयता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती, खान—पान, रहन—सहन और भाषा —व्यवहारादि सभी दृष्टियों से वह वैदेशिक रंग में रंगा हुआ है इसमें प्रेमघन ने देशोद्धार की कामना करते हैं । राजभक्ति के साथ वह केवल यही याचना करता है—

“चाहत न हम कछु और दया चाहत इतनी बस ।

छूटै दुःख हमरे बाढै जासों तुमरो जस ।

भारत को धन, अन्न और उद्यम व्यापारहिं ।

रच्छहु बृद्धि करहि सॉचे उन्नति आधारहिं ॥

<sup>५९</sup> प्रेमघन सर्वस्व—भाग—१, ‘आनन्द अरुणोदय, पृ. ३६१

बरन भेद, मत भेद, न्याय को भेद मिटावहु ।

पच्छपात, अन्याय बचे जे तिनहिं निवारहु ॥ ११६०

भाषा इसकी ब्रज है और यह प्रधानतः दोहा छंद में लिखी गयी है । अंत में क्रमशः रोला, बरवै, सवैया और हरिगीतिका छंदों का व्यवहार हुआ ।

साम्राज्याभिनन्दन (वि.सं. १९६८)

यह कविता विक्रमी संवत् १९६८ के 'मर्यादा' भाग ३ में छपी थी । 'सर्वस्व' के प्रथम भाग की दोनों आवृत्तियों में इसे स्थान नहीं मिला । सम्राट् पंचम जार्ज और उनकी रानी मेरी के भारतागमन पर इसकी रचना हुई थी । कवि ने इसमें सम्राट और सम्राज्ञी के अभिनन्दन के लिये दिल्ली में आयोजित कार्यक्रमों के ठाटबाट का वर्णन किया है । राजभक्ति के साथ इसमें कवि की देशभक्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है इसमें भाषा ब्रज है और यह दोहा, रोला, बरवै, भुजंग—प्रयात तथा नाराचादि छंदों में रची गयी है । इसमें कुछ छंद भारत बधाई के और कुछ आर्याभिनन्दन के सम्मिलित हैं ।

जीर्ण जनपद अथवा दुर्दशा दत्तापुर : (वि.संवत् १९६६)

कतिपय लेखक इसे भारतेन्दुयुगीन रचना मान बैठे हैं; किन्तु यह उचित नहीं । इसके निर्दिष्टकाल को देखकर यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना भारतेन्दु युग में न होकर द्विवेदी युग में हुई थी । "हिन्दी में यह अपने ढंग की एक ही रचना है । कवि ने इसमें अपने जन्मग्राम दत्तापुर की दुर्दशा का आँखों देखा वर्णन किया है । यह वर्णन विविध शीर्षकों के अन्तर्गत हुआ है । जिन प्रसंगों को कवि ने लिया है उनके साथ उसकी मधुर स्मृतियाँ लिपटी हैं । इसमें भाषा ब्रज है और यह आद्योपान्त रोला छंद में लिखी हुई है । कचहरी के मुंशी

<sup>60</sup> प्रेमचन सर्वस्व—भाग—१, 'आर्याभिनन्दन', पृ. ३७६—३७७

पूजा गृह के पुजारी और मकतबखाना के पंडित एवं मौलवी के सजीव चित्र प्रेमघन की चित्रण क्षमता के परिचायक हैं ।

सौभाग्य समागम : वि.संवत् १९६९)

सम्राट जार्ज पाँच के भारत आगमन पर यह कविता लिखी गयी थी । कवि परम्परा नियमानुसार जार्ज पाच से भी भारत की दशा में सुधार की प्रार्थना करता है तथा उनको देश का सच्चा हितैषी शासक सिद्ध करने की प्रार्थना करता है ।

“ निज नयनन निज प्रजा की साँची दशा निहार ” ने को कवि प्रार्थना करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है

“ सब द्वीप की विद्या, कला, विज्ञान इति चलि आवई ।”

‘श्री अलौकिक लीला’ (वि. संवत् १९७२)

यह कृष्णलीला से सम्बन्धित एक अपूर्व प्रबन्ध काव्य है । इसमें कुल पाँच सर्ग हैं— प्रथम चार पूर्ण और पाँचवी अपूर्ण है । यह ब्रज भाषा लिखित है । प्रथम सर्ग में रोलाछंद में द्वितीय बरवै छंद में तृतीय सोरठा छंद में चतुर्थ पद्धति छंद में और पंचम हरिगीतिका छंद में लिखा हुआ है ।

मयंक महिका : (वि.संवत् १९७९)

यह प्रेमघन की अंतिम कविता बतलाई जाती है । इसके बाद उनकी लेखनी प्रायः विश्राम ले चुकी थी । सन् १९२३ की ‘माधुरी’ में इसका आंशिक प्रकाशन हुआ था यही खड़ी बोली की एक लम्बी रचना है जिसमें मयंक की अलौकिक महिमा का मनोरम वर्णन किया गया है । उसमें प्रेमघन का कल्पना वैभव और वर्णन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति द्रष्टव्य है । यह कहा जाता है कि इसे उन्होंने अपने पौत्र दिनेश नारायण उपाध्याय के लिए लिखा था ।

संगीत काव्य :

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन संगीत के बहुत ही शौकीन थे । संगीत की भाषा का उदय प्रेमघन जी के जीवन काल में बहुत प्रारम्भ से हो गया था । प्रेमघन स्वयं



संगीतज्ञ थे । अपने मधुर भावों को संगीत के अंतर्गत रखकर प्रेमघन ने संगीत की काव्य परम्परा का ही परिचय नहीं दिया बल्कि सुन्दर सरस पदावलियों द्वारा सूर के मधुर भावों की शैली को सिंचित किया । यदि एक ओर बसंत मकरन्द बिन्दु में कवि के बहम के दिनों की मतवाली तानें हमें मिलती हैं। तो दूसरी ओर वर्षा बिन्दु में मेघाच्छन्न अम्बर, तडित के गर्जन तथा मयूरों के नर्तन के चित्र हमें चित्रित दिखाई पड़ते हैं , उर्दू बिन्दु में उर्दू की गजलें, रेखता, लावनियां संग्रहीत हैं । अपने उर्दू कविता में भारतीयता की छाप दिया है, हाला और प्याला, आशिक माशूक तो उर्दू साहित्य में मिलते ही हैं पर भारतीय रूपकों का समावेश प्रेमघन की अपनी देन है ।

स्फुट बिन्दु में आपके गीतों का संकलन मात्र ही है । जो उपरोक्त श्रेणियों में नहीं संग्रहीत नहीं किये हैं । स्फुटविचारों के स्फुट गीत इसमें हैं ।

राष्ट्रीय चेतना के गीत स्वदेशबिन्दु में संग्रहीत हैं । इसमें कवि की वाणी द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना के विचारों का चित्र हमें दिखाई पड़ता है ।

संगीतकाव्य—खण्ड की रचनाएँ समय—समय पर लिखी हुई हैं । प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग में इनका अनेक बिन्दुओं में वर्गीकरण किया गया है । ये बिन्दु हैं — शृंगार बिन्दु, उर्दू बिन्दु, वर्षा बिन्दु , स्फुट बिन्दु और स्वदेश बिन्दु आदि । क्रमानुसार इनका परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है :

### शृंगार बिन्दु :

नाम के अनुसार इसमें केवल शृंगार विषयक रचनायें ही नहीं बल्कि वैराग्य भावना, रिपन प्रशस्ति, देशोद्बोधन के गीत वात्सल्य के पद भ्रमरगीत सम्बन्धी पद , दीपावली के पद और ब्याह शादी के अवसर पर गाये जानेवाले लोक परम्परा के गीत (बनारा, गालियों और समधिन के प्रति जैसे—गीत ) भी सम्मिलित है इन गीतों में से अनेक समय—समय पर 'आनन्दकादम्बिनी' में भी

प्रकाशित हुए थे । कादम्बिनी के अन्य अंकों में संगीत सुधांजलि शीर्षक में प्रकाशित होते रहे हैं ।

उक्त बिन्दु के गीत प्रायः ब्रजभाषा में है और कुछ एक खड़ी बोली में भी है । ये भैरवी , पीलू, गोरी, इमन खम्माच, कान्हरा, सोरठ, सोहनी बिहाग परच कलंगरा तुमरी आदि विविध राग रागनियों में रचे हुये हैं ।

**उर्दू बिन्दु :**

हिन्दी के साथ प्रेमघन ने उर्दू में भी अनेक गजले, रेखते व लावनियों लिखी थीं । ऐसी रचनाएँ प्रायः उक्त दिनों में संगृहीत हैं जिनका विषय प्रमुखतः प्रेम व सौन्दर्य रहा है ।

**वर्षा बिन्दु :**

यह पहले भी कहा जा चुका है कि वर्षा ऋतु प्रेमघन को अत्यधिक प्रिय लगती थी । उन्होंने इस ऋतु में गाने योग्य अनेक गीत लिखे थे जिनका 'आनन्दकादम्बिनी' मंत्रालय मिरजापुर से 'वर्षाबिन्दु' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हुआ था । उसके दो संस्करण निकले थे, प्रथम सन् १८८६ ई. में तथा द्वितीय सन् १८८८ ई. में । तदनन्तर उसमें केवल 'कजली' संग्रहीत होकर 'वर्षाबिन्दु सीकर अथवा कजली कादम्बिनी' नाम से स्वतंत्र पुस्तकाकार छपी थी, जिसका प्रथम संस्करण सन् १८८९ ई. में द्वितीय सन १९१३ ई. वि. संवत् १९७० में निकला था । इस प्रकार 'प्रेमघन—सर्वस्व' में संग्रहीत उक्त बिन्दु का काल —निर्देश (वि. संवत् १९७०) वस्तुतः वर्षाबिन्दु सीकर अथवा कजली कादम्बिनी का समय ठहरता है न कि 'वर्षाबिन्दु' का । " वर्षाबिन्दु' के तो दोनों संस्करण इसके बहुत पूर्व ही निकल चुके थे और इसके बाद कदाचित् कोई संस्करण नहीं निकला ।

'सर्वस्व' के प्रस्तुत बिन्दु में कलजियाँ व वर्षा ऋतु की अन्य चीजें भी सम्मिलित हैं । संख्या १५० तक के गीत वर्षाबिन्दु सीकर अथवा कजली

कादम्बिनी' से ज्यों के त्यों उद्धृत है किन्तु उसके अन्य दो गीत—क्षत्रियार्थ और स्त्रियों की कीर्ति; सर्वस्व' उक्त बिन्दु में छपने से रह गये । ' ऋतु की चीजें, शीर्षक गीत संभवतः 'वर्षाबिन्दु' नामक पुस्तक के ही हैं । वर्षा बिन्दु सीकर अथवा कजली कादम्बिनी' के अनेक गीत पहले ' नागरी नीरद' एवं आनन्द कादम्बिनी में भी प्रकाशित हुए थे । स्वयं प्रेमघन ने इसका उल्लेख किया है ।

'सर्वस्व' में वर्षाबिन्दु के अन्तर्गत अनेक प्रकार की लयों एवं चालों की कजलियाँ हैं , जैसे सामान्य लय, गृहस्थिनियों की लय, दुनमुनियाँ की कजली, नटियों की लय रंडियों की लय, बनारसी लय, गुण्डानी लय, साखीबद्ध खंजरीवालों की लय, गवारनियों की लय, विन्ध्याचली लय और गवैयाँ की लय आदि । विषय की दृष्टि से उनमें भक्ति, शृंगार, मिर्जापुर गुण्डों के यथार्थ चित्रण , विनोद, आधुनिक पाश्चात्य वेशभूषा, बाल्य—विवाह, अनमेल विवाह, स्वदेशदशा, ब्राह्मणादि को चेतावनी, जन्माष्टमी की बधाई और गोवर्धन धारण लीला इत्यादि का समावेश हुआ है । भाषा की दृष्टि से इस बिन्दु के गीत ब्रजभाषा, उर्दू, नागरी स्थानिक ग्राम्य भाषा (भोजपुरी) मिश्रित भाषा गुण्डानी भाषा तथा स्थानिक ठेठ स्त्रीभाषा आदि में हैं ।

### स्फुट बिन्दु :

इस कविता में अनेक विषयों और रागरागिनियों के गीत सम्मिलित हैं । विषय की दृष्टि से वे भक्ति शृंगार और ऋतु सम्बन्धी हैं । जिन रागरागिनियों व लयों में वे रचित हैं उनमें हैं— तुमरी, गौरी, इमन, भैरव, वसन्त, भैरवी, बहार की तुमरी, खिमटा नये चाल का दक्षिणी गुलेल खण्डी खिमटा पूर्वी खेमटा, झले की कजली, देस मलार बहार, राग देस ताल खिमटा, राग वेसकाफी की लय, सोनी और होली आदि ।

उक्त बिन्दु के संपादन के सम्बन्ध में यहाँ तीन बातें उल्लेखनीय हैं । एक तो ' सर्वस्व' की प्रथमावृत्ति की अपेक्षा द्वितीयावृत्ति में कुछ गीत अधिक हैं । दूसरे

इन गीतों में से अनेक 'कादम्बिनी' के विविध अंकों, 'बसंत' अथवा बसंत मकरन्द बिन्दु " शीर्षकों से प्रकाशित हुए थे । इन गीतों को 'सर्वस्व' के 'स्फुट बिन्दु' में ही सम्मिलित किया जाता है । तीसरे, 'संगीत काव्य' के विविध बिन्दुओं की रचनाओं में कुछ पुनरावृत्तियाँ भी देखने में आई हैं जैसे सर्वस्व, पृ. ५८६ पर झूले की कजली' नामक गीत का कुछ अंश पृ. ५०५ पर भी झूले की कजली शीर्षक से दिया हुआ है । 'सर्वस्व के पृ. ६२५ पर, 'होली' नामक 'गीत' 'नागरी नीरद' वर्ष १, बिन्दु २५ पृ. ३ पर काव्यामृत वर्षा नामक स्तम्भ में बसंत बिन्दु मकरन्द' नाम से प्रकाशित हुआ तथा सर्वस्व के पृ. ६४० पर प्रकाशित 'कबीर' का नीरद — वर्ष १, बिन्दु २५ पृ. ३ पर 'काव्यामृत वर्षा' में कबीर नाम से प्रख्यात हुआ था ।

उक्त प्रकरण के गीत—कलंगरा व ललित, तुमरी, खेमटा, मुल्तानी, सोहनी, सिंदूरा, कान्हरा, भैरवी, घनाश्री, घाटी व चैती और कबीर जैसी विविध रागरागिनियों या ताल लयों में रचित है, ये गीत भी प्रायः शृंगार प्रधान है । 'कबीर' का विषय राजनीतिक है, जिसमें कांग्रेस की विजय का उल्लेख हुआ है । इस प्रकार कादम्बिनी से मिलान करनेपर ऐसा लगा कि सर्वस्व की द्वितीयावृत्ति में उक्त बिन्दु के अन्तर्गत गीत सम्मिलित किये गये हैं। उनमें से अनेक सुव्यवस्था की अपेक्षा रखते हैं।

भाषा की दृष्टि से 'स्फुट बिन्दु' के गीत ब्रज खड़ी बोली मिश्रित ब्रज, पंजाबी तथा उर्दू आदि में मिलते हैं। उनमें जहाँ—तहाँ भोजपुरी का पुट भी दिखलाई देता है।

#### बसन्तबिन्दु तथा बसंत प्रकरण :

'प्रेमघन सर्वस्व' प्रथम भाग के 'बसन्तबिन्दु के अन्तर्गत 'बसंत प्रकरण' नाम अंश ही दिया हुआ है। 'बसंतबिन्दु' के अनेक गीत, समय—समय पर 'आनन्दकादम्बिनी' और 'नागरीनीरद' में भी निकले थे। सर्वस्व प्रथम भाग की

द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ ६०१ से ६०८ का ए हो छबीले छैले—गीत 'नीरद' वर्षा १ बिन्दु २५ में पृ.३ पर बसंत मकरंद बिन्दु' अन्तर्गत छपा है। कादम्बिनी और सर्वस्व के समान गीतों में प्रायः 'प्रेमघन' की छाप मिलती है जबकि सर्वस्व के गीत किसी प्राचीन प्रति से उद्धृत प्रतीत होते हैं। सर्वस्व के गीतों की अपेक्षा कादम्बिनी के गीत अधिक परिमार्जित हैं।

उक्त बिन्दुओं के गीतों का सम्बन्ध बसन्त—होली या फाग से है। उनमें प्रायः शृंगार की प्रधानता है। जिन रागरागिनियों में उनकी रचना हुई है, उनमें ललित या परच, राग घनाश्री लाल धम्मर, राग कान्हरा काफी, फाग, सिन्दूरा, राग, मुल्तानी, राग कलिंगरां वा ललित, भैरव, ठुमरी तथा भैरवी इत्यादि हैं।

'बसंत प्रकरण' में भी बसंत ऋतु के गीत हैं। यह प्रकरण वस्तुतः 'बसंतबिन्दु' का ही एक अंश है। इसके अनेक गीत 'नागरी नीरद' व आनन्द कादम्बिनी' में देखने को मिलते हैं।

### स्वदेश बिन्दु :

इस बिन्दु के गीत प्रायः देशभक्ति व राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण हैं। इन गीतों में से 'वंदेमातरम्' में कजली कादम्बिनी' की क्षत्रियार्थ' नामक उस कविता का भी अंश सम्मिलित है जो सर्वस्व— के 'वर्षाबिन्दु' में छपने से रह गयी थी। इसी तरह 'स्त्रियों की कीर्ति' भी वह गीत है जो कजलीकादम्बिनी से, सर्वस्व की द्वितीयावृत्ति के 'वर्षा बिन्दु' में सम्मिलित नहीं हो सका था। इन गीतों में से प्रथम में, प्रेमघन ने देश के गौरवमय अतीत का वर्णन करते हुए उसकी वर्तमान दुरवस्था का उल्लेख किया है तथा दूसरे गीत में उन्होंने अतीत भारत की गौरवमयी नारियों का महत्वाख्यान तथा वंदना की है।

'चरखे की चमत्कारी' नामक दो गीतों का सम्बन्ध गाँधी जी—प्रवर्तित चरखा और स्वदेशी आंदोलन से रहा है चरखा मानो भारतीय उद्योग का प्रतीक है

प्रेमघन को उससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ स्वराज्य—प्राप्ति की आशा बँधने लगी है —

‘ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों स्वराज्य नियरात ।

परतंत्रता दीनता भागी जाती खाती लात ॥

चलना तेरा बन्द हुआ जब से भारत में तात ।

दुखी प्रजा तब से न यहाँ की अन्न पेट भर खात ॥<sup>६९</sup>

“ होली राग काफ़ी’ में होली के रूपक से प्रेमघन ने देश में विदेशी शासकों के अन्याय, उनकी शोषण नीति, गाँधी जी के स्वराज्य—आन्दोलन और विदेशी वस्तु के बहिष्कार का चित्रण किया गया है । वे लिखते हैं—

“ मची है भारत में कैसी होली सब अनीति गति होली

पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब घोली ॥

लगे दुसह अन्याय मचावन निरख प्रजा अति भोली ।

देश असेस अन्न धन उद्यम सारी सम्पत्ति ढोली ।

#### नाटक :

बदरीनारायण चौधरी ‘ प्रेमघन’ ने कविता की भाँति नाट्य साहित्य में भी उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण देन रही है । प्रेमघन ने अनेक नाटक प्रहसन व आलाप आदि लिखे हैं । प्रेमघन की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का आरम्भिक रूप मिलता है । आज जो मानक हिन्दी का रूप प्रचलित है उसके अनुसार यदि प्रेमघन की भाषा को परखा जाय, तो निश्चय ही उसमें व्याकरणिक तथा वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ मिलेंगी, किन्तु वास्तविकता यह है कि उस समय हिन्दी गद्य प्रारम्भ ही हुआ था तथा ऐसी ही भाषा प्रचलित थी । इससे सिद्ध होता है कि हिन्दी भाषा के विकास में प्रेमघन का महत्त्वपूर्ण योगदान है । प्रेमघन ने कई नाटक लिखे जैसे— “ भारत सौभाग्य’ कांग्रेस के अवसर पर खेले जाने के लिये सन् १८८८

<sup>६९</sup> प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, चरखे की चमत्कारी, पृ. ६४८

में लिखा गया था । यह नाटक विलक्षण है । पात्र इतने अधिक और इतने प्रकार के हैं कि अभिनय दुस्साध्य ही समझिए । भाषा रंग बिरंगी है— पात्रों के अनुरूप उर्दू, मारवाड़ी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मराठी, बंगाली सब कुछ मिलेगी ।<sup>६२</sup>

‘प्रयाग रामागमन’ नाटक में राम का भारद्वाज आश्रम में पहुँचकर अतिथ्य ग्रहण है इसमें सीता की भाषा ब्रज रखी गयी है । ‘वीरांगना रहस्य महानाटक’ (अथवा वेश्याविनोद महानाटक) दुर्व्यसनग्रस्त समाज का चित्र खींचने के लिए उन्होंने सं. १९४३ से ही उठाया और थोड़ा—थोड़ा करके समय—समय पर अपनी ‘आनंदकादंबिनी’ में निकलते रहे, पर पूरा न कर सके । इसमें जगह—जगह शृंगाररस के श्लोक, कवित्त, सवैये, गजल, शेर इत्यादि रखे गये हैं ।<sup>६३</sup>

प्रेमघन के नाट्य साहित्य का विवेचन आगे किया जा रहा है—

#### माधवी माधव नाटक (सन् १८७८ ई०) :

इसके केवल कुछ हस्तलिखित पृष्ठ ही देखने में आये हैं जिनके आधार पर उसके कथानक और उद्देश्यादि के सम्बन्ध में विशेष नहीं कहा जा सकता । यह एक काल्पनिक वस्तु को लेकर चला है जिसमें लता—पुष्प तथा ऋतुओं जैसे प्राकृतिक पात्र हैं । स्त्री पात्रों में—महारानी माधवी (राजकन्या—नायिका) सोवती और सोनजूही (माधवी की सखियाँ) चम्पा और चमेली (माधवी की दासियाँ) तथा पुरुष पात्र ‘माधव’ हैं । पद्य भाग अधिक है तथा कथोपकथन में गीत—शैथिल्य है आरम्भ में प्रस्तावना है, नांदी की अवतारणा है और तदुपरांत सूत्रधार एवं नटी का आगमन होता है । इस प्रकार नाटक का आरम्भ बहुत कुछ संस्कृत की नाट्य—प्रणाली के अनुसार हुआ है इस उपक्रम के अनन्तर नाटक के आरम्भ में सोनजूही और सोवती माधवमास में प्रकृति की मनोहर छटा के विषय में वार्तालाप करती हैं तदनन्तर चम्पा—चमेली आती हैं और महारानी माधवी के आगमन की

<sup>६२</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. २५६

<sup>६३</sup> वही,

प्रतीक्षा में परस्पर अलाप करती हैं । वस्तु का केवल इतना ही अंश देखने में आया है । इससे केवल प्रेमघन जी की नाट्य-रचना के प्रयास का परिचय मिलता है ।

वारांगना रहस्य महानाटक अथवा वेश्याविनोद (वि. संवत् १९४२)

महानाटक :

इस रूप में प्रेमघन जी एक महानाटक की रचना कर रहे थे, किन्तु वह पूरा नहीं हो सका । उसका प्रकाशन सर्वप्रथम वि. संवत् १९४२ की 'कादम्बिनी' माला २, मेघ २ के अंक में हुआ और थोड़ा-थोड़ा करके वि.संवत् १९६३ ई. की कादम्बिनी माला ६ मेघ ८ तक के अंकों में प्रकाशित होता रहा है । वह केवल अंक २ के तृतीय गर्भांक तक देखने में आता है । उसके अपूर्ण रह जाने का कारण पं. नर्मदेश्वर उपाध्याय के अनुसार है कि एक बार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कजली का मेला देखने मिर्जापुर आये थे, उस समय प्रेमघन ने उन्हें अपना यह नाटक सुनाया था । भारतेन्दु ने उसके नायक 'राजीव लोचन' में अपना ही प्रतिबिम्ब पाया और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रेमघन से उसका लिखना एक दम बन्द करने के लिए कहा । इस पर प्रेमघन ने उसे वहीं छोड़ दिया । प्रेमघन का विचार 'राजीव-लोचन' को एक आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत करने का था । इससे विदित होता है कि वारांगना रहस्य, नाटक की रचना, उसके कादम्बिनी में प्रकाशन के वर्षों से पूर्व हो चुकी थी ।

वारांगना रहस्य महानाटक के लेखक के सम्बन्ध में आलोचकों में कुछ भ्रांतियाँ भी देखने में आयी हैं । जैसे—डॉ. चन्द्रप्रकाश सिंह ने उक्त नाटक के लेखक रूप में किसी निहिलाल का उल्लेख किया है जो नितांत भ्रमपूर्ण है । उसके कादम्बिनी में प्रकाशन के वर्षों पूर्व हो चुकी थी । उसके लेखक प्रेमघन ही थे । प्रेमघन जी ने उक्त नाटक के पात्रों की एक लम्बी सूची " आनन्दकादम्बिनी' के एक अंक में प्रकाशित की थी, जिसके अनुसार उसमें २३



पुरुष पात्र, २३ स्त्री पात्र तथा कतिपय अन्य पात्र हैं । यह एक सामाजिक नाटक है । जिसमें समाज के एक दुर्व्यसनग्रस्त वर्ग का चित्र प्रस्तुत किया गया है । पात्रों की अधिकता के साथ इसमें लम्बे—लम्बे पद्यांश भी हैं । स्थान—स्थान पर शृंगार रस के श्लोक, कवित्त, सवैया व गज़ल—शेर आदि देखे जा सकते हैं सामान्यतः हिन्दी भाषा में लिखे होने पर भी इसमें पात्रानुसार भाषा—प्रयोग हुआ है ।

### भारत सौभाग्य :

इस पुस्तक का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् १८८९ ई. में आनन्द कादम्बिनी यंत्रालय मिर्जापुर से हुआ था । यह ६ अंकों में पूरा हुआ है प्रथम अंक में चार गर्भांक (दृश्य) द्वितीय में चार , तृतीय में चार चतुर्थ में पाँच, पंचम में तीन और षष्ठ में चार गर्भांक हैं इसमें ५३ पुरुष पात्रों और ४२ स्त्री पात्रों से भी अधिक पात्र हैं तथा स्थान—स्थान पर पद्यांश और विविध रागरागिनियों में रचे अनेक गीत हैं ।

यह चतुर्थ 'जातीय महासभा' (Indian National Congress) के अवसर पर अभिनय के प्रयोजन से लिखा गया था, किन्तु कतिपय अड़चनों के कारण इसका अभिनय नहीं हो सका ।<sup>६४</sup> यह एक ऐतिहासिक—राजनीतिक नाटक है क्योंकि इसके कथानक का सम्बन्ध सन् १८५७ से लेकर कांग्रेस की स्थापना तक देश की प्रमुख ऐतिहासिक राजनीतिक घटनाओं से है । इसके पात्र प्रतीकात्मक हैं ।

भाषा सामान्यतः खड़ी बोली होते हुए भी पात्रानुरूप है । पद्यांश प्रायः ब्रज में है । पात्रों के अनुसार इसमें उर्दू, मारवाड़ी, वैसवाड़ी, भोजपुरी, पंजाबी और बंगलादि भाषा के रूपों को सहज ही देखा जा सकता है । नाटक के अंत में नायक—भारत और नायिका—सौभाग्य देवी का मिलन होने से इसका नाम 'भारत सौभाग्य' रखा गया है ।

<sup>६४</sup> भारत सौभाग्य : ई. सन् १८८९ 'समर्पण' नामक अंश, पृ. १

### प्रयाग रामागमन :

प्रेमघन ने इसे रूपक की संज्ञा दी है । यह आनन्दकादम्बिनी यंत्रालय मिर्जापुर से संवत् १९६८ वि. में निकला था । इसकी सूचना मूलतः प्रयाग की युक्त प्रांतीय महाप्रदर्शिनी के सुवृहत् आयोजन के अवसर पर अभिनयार्थ हुई थी और तब यह अपने संक्षिप्त रूप में खेला भी गया था । पं. नर्मदेश्वर उपाध्याय के अनुसार इसका अभिनय बड़ी सफलता के साथ हुआ था । इसमें महाराज रामचन्द्र के वनयात्रा में प्रयाग आने तथा उनके मुनिराज भारद्वाज के अतिथि होने की घटना प्रस्तुत की गयी है । कथानक में कोई जटिलता नहीं है कथानक का आधा वाल्मीकि कृत संस्कृत रामायण है ।<sup>६५</sup> यह एक सांस्कृतिक, पौराणिक एवं धार्मिक महत्त्व का नाटक है जिसे एक ही अंक में समाप्त होने के कारण 'एकांकी' की संज्ञा दी जा सकती है । इसकी वस्तु अंकों या दृश्यों में विभाजित नहीं है ।

पात्रों के प्रवेश, गमन का नाट्यादि के उल्लेख, यथास्थान कोष्ठकों में हुए हैं तथा आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं पात्रों की मनःस्थिति के सूचक अभिनय संकेत भी दिये गये हैं यथा श्रान्त और क्लान्त चेष्टा और हार्दिक उद्वेग को छिपाकर आदि भाषा की दृष्टि से इसमें एक विशेषता परिलक्षित हुई है , वह यह है कि सभ्य—संस्कृत पुरुष पात्र (राम लक्ष्मण और भारद्वाज आदि) खड़ी बोली में तो स्त्री—पात्र (सीता) ब्रजभाषा में और सामान्य पुरुष पात्र (निषादराज) अपनी स्थानीय बोली अवधी में वार्तालाप करते हैं ।

प्रेमघन के उक्त चार नाटक ही प्रस्तुत लेखन को देखने में आये हैं किन्तु कुछ लेखकों ने उनके अन्य नाटकों, जैसे वृद्ध विलाप<sup>६६</sup> और 'संयोगिता स्वयंवर'<sup>६७</sup> एकांकी आदि के भी उल्लेख किये हैं । इनमें से वृद्धविलाप नाटक

<sup>६५</sup> प्रयोग समागम : वि.सं. १९६८ भूमिका, पृ. ३

<sup>६६</sup> भारतेन्दु मण्डल : ब्रा. ब्रजरत्नदास, बी.ए., एल.एल.बी., पृ. ८३

<sup>६७</sup> रामचरण महेन्द्र : हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास, ई.सन् १९५८, पृ. ७५

कहीं देखने में नहीं आया और न उसके सम्बन्ध में कोई परिचय ही प्राप्त हो सका है 'संयागिता स्वयंवर' नामक कोई एकांकी प्रेमघन जी ने नहीं लिखा । इस नाम की उन्होंने एक आलोचना अवश्य लिखी थी जो कदाचित् भ्रमवश 'एकांकी' समझ ली गयी है ।

### प्रहसन व अलाप :

पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन नाटकों के अलावा प्रहसन व अलाप उच्च कोटि के लिखे हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों व समीक्षकों ने प्रेमघन के अनेक प्रहसनों का उल्लेख किया है<sup>68</sup> परन्तु न तो उनका कहीं विस्तार से उल्लेख हुआ है और न विवेचन ही । ऐसी स्थिति में हिन्दी-साहित्य जिज्ञासुओं को उनके प्रहसनों से प्रायः वंचित रहना पड़ता है । प्रेमघन के प्रहसन बहुधा उनकी पत्र-पत्रिकाओं के हास्य 'हरितांकुर' नामक स्तम्भों में निकला करते थे जिनमें प्रायः हास्य-व्यंग्यात्मक ढंग से देश की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भाषादि विषयक परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्घाटित करने का प्रयास किया जा रहा था । प्रेमघन ने 'बातें या 'वार्ता' नाम से 'अलाप' ढंग की छोटी-छोटी प्रहसनात्मक रचनाएँ भी बहुत लिखी थीं । इस समग्र महत्वपूर्ण सामग्री के प्रति हिन्दी -पाठकों की अनभिज्ञता का एक मुख्य कारण उनका पुस्तक-रूप में संगृहीत न होना रहा है । उनके जो प्रहसन व अलाप प्रस्तुत लेखक के देखने में आये हैं उनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

### पाठशाला कुतूहल :

नाट्य रचना की दिशा में यह प्रेमघन जी का प्रयास प्रतीत होता है यदि इसका रचनाकाल सन् १८७१ ई. है तो यह भारतेन्दु के प्रहसन 'वैदिकी हिंसा

<sup>68</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, वि.सं. २०१८, पृ. ४४८

हिंसा न भवति' (सन् १८७३) से पूर्व की रचना ठहरती है । इसमें एक पाठशाला के दूषित वातावरण को हास्य—व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है , जिसमें वहाँ के छात्रों और मौलवी द्वारा एक सुकुमार के प्रति मुहब्बत का इजहार हुआ है यह कुल ५—६ पृष्ठों की रचना है । इनके सभी पात्र पुरुष हैं मुरलीधर नायक है और मौलवी मुश्ताक अली पाठशाला का मास्टर है कला की दृष्टि से यह एक अत्यन्त साधारण कोटि की रचना है इसका कथानक छोटे—छोटे तीन अंकों में है तथा आरम्भ में नांदी और सूत्रधार की योजना हुई है ।

### घोघेमल साहु और सिविलाइज्ड जेंटिल मैन :

सिविलाइज्ड जेंटिल मैन और घोघे साहु दो पात्र हैं । जेंटिलमैन विलायत से शिक्षा प्राप्त करके, नये ढांचे में ढला और विलायती रंग में रंगा व्यक्ति है । साहु से वह कृत्रिम, टूटी—फूटी हिन्दी में बातें करता है । उसकी बातें घोघेमल के पल्ले नहीं पड़ती । जेंटिलमैन साहु को उसकी लड़की को स्कूल भेजने और लड़के को विलायत में पढ़ाने का परामर्श देता है । साहु उसके पक्ष में नहीं है । उसका कहना है कि जिसे नौकरी करनी हो वही विलायत में शिक्षा प्राप्त करे ।

उसके लड़के के लिए दुकान में ही बहुत काम है और घर में ऐसी क्या कमी है जो लड़की को पढ़ाया लिखाया जाए । वह कहता है, घर में क्या कमियाँ हुई कि कन्या के लिखावणे—पढ़ावणे काये कूँ । घर में काम काज, हाटबाजार को सौदा पत्री माल—ताल को नफा नुकसान को ग्यान और हुण्डी पत्री दुकानदारी को भुगतान, अपनो हिसाब किताब, बही खातो, जरायो यही हमारो लिखनो पढ़नो है ।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने इसमें सिविलाइज्ड जेंटिलमैन के अंग्रेजी रंग में रंगे होने और घोघेमल साहु के शिक्षा के प्रति उपेक्षाभाव पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है । इसकी भाषा पात्रानुकूल है ।

### रोवो—रोवो रोते जावो : (वि.सं. १९३८) :

प्रहसन में दो पात्र हैं, गोबर गणेश व गवजूलाल । उनके वार्तालाप में प्रेमघन ने ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों के प्रति लोगों में अंधविश्वास पर व्यंग्य किया है । गवजूलाल 'गोबर—गणेश को देश—विदेश के ज्योतिषियों की सूचना से अवगत कराता है कि दुनियाँ में शीघ्र ही प्रलय होने वाला है । यह सुनकर गोबर गणेश बुरी तरह घबड़ा उठता है और अंत में विलखता हुआ कहता है, अरे क्या ऐसा, फिर क्या तब तो रोवो ! रोवो रोते जावो ! ! !

### बीवी मेहतरानी और ब्राह्मणी की बातचीत :

प्रहसन में प्रेमघन ने बीवी मेहतरानी और एक ब्राह्मणी के वार्तालाप द्वारा छुआछूत के व्यवहार पर व्यंग्य किया है । एक मेहतरानी, छुआछूत में विश्वास करनेवाली एक ब्राह्मणी को अपने को किसी प्रकार से हीन नहीं मानती बल्कि उसकी अपेक्षा अपने को कुछ श्रेष्ठ ही समझती है क्योंकि चपरासी और दरोगा जैसे अनेक लोग उसके प्रेमी हैं । इसका उसे गर्व है और वह अपने को किसी रानी से कम नहीं समझती है । ब्राह्मणी ने जब चपरासी और दरोगा से उनका सम्बन्ध देखा तो वह उसके अभिमान का कारण समझ गयी ।

### आर्य्या किसकी भार्या :

यह एक राजनीतिक विषय का प्रहसन है और प्रतीकात्मक ढंग से लिखा गया है । सन् १८८५ ई. के प्रारम्भ में जार की सेनाओं का मध्य एशिया में निर्बाध गति से प्रसार हुआ और रूस की सेना अफगान के सम्पर्क में आयी । उसने अफगान की एक सीमा—चौकी पंजदे को अपने अधिकार में कर लिया । इससे भारत और ब्रिटेन को युद्ध की आशंका होने लगी । भारतीय जनता को भये होने लगा कि तेजी से बढ़ती हुई रूसी सेनाएँ कहीं सेनाएँ कहीं भारत को न हथिया लें भारत सरकार ने भी युद्ध की तैयारी की । परन्तु लार्ड डरफिन जैसे

कूटनपीतिज्ञ की चतुराई से युद्ध का संकट टल गया । उक्त प्रहसन इसी घटना पर आधारित है ।

इस प्रहसन में भारत आर्य्या है, उसकी चवार संताने हैं ब्राह्मण, चौबे, क्षत्रिय, मारवाड़ी, वैश्य और बंगाली । सिवा क्षत्रिय के शेष संताने उसकी रक्षा में असमर्थ हैं । रूस भालू है वह आर्य्या (भारत) की ओर बढ़ा आ रहा है । आर्य्या की क्षत्रिय संतान उसका सामना करने को तैयार है, पर उसके पास आधुनिक अस्त्र—शस्त्र नहीं हैं । ऐसी स्थिति में आर्य्या अपने स्वामी अंग्रेजी सरकार सिंह से रक्षा की प्रार्थना करती है किन्तु वह अचेत पड़ा है । एक काबुली गदहा आता है और आर्य्या को फुसलाता है । आर्य्या निद्रालीन सिंह को जगाती है पर वह नहीं जागता । इतने ही में रूसी भालू आता है और वह सिंह को ललकारता है । सिंह और भालू में झड़प होती है । सिंह भालू से बचना चाहता है और कहता है— 'बैल ! अमटो दुम से लरना नेई चाटा पर दुम ऐ बटाव, कि ओ कौन सा टर्कीव हुई जिस्में लराई वण्ड को आगार दुम जेवारडेस्ती लरेगा टो लरेगा, वह अगर कोई शक्ल लराई बेचने का हो तो बटाओ । इस पर भालू (रूस) से आर्य्या (भारत) छोड़ने को कहता है । सिंह इसके बादले उसे हर प्रकार का प्रलोभन देता है मगर (भारत) देने को तैयार हो जाते हैं । तदनन्तर एक कजली के साथ प्रहसन समाप्त हो जाता है ।

इसके पात्र पशु है और भाषा इसकी पात्रानुकूल हिन्दी है ।

पंडित, मुंशी और महाजन : (वि. संवत् १९४२) :

इस प्रहसन का सम्बन्ध सरकार की आयकर नीति से है । यह आयकर न केवल व्यापारियों पर ही बल्कि नौकरी—पेशा लोगों पर भी लगा था ।

इसमें तीन पात्र हैं — पण्डित, मुंशी, महाजन । इसमें पण्डित मांगखाने वाला ब्राह्मण है । मुंशी नौकरी पेशा और महाजन व्यापारी है । व्यापारियों पर लगा आय (Tax ) अन्यो के लिए प्रसन्नता का विषय था । पण्डित ने जब

महाजन से कुछ मांगा तो महाजन ने उसे आयकर भार के कारण कुछ देना स्वीकार नहीं किया, ओर इसी प्रकार मुंशी ने भी सेठ पर आयकर लगने के पंडित को प्रसन्नता हुई प्रहसन के अंत में 'कर' विरोधी आन्दोलनकारी लोगों का जलूस निकलता है और वे इस प्रकार गाते हुए लाते हैं—

हुआ फिर हिन्द में, लौलाय टिक्कस ।

मचा फिर हाय टिक्कस हाय टिक्कस ॥

यह कैसी बदबला है कि इलाही ।

जिधर सुनिये है वा वैलाय टिक्कस ॥

इस प्रहसन की भाषा पात्रानुकूल हिन्दी है ।

जुबिली जमघट या कि यारों के ठट्टा : (वि. संवत् १९४४) :

यह एक लम्बा प्रहसन है । इसमें तीन पात्र हैं— पंचानन पिलपिली और हरेखाँ । पंचानन भंग में धुत रहने वाला ब्राह्मण है, पिलपिली नया भारतीय किस्तान और टरेखाँ एक मुसलमान पात्र है । इसमें अंग्रेजी शासकों के भारतीयों के प्रति व्यवहार तथा उनकी शोषण नीति का उल्लेख किया गया है ।

टरेखाँ की दृष्टि में अंग्रेजी शासक मुसलमान शासकों की तुलना में राजसी ठाट—बाट में कम ठहरते हैं , वह अंग्रेजी नीति व व्यवहार की आलोचना करता है, तो पिलपिली किस्तान होने के नाते अंग्रेजी सरकार की प्रशंसा करता है । पंचानन तटस्थ रहता है । भाषा पात्रानुकूल हिन्दी है ।

पशु प्रपंच (वि. संवत्) (वि. संवत् १९६१) :

यह प्रहसन भी प्रतीकात्मक है और 'आर्या किसकी भार्या' की भाँति इसके पात्र भी गौ, हाथी, अजगर, रीछ, सिंह, चीता, महिष और वृक आदि पशु है । यह कहना कठिन है कि ये सब पात्र वास्तव में किन—किन के प्रतीक हैं ? संभवतः गौ तिब्बत है सिंह—ब्रिटिश सरकार है और रीछ रूस है । इतिहास को देखने पर विदित होता है कि कदाचित् इसका सम्बन्ध ई. सन् १९०४ की

भारत—तिब्बत वाली उस घटना से रहा है जिसमें दोनों के बीच आक्रमण कार्यवाही की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी ।

गौ अपनी रक्षा के लिए पुकार करती है । हाथी के मस्तक पर विराजमान सिंह को देखकर वह धर-धर कांपती हुई आर्तनाद करती है । हाथी उसे सलाह देता है कि वह सिंह की शरण में आ जाये, किन्तु वह परतंत्रता स्वीकार करना नहीं चाहती । उसे अपने सहायकों—अजगर, रीछ, वृक् और महिष आदि से अपेक्षित सहायता नहीं मिलती । सिंह उसे मारना नहीं चाहता बल्कि चाहता है कि वह मात्र उसी से सम्बन्ध रखे ।

गौ को यह स्वीकार्य नहीं अतः अन्त में वह आत्मरक्षा के लिए सिंह पर आक्रमण के लिए सिंह पर आक्रमण करती है और सिंह उसे क्षति पहुँचाता है—

गौ—तब क्या मुझे अपनी ही सींगों से इसे रोकना होगा ? (आक्रमण) ।

सिंह — वेल ! हम तुम को मारने नहीं चाटा, तुम क्यों अपना बेफाइदा जान देने मांगता है ?

(पकड़ कर सींग तोड़ डालता है) ।

इसकी भाषा पात्रानुकूल खड़ी हिन्दी है ।

अपूर्व सम्मिलित (वि. संवत् १९६९) :

इसमें कुल पाँच हैं— बादरायण, युद्ध कार्तिकेय, कृष्ट और कृष्ण । समय और स्थान—निर्देश इस प्रकार है— पहली मई, पालू नदी का किनारा । वहाँ कृष्ण बादरायण और युद्ध में परस्पर अपने मतों व मतानुयायियों के सम्बन्ध में वार्तालाप होता है । तदनन्तर कृष्ण आ जाते हैं और कहते हैं, “ हम चारों का तत्त्व ही है किन्तु लोग इसी बात पर लड़ मरे मटे और लड़ते मरते मिटते हैं कि हम अलग-अलग हैं, “ इस प्रकार का विषय धार्मिक है भाषा पात्रानुकूल है— कृष्ण की भाषा अंग्रेजी मिश्रित—टूटी-फूटी खड़ी बोली तो युद्ध की प्राकृत (पाली) मिश्रित खड़ी बोली है ।



### कुट्टी और जुट्टी (वि. संवत् १९६४) :

इसकी वस्तु का सम्बन्ध कर्जन—मालें की बंग विभाजक उस कुटिल नीति से है जिससे समग्र भारतीय जनता में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध शेष व्याप्त हो गया है । कलकत्ता के चौक बाजार में एक अंग्रेजी बालड्रेस धारिणी सुन्दरी वेश्या बड़े हाव—भाव से अपने चाहनेवालों को लुभाती और बुलाती है । पूर्वी मारवाड़ी मुसलमान, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी, देश के विविध भागों और धर्मों के लोग उसके चाहने वाले हैं, किन्तु आज वे सब उसके खिंचे हुए हैं । एक बंगाली भी जो उसका विशेष चाहने वाला था आज उसका मुँह जला डालना चाहता है । वह कहता है, मैचेज—रदाव—२ । कीश का पास है ? 'दाओ नो क्या नो ? (जेब टटोलता है) राक्खशी । तुमारा मुख में अगुन देखकर हाम एक दाम भस्मी कर देने मांगता ।" युवती मेम इसका कारण समझ जाती है और स्वागत करती है, बेल बौट अफसोस का बाट हाय जाय जो यह बंगाली बाबा नाराज हो गया ! वेल इसका माफिक हमारा कोई बी दूसरा चाने वाला नई ठा, 'बट अब टो एक डम से हाम से फिर गया । शायद इसी का साट मराटा और पंजाबी भी हमारा हाट से जाने बाटा ! अफसोस! ये सिरफ लौर्ड कर्जन का बूवकूफी आडर मिस्टा आलें की अण्डी पोलेसी का नटीजा हाय !

भाषा पात्रानुकूल हिन्दी ।

### उपासक और परिहास :

यह उपासक और परिहासक नामक दो पात्रों का आलाप है, जिसमें प्रेमघन ने ईसाई मत के बोलबाला और हिन्दू देवी देवताओं के प्रति निष्ठा की निरर्थकता पर व्यंग्य किया है भाषा खड़ी बोली हिन्दी है।

भाषा खड़ी बोली हिन्दी है ।

### वक्ता और श्रोता ( वि. संवत् १९३४ ) :

इस अलाप में धार्मिक वक्ता के कथन की प्रभाव हीनता पर व्यंग्य किया है । वक्ता श्रोताओं के पाषाण—पूजा के परित्याग और लम्पट वैरागी बाबाओं तथा ब्राह्मणों से बचने के लिए कहता है किन्तु श्रोताओं पर उसके कथन का विपरीत प्रभाव पड़ता है वे उसे पागल, सनकी और पियक्कड़ समझते हैं । वक्ता आर्य समाजी प्रतीत होता है ।

### एक आर्य समाजी बरात के बराती और दर्शक की बातें :

इसका प्रकाशन 'नागरी नीरद' के विविध विन्दुओं में हुआ था । आर्यसमाजी बरात का बराती स्पष्ट ही आर्यसमाजी है । दर्शक से वह हिन्दुओं की सामाजिक कुरीतियों में परिवर्तन की बात कहता है, पर दर्शक परम्परा से चली आनेवाली अच्छी चालों को बदलने के पक्ष में नहीं है । बराती का कहना है कि अब पुरानी चालें बदल दी जाँय, यह क्या कि जो बातें बाबा आदम के जमाने के चली आ रही हैं वे ही बराबर चलती रहें । इस पर दर्शक का अभिमत इस प्रकार है, “ अच्छी चाल जो सदा से चली आती है और जिसमें अपनी और अपनी जाति का देश की कुछ भी हानि नहीं है, इसका क्यों त्याग करें । यदि आवश्यक है तो संशोधन करना इष्ट है तो निकृष्ट चालों का संशोधन करना चाहिए , न कि उत्तम का । ” इसमें आर्यसमाजियों की उस अपेक्षात्मक प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है जो प्रायः हिन्दू समाज की परम्पराओं के प्रति दृष्टिगोचर होती रही है ।

### पांडेय और पादड़िन का समागम :

यह एक लम्बा प्रहसन है जिसमें पांडे व पादड़िन का वार्तालाप विशेष हास्योत्पादक है इसमें कुल तीन पात्र हैं— पांडे, पादड़िन और कांसटेबिल, जिनमें प्रथम दो मुख्य हैं । कांसटेबिल का विशेष कार्य नहीं है । भाषा पात्रानुकूल हिन्दी है ।

प्रेमघन ने इसमें ईसाईयों को धार्मिक कट्टरता और उनके जनहितकारी कार्यों की आड़ में निहित अपने धर्म—प्रचार की भावना पर आक्षेप किया है ।

### निबन्ध :

निबन्ध शब्द का अर्थ रोकना या बाँधना है। इसके पर्यायवाची रूप में 'लेख' 'सन्दर्भ', 'रचना', 'प्रस्ताव', आदि का उल्लेख किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग लैटिन के 'एग्जीजियर' (निश्चितापूर्वक परीक्षण करना) । आधुनिक साहित्य में 'निबन्ध' का विकास भी बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणा से हुआ है। आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता मौनतेन् महोदय का कथन है—'निबन्ध विचारों उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है। दूसरी ओर जॉनसन महोदय के मत में निबन्ध का आकस्मिक और उच्छृंखल आवेग असम्बद्ध और चिन्तनहीन बुद्धि विलास मात्र है।'<sup>६९</sup>

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के साहित्यिक उद्भव से पूर्व हिन्दी में निबन्ध परम्परा का सूत्रपात हो चुका था । सदासुखलाल, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और बालकृष्ण भट्ट जैसे इस दिशा में पहल कर चुके थे । यों तो सदा सुखलाल के 'सुरासुर निर्णय' (वि.सं. १८३९-४१) से आधुनिककाल में निबन्ध परम्परा का सूत्रपात हो चुका था । " परन्तु उसका अजस्र प्रवाह भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ । इस युग के प्रेरणा केन्द्र हरिश्चन्द्र ही थे तथा तत्कालीन प्रायः सभी हिन्दी लेखकों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की थी । सर्वप्रथम उनके ही लेखों में, आधुनिक निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान मिलती हैं । डॉ. ओंकार नाथ शर्मा लिखते हैं, सर्वप्रथम भारतेन्दु की ही निबन्ध रचनाओं में आधुनिक हिन्दी निबन्ध की विशेषताएँ— विषय वस्तु प्रधान संक्षिप्त था सीमित रचना जिसमें वैयक्तिकता की छाप हो— दृष्टिगोचर होती है निबन्ध को लोकाभिमुख तथा

<sup>६९</sup> डॉ. गणपत चन्द्र गुप्त : साहित्यिक निबन्ध, पृ. ४३५

लोकप्रिय बनाने में सबसे अधिक भारतेन्दु ही सफल हुए ।” वह युग हिन्दी निबन्ध या लेख के निर्माण का आरम्भ काल था तथा प्रेमघन के पूर्व बहुत कम ही लेखक इस दिशा में उल्लेखनीय थे ।

निबन्धों के वर्गीकरण की अनेक पद्धतियाँ रही हैं । कभी विषय की दृष्टि से उनके वर्गीकरण किये जाते हैं । प्रेमघन के निबन्धों का भी अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है । पं. दिनेशनारायण उपाध्याय ने उनके निबन्धों को साहित्यिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐतिहासिक आलोचनात्मक और सम्पादकीय अग्रलेख जैसे वर्गों में रखने की चेष्टा की है । यह विभाजन प्रायः विषय के आधार पर हुआ है । डॉ. ओंकार नाथ ने उनके निबन्धों का विचारात्मक, आलोचनात्मक और वैयक्तिक जैसे वर्गों में उल्लेख किया है, किन्तु इसमें ‘आलोचनात्मक’ निबन्धों का विचार विवेचन प्रधान होने के कारण विचारात्मक वर्ग के अन्तर्गत ही उल्लेख किया जा सकता था । प्रेमघन के निबन्ध में सामान्यतः विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक और वैयक्तिक जैसे वर्गों में अन्तर्गत विचार किया है । प्रेमघन के निबन्धों (लेखों) में प्रायः विचार तत्व की प्रधानता मिलती है । अतः वे प्रधान रूप से विचारात्मक लेख थे । भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों का श्री गणेश ही उनके द्वारा हुआ था । इस वर्ग में जिन निबन्धों का उल्लेख किया जा रहा है समाचार पत्र अथवा अखबार किसे कहते हैं, नागरी भाषा, दृश्य रूपक वानाटक, हिन्दू हिन्दू और हिन्दी , हमारे देश की भाषा और अक्षर, हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन , विधवा विपत्ति वर्षा, तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कलकत्ता की सभापति भाषण, संयोगिता स्वयंवर की आलोचना , बंग विजेयता की आलोचना, कठाली—कुतूहल एवं कजली की कुछ व्याख्या, नागरी के समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज, नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा, नागरी के समाचार पत्र और उनकी आलोचना, हमारा नवीस संवत्सर, भावी भारतीय महासम्मिलन, स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशी

वहिष्कार , भारतीय प्रजा में दो दल, पुरानी तिरस्कार और नयी का सत्कार, भारत वर्ष की दरिद्रता, कांग्रेस की दशा नागरी के पत्र और उनकी विवाद प्रणाली तथा हमारी प्यारी हिन्दी आदि । इन निबन्धों में प्रायः सामयिक विषयों के सम्बन्ध रहा है तथा इनमें से अधिकांश पत्रकारिता के ढंग के निबन्ध हैं, जिनमें भाषा राजनीति, समाज और आलोचनादि विषयों का समावेश हुआ है ।

### वर्णनात्मक या विवरणात्मक :

इस वर्ग के निबन्धों में प्रायः दर्शनीय स्थानों, यात्रा तथा ऋतु आदि के वर्णन हुआ करते हैं जिनमें विचार, अनुभूति और कल्पना का समावेश देखा जा सकता है प्रेमघन के इस वर्ग निबन्धों में ऋतुवर्णन । परिपूर्ण पावस और पावस प्रस्थानादि) तथा गंगा सागर यात्रादि । वस्तुतः इस वर्ग के निबन्ध उन्होंने बहुत कम लिखे हैं । उनके बनारस का बुढ़वा मंगल' और दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार संस्मरणात्मक एवं वैयक्तिक निबन्धों में भी वर्णनात्मक प्रसंग आये हैं ।

### भावात्मक :

प्रेमघन के निबन्धों में भावत्व का समावेश दिखाई देता है । वे हैं भारतेन्दु अवसान और शोकोच्छवास आदि ।

### वैयक्तिक :

इसके अन्तर्गत प्रेमघन के उन निबन्धों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें उनके जीवन की व्यक्तिगत घटनाओं और निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है — ऐसे निबन्धों में गुप्त गोष्ठी गाथा' बनारस का बुढ़वा मंगल और दिल्ली दरबार में मित्रमण्डली के यार हैं । शोकाच्छवास निबन्ध बहुतांशतः इसी प्रकार के हैं । बुढ़वा आधुनिक ढंग के निबन्ध कही जाने वाली रचनाओं में गुप्त गोष्ठी गाथा, बनारस का मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार और ऋतुवर्णन जैसे निबन्धों का उल्लेख किया गया है ।

## पत्रिकाएँ :

### आनन्द कादम्बिनी :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनन्दकादम्बिनी' का सर्वप्रथम अंक श्रावण विक्रमी संवत् १९३८ में अपनी प्रेस मिर्जापुर से निकाला। उसके प्रादुर्भाव के सम्बन्ध इस में इस प्रकार लिखा है '“यहाँ रसिक समाज के रसिकों की बड़ी उत्कण्ठा थी कि इस उत्तम नगर में कोई नागरी भाषा का ऐसा पत्र निकले कि जिसके द्वारा भाषा का जौहर दिखाया जाय और उक्त समाज के सभ्यों के बचनामृत की वर्षा कर दूर-दूर के प्रेमियों को सुखी करे ।”<sup>70</sup> आनन्द कादम्बिनी मासिक पत्रिका की लम्बाई चौड़ाई की दृष्टि प्रायः १०X ६ इंच के आकार में, कभी २४ पृष्ठों में तो कभी ३२ पृष्ठों में ही निकला करती थी। यह पत्रिका लगभग ११ वर्ष तक निकलती रही । बाद में बन्द हो गयी। सन् १८८५ में 'आनन्द कादम्बिनी' की प्रचार संख्या लगभग ५०० थी।<sup>71</sup> प्रेमघन की आनन्दकादम्बिनी में सिद्धान्तवाक्य से विदित है कि मंगलकामना से प्रेरित थे । कादम्बिनी सिद्धान्तवाक्य—

चातक विबुध जन तोषि रसिक मयूरमन मोहत मोर ।  
वरवै सुविधा वारि जातों नागरी सरवर भरे ॥  
हरियाय आरज बस छिति अरु ताप कुमतिन को टरै।  
आनन्द कादम्बिनी भारत छाय नित मंगल करे ॥

### नागरी नीरद पत्रिका :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'नागरी नीरद' का प्रथम अंक भाद्रपद शुक्लपक्ष विक्रमी संवत् १९४९ को मिर्जापुर से निकला। इसके प्रत्येक अंक ४

<sup>70</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. २८८

<sup>71</sup> डॉ. भीम रानी बल : राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, पृ. ११५

पृष्ठों में निकला करता था। लम्बाई चौड़ाई की दृष्टि से पहले व लगभग १२X९ इंच के आकार में और बाद में वह अपने बृहदा आकार में लगभग २०X १२ इंच में निकलने लगा । 'नागरी नीरद' साप्ताहिक समाचार पत्रिका है। इसमें देश की आर्थिक दशा सुधारने और विपत्तियों से बचाने के लिये अपने ही देश में आवश्यक उपभोक्ता सामग्री के निर्माण तथा स्वदेशी उत्पादन के महत्त्व को निरूपित किया है । नागरी का सिद्धान्त वाक्य—

नवल नागरी तला पै वर विद्या वरषाय ।

करै प्रफुल्लित नागरी नीरद छवि सों छाये ॥

चतुर्थ अध्याय

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में  
अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध रूप

भारत वन्दना तथा प्रशस्ति  
अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान का समाधान  
वर्तमान दुर्दशा के विभिन्न पक्ष तथा उनका समाधान  
सामाजिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान  
उद्बोधन तथा आह्वान



## चतुर्थ अध्याय

### बदरीनारायण 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध रूप

हिन्दी में राष्ट्रीय-साहित्य का प्रारम्भ वास्तविक रूप से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के काव्य लेखन में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी विविध रूप यहाँ प्रस्तुत हैं —

१. भारत वन्दना तथा प्रशस्ति
२. अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान का समाधान
३. वर्तमान दुर्दशा के विभिन्न पक्ष तथा उनका समाधान
४. धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान
५. राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान
६. उद्बोधन तथा आह्वान

#### भारत वन्दना तथा प्रशस्ति :

भारत एक विशाल देश है । अपने देश के प्रति प्रेम होना राष्ट्रीय चेतना की प्रथम आवश्यकता है । वाल्मीकि रामायण में भगवान् राम ने देश प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है—

अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्ष्मण रोचते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि ॥<sup>१</sup>

समस्त मातृभूमि पुण्यभूमि है और वही भारतवर्ष है विष्णु पुराण में स्वर्ग और मोक्ष इन दोनों की प्राप्ति के साधन भारत की महिमा का ज्ञान किया गया है । भारत महत्त्वता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि देवता भी स्वर्ग में यह गाते हैं— “धन्य है वे मनुष्य जो भारतभूमि के किसी भाग में उत्पन्न हुए वह भूमि

<sup>१</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १५१-१५२

स्वर्ग से बढ़कर है, क्योंकि वहाँ स्वर्ग के अतिरिक्त मोक्ष की साधना की जा सकती है क्योंकि स्वर्ग में देवत्व भोग लेने के बाद देवता मोक्ष की साधना के लिए कर्मभूमि भारत में फिर जन्म लेते हैं—

“ गायन्ति देवा’ किल गीत कानि

धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।<sup>१</sup>

विष्णु २/३/२४

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने भारत की वन्दना भवानी के रूप में की है और प्रशस्ति सम्बन्धी साहित्य भी लिखा है और स्व-रचित ग्रन्थों में इतिहास के प्रायः उसी पक्ष को चित्रित किया है जो प्रेमघन काल की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है— राष्ट्रीय चेतना की कविता “ स्वदेश बिन्दु’ जातीय गीत’ वन्देमातरम्’ में भारतभूमि की वन्दना भवानी के रूप में की गई है—

जय जय भारत भूमि भवानी ।

जाकी सुयश पताका जग के दसहु दिसि फहरानी ।

सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ।<sup>२</sup>

प्रेमघन ने ‘जीर्ण जनपद’ में मातृभूमि के प्रति सहज स्नेह का वर्णन बड़ी ही सुन्दर और ललित भाषा में किया है । ग्राम जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत है —

खेतन में जल भरयो शस्य उठ ऊपर लहरत ।

चारहुँ ओर हरियाली ही की छबि छहरत ॥

भोरी भारी ग्राम बधू इस संग मिलि गावति ।

<sup>१</sup> वही,

<sup>२</sup> स्वदेश बिन्दु प्रे. सर्व., प्रथम भाग ।

झुक सुर में रसभरी गीत झनकार मचावति ॥”<sup>३</sup>

भगवान् राम और कृष्ण को वे निर्गुण का अवतार मानते हैं उनका विश्वास है कि सकल जग करतार ही समय समय पर पृथ्वी के उद्धारार्थ विविध रूप धारण कर अवतरित होते रहते हैं । प्रेमघन एक वन्दना में इसी भाव को प्रकट करते हुए लिखते हैं—

जय जय मानव रूप धर सकल जगत करतार ।

जयति दुष्ट दल दहल श्री कृष्ण हरन भू भार ॥

‘सौभाग्य समागम’ कविता में प्रेमघन ने सम्राट् जार्ज पाँच से भी भारत की दशा सुधार की प्रार्थना करते हैं तथा उनको देश का सच्चा हितैषी शासक सिद्ध करते हैं—

‘निज नयनन निज प्रजा की सांची दशा निहार’ को कवि प्रार्थना करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है—

सब द्वीप की विद्या, कला, विज्ञान, इति चलि आवई ।”<sup>४</sup>

प्रेमघन ने प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं । प्रशस्ति का शाब्दिक अर्थ स्तुति, प्रशंसा इस दृष्टि से प्रशस्ति काव्य वह जिसमें किसी भी प्रशंसा व स्तुति की गई हो मोटे रूप से प्रशस्ति काव्य का उल्लेख दो रूपों में किया जा सकता है देव प्रशस्ति और मानव प्रशस्ति, देव प्रशस्ति भक्ति का विषय है यहाँ केवल मानव प्रशस्ति से सम्बन्ध है । हिन्दी में प्रशस्ति काव्य की पुरानी परम्परा रही है ।

प्रेमघन की प्रशस्तियाँ या तो प्रासंगिक रूप में मिलती हैं या स्वतंत्र रूप में प्रेमघन की प्रशस्तियों को संक्षेप में राजप्रशस्ति, जननायक प्रशस्ति और मित्र प्रशस्ति, आदि वर्गों में रखा जा सकता है, राजप्रशस्ति के अन्तर्गत लार्ड रिपन

<sup>३</sup> ‘जीर्ण जनपद, प्रेमघन सर्व., भाग’ १, पृ. ४१—४२

<sup>४</sup> सौभाग्य समागम, वही, पृ. ३८७

और लार्ड मैकडानेल जैसे देश हितैषी सुशासकों से सम्बन्धित प्रशस्तियों को रखा जा सकता है ।

जननायक प्रशस्ति के अन्तर्गत लाला लाजपतराय और दादाभाई नौरोजी जैसे देश भक्तों से सम्बन्धित प्रशस्तियों को रखा जा सकता है तो 'मित्र प्रशस्ति' के अन्तर्गत उनके सम्पर्क में आने वाले किन्हीं गुणवान मित्रों से सम्बन्धित प्रशस्तियों को रखा जा सकता है—

#### राजप्रशस्ति :

देश हितैषी सुशासकों से सम्बन्धित प्रशस्ति है—

तापै वाइसरा भागन सो,  
लार्ड रिपन सो आओ ।  
शुद्ध न्याय दिनकर सो दिन कर,  
उन्नति पथहि लखाओं ॥<sup>५</sup>

#### जननायक प्रशस्ति :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने दादाभाई नौरोजी से सम्बन्धित नायक प्रशस्ति 'मंगलाशा' में लिखी गयी है—

पै दादाभाई नौरोजी महाबीर बर,  
हार्यो थक्यो न करत रह्यो उद्योग निरंतर ।  
विजय रूप उद्योग सुफल पायो सो अब के,  
जासो रही नहीं सुख सीमा हम सब के ॥<sup>६</sup>

#### भारत की वन्दना एवं प्रशस्ति :

भारत की वन्दना एवं प्रशस्ति में प्रेमघन ने ईश्वर से प्रार्थना की है—

<sup>५</sup> श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ४३०-४३१

<sup>६</sup> दिनेश नारायण अग्रवाल : साहित्य रत्न, वही, पृ. २४५-४६

“ आर्य्य जाति का हो अभ्युदय भूमि भारत पर ।  
 सत्य सनातन धर्म अटल हो उन्नत होकर ॥  
 सुख समृद्धि धन अन्न शिल्प विज्ञान वर ।  
 बसै यहाँ सब विद्या कलाप कलाप निरंतर ।  
 एकता धीरता प्रेमघन देशभक्ति स्वाधीनता ॥  
 हरि वर फूट अन्याय संग हरै दोष दुःख दीनता ॥<sup>९</sup>

### स्वदेश बिन्दु :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इसमें देश के गौरवमय अतीत का वर्णन करते हुए उसकी वर्तमान दुरवस्था का उल्लेख किया है, “स्त्रियों की कीर्ति” में प्रेमघन ने अतीतकालीन भारत की गौरवमयी नारियों का आख्यान तथा वंदना की है—

लज्जा, दया, धर्म पति सेवा रत सब सहज सुभाय ।  
 बन्दनीय से सुमुखि प्रेमघन सबको सीस नवाय ॥<sup>१०</sup>

### अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान का समाधान :

इस संसार में मनुष्य का स्वभाव है कि वह आपात्कालीन समय में अपने अच्छे तथा सुखमय जीवन का स्मरण करता है । आपत्ति में उसे अपने सुखमय जीवन के दिन याद आते हैं । जब कोई राष्ट्र से प्रेम करता हो और वह अपने राष्ट्र को गुलामी एवं शोषण के दो पाटों के बीच पिसता हुआ देखता है तब उस मनुष्य को अपने राष्ट्र का गौरवपूर्ण बीते हुए समय को याद करता है । भारत एक ऐसा ही देश है जिसका बीता हुआ समय अत्यन्त गौरवशाली सर्वश्रेष्ठ एवं सभ्यता का शिरोमणि रहा है अंग्रेजों के अत्याचार एवं शोषण से परेशान जनता का अतीत को स्मरण करना, मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक सत्य है । अंग्रेजों के

<sup>९</sup> मंगलाशा, वही, पृ. ३५५

<sup>१०</sup> स्त्रियों की कीर्ति, वही, पृ. ६४७

अत्याचार से पीड़ित होकर भारतीय जनता एवं साहित्यकार का अतीत का स्मरण एवं गुणगान करने लगे । बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी अतीत का स्मरण एक देशभक्त के रूप में किया । प्रेमघन अतीत के प्रति स्मरण पक्ष अत्यन्त उज्ज्वल एवं स्पष्ट रहा है । यथा—

जो भारत को साँचो आज सपूत कहावत ।  
 सब भारतवासी जापै अभिमान जनावत ॥  
 हे दादा भाई ! तुमरी किमि करै बड़ाई ?  
 दई जाहि दै दई बड़ाई बड़ो बनाई ॥  
 कहत सबै भारतवासी गन हिय हरखाई ।  
 भारतवासिन के तुम साँचे दादा भाई ॥<sup>१</sup>

'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने भारत की सम्पत्ति की क्षीणता और हीन दशा का इस प्रकार उल्लेख किया ।

पै दुख अतिभारी इक यह जो बढ़त दीनता ।  
 भारत में सम्पत्ति की दो दिन दिन होत हीनता ॥

X X X

सुख सुकालहू जिन्हें अकाल हि के हम भासत ।  
 कहई कोहिन सहत सदा भोजन की सोसत ॥  
 एक हि समय आध ही पेट लहत जे भोजन ।  
 मोटो सूखो रूखो अन्न लोन बिज रोजन ॥<sup>१०</sup>

'पितर प्रलाप' कविता में प्रेमघन ने इसमें हिन्दू पितरों के माध्यम से भारत के गौरवपूर्ण अतीत और वर्तमान की शोचनीय अवस्था का प्रभावशाली चित्र

<sup>१</sup> वही, पृ. २४९

<sup>१०</sup> हार्दिक हर्षादर्श, प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. २८५

प्रस्तुत किया है— इसलिए हिन्दू पितरों ने भारतखण्ड में आकर जब यहाँ की दुर्दशा देखी तो संकोच से सिर नीचे कर लिये —

“आये जो ये पितरगन भारत खण्ड के बीच ।

देखि यहाँ की दुःखदशा सकुचि किये सिर नीच ॥<sup>११</sup>

पितर यहाँ सोचनीय अवस्था से घबराकर यह कहते हुए भाग छूटने की कोशिश की—

“चलहु चलहु भागहु तुरत नाहि या ठहरन जोग ।

भयो प्रबल भारत अटल अब कल जहुग को भोग ॥

देहि कहा निज वंश को, हाय और हम शाप ।

जस कछु ये करि है अवसि फलहु भोगि है आप ॥

X X X

नहिं विद्या नहिं बाहुबल नहिं खरचन को दाम ।

दीन हीन हिन्दून की तू पति राखै राम ॥<sup>१२</sup>

सम्राट् जार्ज पॉच के भारत आगामन पर बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने ‘सौभाग्य—समागम’ (सं. १९६९) कविता लिखी । देश की जनता सम्राट् के आने से बहुत खुश है —

नगर—नगर घर घर हियेनर नर के चहुँ ओर ।

भारत में आनंद उदधि उमड़यो आज अथोर ॥

कैसे उनके हरष की सीमा आज लखाय ।

भारतीय कैसे सकहिं कृतज्ञता विसराय ॥<sup>१३</sup>

‘भारत सौभाग्य’ नाटक चाहे खेलने योग्य नहीं पर देश दशा पर वैसा बड़ा अनूठा और मनोरंजक नाटक दूसरा नहीं लिखा गया । उसके प्रारम्भ में अंकों में

<sup>११</sup> पितर प्रलाप, वही, पृ. १५६

<sup>१२</sup> वही,

<sup>१३</sup> सौभाग्य समागम, वही, पृ. १६३

सरस्वती, लक्ष्मी, और दुर्गा इन तीनों देवियों के भारत से क्रमशः प्रस्थान का दृश्य बड़ा ही भव्य है । इसी प्रकार तीनों देवियों के मुख से विदा होते समय जो कविताएँ कहलाई गयी है ये भी बड़ी मार्मिक है । हंसारूढ़ सरस्वती के चले जाने पर दुर्गा कहती है—

आजु लौ रही अनेक भाँति धीर धरि कै  
पै न भाव मोहि बैठनो सुन मौन मारि कै  
जाति हौ चली वही सरस्वती गई जहाँ ॥<sup>१४</sup>

वर्तमान दुर्दशा के विभिन्न पक्ष तथा उनका समाधान :

साहित्यकार समाज में पैदा होता है और समाज में प्रचलित परम्पराएँ भाव विचार उसे प्रभावित करते हैं । साहित्यकार समकालीन सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है । इसलिए साहित्यकार की रचनाओं द्वारा उस समय की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त होता है । साहित्य में हित की भावना निहित है — “ साहितस्य भावः साहित्यम् ” साहित्यकार समाज का प्रतिनिधि होता है । सहृदयता के कारण साहित्यकार की अनुभव शक्ति अन्य व्यक्तियों से अधिक हो । काव्य—हेतु बताते मम्मट का कथन है—

“शक्तिः निपुणता लोक शास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।

काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥<sup>१५</sup>

इससे स्पष्ट होता है कि साहित्यकार अत्यन्त ज्ञान सम्पन्न होता है । वह समाज के विभिन्न पक्षों पर श्रेष्ठ विचार प्रकट करता है । इसीलिए उसकी रचना का अध्ययन अध्यापन किया जाता है । बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने भारत की सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दुर्दशा का कारुणिक

<sup>१४</sup> डॉ. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ३८२

<sup>१५</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १६१-६२



वर्णन किया तथा उसके समाधान के लिए उत्कृष्ट विचार एवं उपाय साहित्य में प्रस्तुत किए ।

### सामाजिक दुर्दशा तथा उसका समाधान :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के समय में समाज अत्यन्त शोचनीय स्थिति में था । लगातार 'समाज विघटन' की ओर बढ़ता जा रहा था जैसे— रूढ़िग्रस्त, अन्धविश्वासी और धर्मच्युत् हो चुका था । भारत की दशा तो पहले से ही बिगड़ती जा रही थी । अंग्रेजों के समय में देश की और भी दुर्गति हो गयी। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव से उसकी वर्ण—व्यवस्था तथा आचरण सम्बन्धी परम्परागत अनेक मान्यताओं पर प्रबल आघात हो रहे थे । 'ब्रह्म समाज' व 'आर्य समाज' जैसे— नवोदित समाज अपने—अपने ढंग से पुनरुत्थानात्मक कार्यों में संलग्न थे, प्रेमघन प्रायः अपने साम्प्रदाय तक ही परिमित थे ।

प्रेमघन अपने समय की सामाजिक हलचलों से भलीभाँति परिचित थे । उन्होंने अपने 'पितर प्रलाप', 'आनन्द बधाई,' आर्याभिनन्दन,' आनन्द अरुणोदय जैसी कविताओं में सामाजिक संगीत के गीतों में स्थान—स्थान पर सामाजिक विषयों का स्पर्श किया ।

इसमें प्रेमघन ने हिन्दू समाज की यथार्थ दशा का चित्रण किया है, उसकी बुराइयों का उद्घाटन किया है तथा समयानुसार संशोधन के सुझाव दिये हैं ।

'पितर प्रलाप' में प्रेमघन पितर प्रलाप के अन्तर्गत भारतवासियों को अपने आदर्शों से गिर जाने पर उनके आचार—विचार तथा संस्कार के लोप हो जाने पर क्षुब्ध होते हैं । धर्म का लोप होना, कलह अविद्या, दरिद्रता का फैलना भारतीयों के दुर्दशा का द्योतक है । ऐसी अवस्था में कवि पितरों से कहते हैं अब तुम लोग लौट जाओ, भारत में तुम्हारी मान्यता न हो पावेगी । इस कविता में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का सुन्दर चित्र अंकित किया है ।

विप्र क्षत्रिय और वैश्य अपनी उदारपूर्ति के लिए निम्न वृत्तियों में लगे थे तो शूद्र द्विज—कार्य करने लगे थे समाज की वर्ण धर्म—सम्बन्धी इसी विशृंखलित दशा का प्रेमघन एक स्थान पर उल्लेख करते हैं—

“ देत पौसला बिप्र अब, खासे बने कहाँ ।  
रेलन के स्टेसनन डोलत डोलन धार ॥  
अस्त्र शस्त्र ढोवत रहे, जो सब क्षत्री लोग ।  
बोझा ढोवत आज लखि, तिन्हे होत अति सोग ।  
वैश्य वरण सब घूमते, मांगत भीख मुदाम ।  
शूद्र द्विजन उपदेशते, कहि कहि कथा ललाम ॥<sup>१६</sup>

समाज के श्रेष्ठ व कर्णधार ब्राह्मणों की भाँति वैरागी संन्यासियों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी । प्रेमघन ने अपनी कविता ‘पितर प्रलाप’ में ब्राह्मणों की दीन दशा, उनकी अयोग्यता और अकर्मण्यता को लक्ष्य करके पितृपक्ष में ब्राह्मणों की दशा का उल्लेख करते हुए लिखा है—

“पितर पक्ष को पर्व अब, आयो मन मैं जानि ।  
चले हीन मति दीन द्विज नगर मोद मन माहि ॥  
भोजन कै डकरत चलें, बूढ़े बैल समान ।  
पाय दच्छिना टेंट में । खोंसत कचरत मान ॥<sup>१७</sup>

इसी तरह प्रेमघन ने वैरागी संन्यासियों की दुर्दशा का भी यथार्थ चित्रण किया है—

वैरागी गोस्वामी सब राखै द्वै द्वै रांड ।  
निज चेली सुरभीन के हित तो मानों सांड ।  
बने गृहस्थ सबै अबै, रंडुआ त्यागी दीन ।

<sup>१६</sup> पितर प्रलाप : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. १५८

<sup>१७</sup> वही, पृ. १५८

अपने पेटन की फिकर में धावत लौ लीन ।<sup>१८</sup>

अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव ने समाज उच्छृंखलता और अनाचार बुरी तरह फैला दिया था । उससे कैसा परिवर्तन हुआ । इसे प्रकट करने के लिए प्रेमघन ने तब और 'अब' का एक तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—

यज्ञ धूम सो द्वित सदन, प्रगटित चिन्ह उदोत ।  
 चूना कलई तहँ भई, छेडै कसबी तान ।  
 तलबन की घुटकन सुनत जात दियो नहिं कान ।  
 मद्यपान सों मूर्छित चुहकत सवै सिंगार ।  
 हा हा भारत की करी दशा कनव करतार ॥  
 जहँ हम संध्या श्राद्ध अरु तरपन पूजन कीन ।  
 तहाँ रोज ककरम करते ये पशु पाप प्रवीन ।<sup>१९</sup>

“सामाजिक संगीत” में प्रेमघन ने अंग्रेजी की शिक्षा सभ्यता विचारों में खान-पान, भेषभूषा का अनुकरण भारतीय लोग कर रहे थे । उनके प्रति खिल्ली उड़ाई —

“ सो है न तोके पतूलवर सांवर गोरवा ।  
 कोट, बूट, जाकट, कमीज, क्यों पहिनि बनै बैबून सांवर गोरवा ।  
 काली सूरत का कपड़ा , देत किये रंग दून सांवर गोरवा ।  
 चूसत चुरुट लाख पर लांगत पान बिना मुँह सून सांवर गोरवा ।<sup>२०</sup>

प्रेमघन के समय में अनेक सामाजिक समस्याएँ उभर रही थीं । जैसे— अनमेल विवाह, बालविवाह और बाला वृद्धा विवाह आदिसामाजिक कुप्रथा पनप रही थी और हिन्दू समाज में नारी दशा से भलीभाँति परिचित थे । समाज में नारियों के अपमान को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे । प्रेमघन ने सम्मान के

<sup>१८</sup> वही,

<sup>१९</sup> वही, पृ. १६२

<sup>२०</sup> सामाजिक संगीत : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. ५३१

लिए—स्त्रियों की कीर्ति की रचना की जिनमें भारत की ऐसी गौरवशाली नारियों का उल्लेख हुआ जो अपने—अपने क्षेत्र में आदर्श रह चुकी थीं । ऐसी गौरवशालिनी नारियों के सम्मुख नतमस्तक होता है ।

लज्जा, दया, धर्म, पति सेवा रत सब सहज सुभाय ।

बन्दनीय ते सुमुखि प्रेमघन सब को सीस नवाय ॥<sup>२१</sup>

प्रेमघन सामाजिक दृष्टि से जातीयता और उसकी गौरवशाली परम्पराओं में विश्वास था । प्रत्येक क्षेत्र में उसकी रक्षा चाहते थे । समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के विरोधी भी थे । वे समाज में प्रचलित अंधपरिपाटियों को लज्जाजनक बताते हुए लिखते हैं—

प्रचलित हाय अन्ध परिपाटी पर तुम चलते जाते ।

आर्यवंश को लज्जित करते हुए भी नहीं लजाते ॥<sup>२२</sup>

प्रेमघन के समय में हिन्दू धर्म और समाज विपत्तियों से घिरा हुआ था । विधर्मी और विजातीय लोग उसकी परम्परा और मान्यताओं को तसह—नहस करना चाहते थे । सुधार के नाम पर यहाँ के नवोदित समाज भी बहुत कुछ ऐसा ही कर रहे थे ।

“ हमारे धार्मिक सामाजिक, व्यावहारिक संशोधन ” निबन्ध में प्रेमघन ने ईसाई, मुसाई यवन तथा ब्राह्म समाजी , आर्य समाजी और अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव से विकृत मस्तिष्क वाले साहबों को भी वे नकली अंग्रेज और आधा शत्रु मानते थे क्योंकि विधर्मी एवं विजातीय लोग तो केवल धर्म ही पर आघात करते थे । परन्तु ब्राह्म समाजी और आर्य समाजी हिन्दू समाज आचार, विचार, व्यवहार व जातीय संस्कार आदि को समूल ही नष्ट किये जला रहे थे ।<sup>२३</sup>

<sup>२१</sup> स्त्रियों की कीर्ति : वही, पृ. ६४६

<sup>२२</sup> आनन्द अरुणोदय : वही, ३६४

<sup>२३</sup> हमारे धार्मिक सामाजिक या व्यावहारिक संशोधन : प्रेम सर्व. भाग—२, पृ. २१२

प्रेमघन के युग में समाज —सुधारकों की ओर से नारी स्वातंत्र्य, विधवा विवाह, तलाक, बाल विवाह में वय कम कर देने जैसे अनेक प्रस्ताव थे । प्रेमघन इनमें से अनेक बातों को निर्मूल व प्रस्तावकों के विकृत मस्तिष्क का परिणाम मानते थे । पर समाज के अनेक आवश्यक सुधारों के पक्ष में थे । धार्मिक, सामाजिक मामलों में सामान्यतः वे नहीं चाहते थे कि राज नियमों का हस्तक्षेप हो, परन्तु ऐसी स्थिति में उसे आवश्यक समझते थे जबकि समाज के लोग स्वयं अपने दूषणों को दूर करने का प्रयत्न न करे । एक स्थान पर प्रेमघन लिखते हैं—

“ हम लोग कदापि स्वप्न में भी नहीं चाहते कि अपने धार्मिक सामाजिक विषय में भी राजनियम के वश में हो परन्तु उसी भाँति यह भी कोई मेधावी जैसे चाहेगा कि चाहे कुरीति और कुप्रबन्ध से समाज व जाति का सर्वनाश हो जाय, परन्तु राजनियम द्वारा कदाचित् सुधार न हो । अवश्य ही यदि समाज में इतनी शक्ति का योग्यता नहीं है कि वह कुरीतियों को दूर करने की स्वयम् ! कुछ भी चेष्टा करे तो राजनियम द्वारा भी सुधार न होकर कुरीति और कुप्रबन्ध से निरन्तर हानि पाकर किसी जाति वा समाज का अधःपतन कैसे कुछ दुर्भाग्य का कारण है ।”<sup>२४</sup>

‘प्रेमघन’ समाज में व्याप्त कुरीतियों के सुधार के पक्ष में थे । विवाह में कुण्डली मेल व जाति प्रथा तथा खानदान के महत्व देनेवाले अंधविश्वासों के प्रति करारा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं— “ परन्तु चाहे जिस तरह का व्याह हो ख्याल प्रायः दोई बातों का रहता है, एक तो पंडित जी की कुण्डली के विधि के मिलने का, अर्थात् चाहे अंधा, काना, कुबड़ा, लूला, लंगड़ा, काला, कुरूप, मूर्ख, दुष्ट, क्या सर्वोदोषयुक्त क्यों न हो कुण्डली की विधि मिलने से लक्ष्मी—समानरूप गुण

<sup>२४</sup> वही, पृ. २२३

सम्पन्न का कन्या का व्याह करी देवेंगे । जाति और खानदान अच्छा हो चाहे वह खाने बिन मरता वा कैसा ही फाके मस्त हो इस पर कुछ ध्यान न देवेंगे । निदान नीच से भी नीच, वा संसार भर की दुष्टता क्यों न करता हो, विद्या के नाम अक्षर भी न जानता हो पर तो भी सरस्वती सी पंडिता और बड़े बाप की बेटी उसे व्याह देंगे परन्तु गणना करना का बैठ जाना उसमें आवश्यक है ।<sup>२५</sup>

प्रेमघन विधवा विवाह के पक्षपाती थे। उन्होंने शास्त्रसम्मत भी किया । समाज सुधारकों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है उन्होंने परोपकारी कार्यों का प्रयत्न किया ।

### धार्मिक दुर्दशा तथा उसका समाधान :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के समय के पहले ही से भारत एक धर्म परायण देश रहा है । यहाँ पर धर्म को लोक कल्याण तथा मोक्ष का ही प्रदाता समझा गया है । भारत देश में वैयक्तिक जीवन सामाजिक आदर्श, राजनीतिक नियम, शिल्प कला, मूर्तिकला, संगीत, साहित्य आदि असम्बद्ध रूप से विकसित नहीं हुए । इन सभी के मूल में धार्मिक चेतना विद्यमान है । भक्तिकालीन साहित्य में भक्ति भावना की प्रधानता रही है । भारतीय शिल्पकला का आदर्श मठों और मन्दिरों के सुन्दर निर्माण में मूर्तिकला का आदर्श, देवी—देवताओं एवं धर्म नेताओं छवि अंकन में चित्रकला की सुन्दरता सजावट दैत्यों, गुफाओं देवी—देवताओं ओर महात्माओं के चित्र में नृत्य कला का आदर्श पार्वती के लारच शिव के तांडव में दृष्टिगत होता है ।<sup>२६</sup>

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का समय धार्मिक दृष्टि से आन्दोलन युग था । उनकी कविताओं में इस विषय का अनेक स्थानों पर समावेश देखने में

<sup>२५</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. ५ से १७२

<sup>२६</sup> विधवा विपत्ति वर्षा : प्रे. सर्व., भाग-२, १८६-१८७

आया है, अधिकतर पितर—प्रलाप— आनन्द अरुणोदय 'हार्दिक हर्षादर्श' की कविताओं में धार्मिक दृष्टि से उस युग की यही स्थिति थी कि हिन्दू धर्म निरन्तर हासोन्मुख हो रहा था । देश में नये—नये धर्म समाजों का उदय हो चुका था, इसाई धर्म प्रचारक स्वधर्म प्रचार में संलग्न थे ।

प्रेमघन ने अपनी कविताओं में तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला है । प्रेमघन की दृष्टि हिन्दू धर्म सनातन धर्म पर केन्द्रित रही है । उन्होंने उसके हास पर विस्तार से रोशनी डाली है तथा इसी संदर्भ में अपने युग के अन्य धार्मिक प्रयत्नों का भी जहाँ—तहाँ उल्लेख किया है, देश की दुर्दशा का मुख्य कारण सत्य धर्म का विनाश मानते हुए लिखते हैं—

“सत्य धर्म के नासत गयों बल विक्रम साहस ।

विद्या बुद्धि विवेक विचाराचार रह्यो जस ॥<sup>२७</sup>

प्राचीन काल से हिन्दुओं की समाज व्यवस्था धर्माश्रित रही है । उसके खण्डित होने के साथ उसकी वर्ण व्यवस्था भी विश्रृंखलित हो गयी । लोगों में दम्भ आडम्बर और अनाचार इतना बढ़ गया कि वे, ईश—विमुख हो गये । धर्म तत्त्व से शून्य लोभ—लिप्त तथा धर्म की आड़ में स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे, इसी प्रवृत्ति के वशीभूत वे संतोष, क्षमा, दमादि धर्मों की उपेक्षा कर रहे थे—जिन्हें हिन्दू धर्मानुसार बहुत महत्व दिया गया । इसी प्रेमघन का धर्माचरण उन्हीं का सा था । प्रेमघन— “आनन्द अरुणोदय’ में लिखते हैं—

वर्णाश्रम गुण कर्म स्वभाव विरुद्ध चाल चलन से ।

बड़े दीन तुम धर्म सनातन की सम्पत्ति टलने से ॥

मिथ्याडम्बर दम्भ द्रोह पाखण्ड फूट फैलाते ।

अपने मुख से अपने को सबसे उत्कृष्ट बताते ॥

धर्म तत्त्व से हुए शून्य बिना विचार—विचारे ।

<sup>२७</sup> हार्दिक हर्षादर्श : प्रेमघन सर्वस्व भाग—१, पृ. २७०

फुन्दे में फँस अल्पज्ञों के दाँव सब अपने हारे ।  
 क्षमा, सत्य, धृति, दया, शौच, अस्तेय अहिंसा त्यागी ।  
 शम, दम, तितिक्षादि, यम, नियम, विहीन विषय अनुरागी ॥  
 धर्म ओट सुख स्वार्थ साधने की है चाल लखाती ।  
 कुत्सित लाभ लोभ के कारण जो नहीं छोड़ी जाती है ॥<sup>२८</sup>

‘पितर—प्रलाप’ कविता में प्रेमघन ने कहा है— लोग दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं । दूसरों की बुद्धिहीन मानते तथा अपने को ईश्वर से कम नहीं मानते थे । उन लोगों की करनी और कथनी में बड़ा अन्तर था—

‘सीखे इक निन्दा करन सब की आठों जाम ।  
 जगत पनाल को बनो देत जासु मुख काम ॥’  
 अपनी दुच्छी बुद्धि सो जगत तुच्छ जिन कीन ।  
 अपने दुष्ट प्रलाप सों कहे सबहि मति हीन ॥  
 केवल कहिबे को बने दम्भ धारमिक नीच ।  
 करनी कछु नहीं देत जग सच्छा की स्पीच ॥  
 कितने पानी खल बने फिरै ब्रह्म खुद आप ।  
 कोऊ अब चाहत बने स्वयं ब्रह्म आप ॥

X X X

ए ईश्वर के कोप के अनल जलत दिन रैन ।  
 निज प्रभु सों है बिमुख ए पावै नेक न चैन ॥

प्रेमघन ने उस समय में उत्पन्न होने वाले नये नये समाजों पर भी आक्षेप किया । उन्होंने धर्मगुरु ब्राह्मणों और गोस्वामियों की अच्छी खबर ली है वे दुराचारी, अज्ञानी और निकम्मे हो चुके थे । ब्राह्मणों की हीन दशा के सम्बन्ध में

<sup>२८</sup> आनन्द अरुणोदय, वही, भाग—१, पृ. ३६४



प्रेमघन ने अपनी कविता 'पितर प्रलाप' में विस्तार से लिखा है । प्रेमघन उनके आचरण के बारे में लिखते हैं—

“ वैरागी गोस्वामी सब राखै द्वै द्वै रांड ।

निज चेली सुरभीन के हित तासै मानों सांड ॥”<sup>२९</sup>

प्रेमघन आर्य जाति के उदय के लिए सनातन धर्म से प्रार्थना करते हैं—

“आर्य जाति का हो अभ्युदय भूमि भारत पर ।

सत्य सनातन धर्म अटल हो अन्नत होकर ॥”<sup>३०</sup>

### राजनीतिक दुर्दशा तथा उसका समाधान :

सन् १८५७ के इतिहास प्रसिद्ध विद्रोह के समय प्रेमघन दो वर्ष के थे । यह मुगल साम्राज्य के ह्रास और ईस्ट इंडिया कम्पनी के उत्कर्ष का काल था । अंग्रेजी शासन काल का यह प्रारम्भिक चरण था । भारतीय जनता अंग्रेजों के द्वारा किये जा रहे शोषण को शुरू में अच्छी तरह नहीं समझ सकी । इसीलिए प्रथम चरण में भारत की जनता अंग्रेजों की प्रशंसा करती रही । बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी इससे नहीं बच सके । प्रेमघन ने अनेक प्रकार से अंग्रेजी राज्य के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित किया है । प्रेमघन के समय में वातावरण ही कुछ ऐसा था । खुलकर अंग्रेजों की बुराई नहीं की जा सकती थी । इस समय के लेखक एक ओर अंग्रेजों की चापलूसी कर रहे थे । दूसरी ओर दबी जबान में अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे—

“ नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी' धरि हरषाई ।

निज व्यापारी प्रजनन जोरी मंडली बनाई ॥

पठयो तिहि व्यापार करन के हित भारत ।

इतने ही में धन्य मानि उन लियो आप कहैं ॥”<sup>३१</sup>

<sup>२९</sup> पितर प्रलाप : प्रेम सर्व. भाग—१, पृ. १६२

<sup>३०</sup> आनन्द अरुणोदय, वही, पृ. १५८

<sup>३१</sup> वही, पृ. २८९

प्रेमघन के समय में अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक स्तर पर शोषण किया जा रहा था । इसलिए प्रेमघन ने लिखा है—

पै दुःख अतिभारी इक यह जो बाढ़त दीनता ।

भारत में सम्पत्ति की दिन हो छीनता ॥<sup>३२</sup>

‘हार्दिक हर्षादर्श’ कविता में प्रेमघन ने भारतेन्दु की भाँति देश की राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों का निरूपण किया। महारानी विक्टोरिया की । ‘हीरक जुबली’ के अवसर पर लिखी गयी कविता में भारत की बिगड़ती हुई दशा का चित्र प्रस्तुत किया है—

भयो भूमि भारत मैं महा भयंकर भारत ।

भये बीरबल सकल सुभट एकहिं संग गारत ॥

बिगरो जन समुदाय बिना पथ दर्शक पण्डित ।

नये नये मत चले नये झगरे नित बाढ़े ।

नये नये दुख परे सीस भारत पै गाढ़े ॥<sup>३३</sup>

प्रेमघन की ‘मंगलाशा’ कविता द्वारा दादा भाई नौरोजी को काले कहे जाने पर प्रेमघन ने विचार प्रकट किये—

अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजते कारे ।

तासों कारे ‘कारे’ शब्दहु पर है वारे ॥

कारे काम, राम, जलधर जल बरसन वारे ।

कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे ।

यहै असीस दैत तुम कहँ मिल हम सब कारे ।

सफल होंहि मन के सबही संकल्प तुमारे ॥<sup>३४</sup>

<sup>३२</sup> वही, पृ. २७०

<sup>३३</sup> हार्दिक हर्षादर्श : प्रेम. सर्व., भाग—१, पृ. २७६

<sup>३४</sup> मंगलाशा, प्रेम. सर्व. भाग-१, पृ. २५२

‘ होली राग काफी’ कविता में भी हम भारत की दुर्दशा का चित्र कर पाते हैं—

मची है भारत में कैसी होली, सब अनीति गति होली ।

पै प्रमाद मदिरा अधिकारी, लाज सरम सब घोली ॥<sup>३५</sup>

‘आर्याभिनन्दन’ कविता में प्रेमघन ने राजभक्ति की भावना स्पष्ट की है जो एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक पर लिखी गयी , युग राज अलवर्ट ने भारत के शुभागमन पर भी कुछ पद लिखे जिसमें भारत की रीति नीति पर दुःख प्रकट किया—

ठेठ विदेशी ठाट बाअ बनयो देस विदेस ।

सपनेहुँ जिनमें कहूँ भारतीयता लेस ॥<sup>३६</sup>

प्रेमघन के समय में इस विषय के अनेक नाटक लिखे गये । सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही अपने ‘ भारत दुर्दशा’ नामक नाटक में इसे अभिव्यक्ति प्रदान की थी । भारतेन्दु देश की दुर्दशा ही देख सके थे । अतः उक्त नाटक में देश की दुर्दशा का चित्रण प्रस्तुत किया है । इनके अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र का ‘ भारत दुर्दशा रूपक’ दुर्गादत्त का ‘वर्तमान दशा’ खड्ग बहादुरमल्ल का ‘भारत आरत’ आदि इसी विषय के नाटक हैं ।

प्रेमघन ने राजनीति से सम्बन्धित एक बड़ा नाटक ‘ भारत सौभाग्य’ और अनेक प्रहसन— ‘आर्या किसकी भार्या’ जुबिली जमघट या यारों के ठट्ट, पशु प्रपंच, ‘कुट्टी और जुट्टी पंडित मुंशी और महाजन’ आदि लिखे ।

प्रेमघन ने ‘भारत सौभाग्य’ नाटक को ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटक कहा है—‘ भारत सौभाग्य’ नाटक में प्रेमघन ने देश के भविष्य के सम्बन्ध में सौभाग्य की आशा व्यक्त की है इसमें १८५७ के विद्रोह और उससे कुछ पूर्व की

<sup>३५</sup> होली राग काफी, वही, पृ. ४

<sup>३६</sup> आर्याभिनन्दन, वही, पृ. ३७४

घटनाओं और उनके परिणामों को नाटकीय रूप दिया गया है। इसमें देश की बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में प्रेमघन का राजनीति दृष्टिकोण भलीभाँति प्रकट हो सका है। शुरू में अंग्रेजी राज्य के प्रति आशा और उसकी प्रशंसा, तदनन्तर उसके प्रति निराशा और फिर 'इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से देश के उद्धार' की आशा व्यक्त की गयी है।

'भारत सौभाग्य' के सूत्रधार एवं नटी के सम्बोधित गान से देश हित की कामना प्रकट होती है—

‘मंगल करै ईस भारत को सकल अमंगल बेगि बहाय ।

आलस निद्रा सों उठि जागै भारतवासी धाय ।

एक सुमति कला विद्या बल तेज स्वत्ज निज पाय ।

उद्यम पगे धरम रत उन्नति देश करै चित चाय ।

दुःख कलंक धोय देवे फिर वे ही दिन दिखलाय ॥<sup>37</sup>

'नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा' नामक निबन्ध में प्रेमघन ने नेशनल कांग्रेस के माध्यम से देश के उद्धार की बातें कहीं हैं। एक स्थान पर एकत्रित होते ही दोनों दल मातृ-स्नेह के उद्गार और देशोद्गार उत्कण्ठ के वशवर्ती हो पारस्परिक द्रोह दुराग्रह को मूल अवश्य ही दूध चीनी से मिलकर सामाजिक एकता के स्वाद को बढ़ायेंगे। किन्तु शोक से यही कहना पड़ता है कि उन्होंने प्रेम की चीनी के स्थान पर प्रमाद का नीबू उस ऐक्य को पाड़कर काँजी बना डाला।<sup>38</sup>

प्रेमघन के समय में देश में एक भयंकर दुर्गुण ने घर कर लिया था। लोगों में गोरे साहबों के अंधानुकरण की प्रवृत्ति विशेष प्रबल हो चली गयी थी। यह आर्थिक दृष्टि से बहुत घातक थी इससे खर्चे बहुत होने लगा और देश के

<sup>37</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ.सं. २२७-२२८

<sup>38</sup> नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा : प्रे. सर्व., भाग-२, पृ.सं. ३०७

उपयोग की वस्तुएँ विदेशी होती थी। प्रेमघन पश्चिमी सभ्यता को वेश्यावृत्तिधारिणी समझते थे क्योंकि वह दुनियाँ से अर्थ संग्रह कर श्रीमती बन रही थी । जैसे—वास्तव में पश्चिमी सभ्यता अभी बाल्य और तृतीय नायिका या वेश्यावृत्तिधारिणी है क्योंकि वह संसार के सामान्य जन समुदाय से अपना अर्थ संग्रह कर श्रीमती बन जाती है ।<sup>३९</sup> हमारे देश का माल विदेश चला जा रहा था उपयोगी से उपयोगी वस्तुओं को भी नहीं खरीद सकते थे फलतः हमारे देश के उत्पादन को बड़ा धक्का लगा ।

प्रेमघन ने अपने निबन्ध में 'पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार' में लिखा है— यद्यपि पुरानी सब वस्तुओं का तिरस्कार और नवीन का सत्कार सहज स्वाभाविक है, किन्तु बीसवीं सदी में तो मानो मेदिनी को पुरानी मूढ़ता से शून्य कर देने ही पर तत्पर है क्योंकि संसार में न केवल विदेशी वस्तु और मनुष्यों ही के बहिष्कार क्रम बढ़ता जाता है, बल्कि बहुतेरी बहुत दिनों से बरती जाती स्वकीय अत्यावश्यक वस्तुओं का भी बहिष्कार आरम्भ हो चला और उसके स्थान पर अनेक परकीय नवीन ओछी और निकम्मी चलन का प्रचार बढ़ता गया है बल्कि सच पूछिये तो मानो लोगों ने सिरों पर बेतरह इसका शौक व भूत सा सवार हो चला है ।<sup>४०</sup>

### हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम :

राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न अंगों में अपने देश की भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है । मातृभूमि के समान ही मातृभाषा का प्रेम प्रत्येक देशभक्त के हृदय में हिलोर लेता है और उसका निरादर और अवहेलना के प्रति सहज ही रोष चेतना जागृत होती है । प्रेमघन के समय के कवियों में हम देखते हैं कि अधिकांश ब्रजभाषा के कवि हैं किन्तु सबका राष्ट्रभाषा हिन्दी उन्नति प्रसार और प्रचार की ओर लक्ष्य

<sup>३९</sup> पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार, प्रेम. सर्व., भाग-२, पृ. २५९

<sup>४०</sup> पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार, प्रेम. सर्व., भाग-२, पृ. २५६

रहा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों ने राष्ट्र के नेताओं के साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने व देखने की कामना की और उसके प्रति प्रयत्नशील भी रहे । इसीलिए इस युग के प्रत्येक कवि एवं पत्रकार ने हिन्दी की महिमा तथा उर्दू-फारसी अंग्रेजी का मजाक उड़ता देश प्रेम का अंग समझा ।<sup>४१</sup>

भारतेन्दु जी ने तो देश की सब प्रकार की उन्नति का कारण भाषा को ही माना है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।

बिन जिन भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥

‘आनन्द बधाई’ कविता में ‘प्रेमघन’ ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अपना प्रेम और उद्गार प्रकट किया और उर्दू भाषा पर व्यंग्य भरे उद्गार प्रकट किये । कचहरी ‘ उर्दू भाषा का’ हिन्दी की उन्नति पर अधीर होते देखा गया—

पुरबत सो बीच कचहरी उर्दू बीबी ।

बैठी ऐंठी करत अजहूँ सौ सो विधि सीसी ।

लखि आवत नागरी नागरी वरन वरन तक ।

नाम सकौरत, भौहँ मरोरति औचकहिं चकि ॥<sup>४२</sup>

उर्दू भाषा की हँसी उड़ाते समय प्रेमघन ने लिखा है—

निज भाषा को ‘सबद’ लिखो पढ़ि जात न जायै ।

पर भाषा को कहौ पढ़े कैसे कोऊ तामै,

लिख्यो हकीम औषधी में ‘आलू बोखारा’ ।

उल्लू बनो मौलवी पढ़ि ‘ उल्लू बेचारा’ ।

साहिब ‘किस्ती’ चही पढ़ाई मुनसी कसबी ।

<sup>४१</sup> आनन्द बधाई : प्रेम सर्व., भाग-१, पृ. ३१४

<sup>४२</sup> आनन्द बधाई : प्रे. सर्व., भाग-१, पृ. ३१४

नमक पठायो भई 'तमस्सुक' की जब तलबी ॥  
 पढ़त 'सुनार' 'सितार' 'किताब' कबाब, बनावत,  
 'दुआ देतहूँ,' 'दगा' देन का दोष लगावत ।  
 मेम साहब 'बड़े बड़े मोती चाह्यो जब,  
 बड़ी—बड़ी मूली—पठवायी तसिल्दार तब ॥<sup>४३</sup>

प्रेमघन ने हिन्दी भाषा अथवा निज भाषा के ज्ञान को महत्त्व देते हुए लिखा है—

निज भाषा को ज्ञान जिन्हें नाहिं उन सों बेसी ।  
 निज आचार विचार धरम को मरम न जाने ॥

X X X

जो प्रधान भाषा भारत की आदि समय मन ।  
 दुहूँ लोक हित जो भारतियन को जीवन धन ॥<sup>४४</sup>

'नागरी भाषा' में प्रेमघन ने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भाषा के विभिन्न रूपों के अन्तर को स्पष्ट किया है और राष्ट्र भाषा के रूप में नागरी भाषा को ही महत्त्व दिया है ।

#### उद्बोधन तथा आह्वान :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने स्व-रचित साहित्य द्वारा भारतीय जनता के उद्बोधन का प्रयास किया ।

'होली—राग काफी' में प्रेमघन ने शासक वर्ग द्वारा किये गये अन्य यामक कृत्यों का उल्लेख करने में बिल्कुल भी नहीं हिचकिचाए' ओर जनता द्वारा किये जा रहे आन्दोलनों का स्वागत करते रहे ऐसा उनकी प्रायः सभी राजभक्ति विषयक

<sup>४३</sup> वही, पृ. ३०५

<sup>४४</sup> आनन्द वषाई, प्रेम.सर्व., भाग—१, पृ. ३१३

रचनाओं तथा, चरखे की चमत्कारी' होली राग काफी आदि कविताओं का स्वागत करते हुए लिखते हैं—

ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों आता स्वराज्य नियरात ।

परतंत्रता दीनता भागी जाती खाती लात ॥<sup>४५</sup>

प्रेमघन जी ने अधिकारी वर्ग के अनाचार और गाँधी प्रवर्तित असहयोग व स्वराज्य आन्दोलनों के प्रति अपनी भावना को व्यक्त किया है —

“ मची है भारत में कैसी होली सब अनीति गति होली ।

पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब धोली ।

निज दुःख व्यथा कथा नहिं कहिबे पावत कोई मुँह खोली ।

लगे कुमकुमा बम को छूटन पिचकारिन सों गोली ।

चले स्वराज्य राह तकि तजिह भय, सकील विघ्न तृण छोली ।

विजय पताका लै महातमा गाँधी घर—घर डोली ॥<sup>४६</sup>

देश—प्रेम की भावना को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हुए प्रेमघन ने जातीय गीत 'स्वदेश दशा' में 'चेतावनी' कविता में लिखा है—

“चेतो हे हे बाभन भाई ! सुधि बुधि काहे रहे गँवाय ।

तुमरेई पुरखे मनु, पाणिनि, भृगु कणाद मुनिराय ।

व्यास, पतञ्जलि, याज्ञवल्क्य गुरु, गये शास्त्र जे गाय ॥<sup>४७</sup>

‘आशीर्वाद’ कविता में प्रेमघन ने भारतीय जनता की पराजित मानसिकता का उद्बोधन करते हुए कहा है—

मंगल करै ईस भारत को सकल अमंगल बेगि बहाय ।

आलस्य निद्रा सों उठि जागै भारतवासी धाय ॥

<sup>४५</sup> चरखे की चमत्कारी : प्रे. सर्व., भाग—१, ६४८

<sup>४६</sup> होली राग काफी : प्रे. सर्व., भाग—१, पृ. ६४९—६५०

<sup>४७</sup> चेतावनी, वही, पृ. ५३८



दुःख कलंक धोय देवै फिरि वेही दिन दिखलाय ॥<sup>४८</sup>

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि में भारत की पराजित मानसिकता का प्रधान कारण आलस्यपूर्ण व्यवहार है । उन्होंने भारत को समग्रता में समझा । वह भारत की सांस्कृतिक सम्पन्नता तथा आर्थिक विपन्नता को साथ मिलाकर देखने के पक्ष में थे । उन्होंने आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली धार्मिक प्रवृत्तियों की निन्दा की तथा अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण, अनाचार, अमानवीय व्यवहार, कठोरता आदि के प्रति भारतीय जनता को सचेत किया ।

प्रेमघन ने अनुभव किया कि सच्चा जागरण अपनी भाषा के प्रयोग से ही सम्भव है । अपने सांस्कृतिक गौरव की रक्षा हेतु अपनी भाषा का प्रयोग आवश्यक है । किसी भी जनता को प्रभावित करना अनिवार्य है कि उसी भाषा में सम्पर्क किया जाता है । विदेशी भाषा जन सामान्य को प्रभावित नहीं कर सकती । इसीलिए प्रेमघन ने अपनी निजी भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु उद्बोधन करते हुए ' भारतीय नागरी भाषा ' में कहा है—

१. निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जायै ।

पर भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोउ तामै ॥<sup>४९</sup>

२. हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।

लै पैठारे बीच कचहरी बिना बिचारहिं ॥<sup>५०</sup>

३. पढ़त छाँड़ि हिन्दी भाषा भूषित देवाच्छर ।

सुगम , सपठ, सुन्दर सब गुन के आगर ॥

४. अंगोजिहू के संग देश भाषा ने नाते ।

<sup>४८</sup> आशीर्वाद, वही, पृ. ५४१

<sup>४९</sup> आनन्द वषाई : प्रेम.सर्व. भाग-१, पृ. ३०५

<sup>५०</sup> वही, पृ. ३०३

उरदुहि अधिक पढ़त जन सेवा हित ललचाते ॥

‘हार्दिक हर्षादर्श’ कविता में प्रेमघन ने देश की तत्कालीन दुरवस्था का यथार्थ चित्र तथा अंग्रेजी शासन नीति पर विस्तार से प्रकाश डाला है । देश के विभिन्न सुधारों के सम्बन्ध विक्टोरिया—शासन काल की भूरि—भूरि प्रशंसा की । साथ ही देश की दुर्दशा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है । देश कल्याण की कामना करते हुए लिखते हैं—

करहु आज सों राज आप केवल भारत हित ।

केवल भारत के हित—साधन में दीनै चित ॥

उमड़ै भारत में सुख, सम्पत्ति, धन विद्या, बल ।

धर्म, सुनीति, सुमित, उछाह व्यापारा ज्ञान भल ॥

तेरे सुखद राजत की कीरति रहै अटल इत ।

धर्म, राज, रघु, राम प्रजा हिय मैं जिमि अंकित ॥<sup>५९</sup>

प्रेमघन ने ‘टिक्कस’ नामक कविता में अंग्रेजी राज्य में ‘करों’ (Tax) में वृद्धि हुई जिसकी जनता में भारी असंतोष व्याप्त होगा । टिक्कस पर टिक्कस लगाये जा रहे थे उससे भारतीय निर्धन जनता की कमर तोड़ दी । प्रेमघन लिखते हैं—

टिक्कस नाग तापै डंस्यो, एक एक को होय ।

कैसे बचै न पास जब शक्ति औषधि होय ॥

फस्त तिजारत की लगी, वद्ध डोर कानून ।

द्रव्यहीन तासों भये, ए पागल मजमून ॥

प्रेमघन ने जनता के उद्बोधन के लिए व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया । इस शैली में ‘पितर प्रलाप’ कविता लिखी तथा भारतीय जनता को अंग्रेजों द्वारा

<sup>51</sup> हार्दिक हर्षादर्श, प्रे. सर्व., भाग १, पृ. ६४७

किये गये शोषण से अवगत कराया । प्रेमघन के समय में आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि विभिन्न संस्थाएँ देश की रूढ़ियों अंधविश्वासों आदि से मुक्त कराने के दिशा में सक्रिय थी । देश को उन्नति के मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न किया । बाल विवाह, बहुजातित्व, साम्प्रदायिक भेदभाव तथा वर्णव्यवस्था से उत्पन्न विसंगतियों का उन्होंने विरोध किया ।

प्रेमघन ने 'स्त्रियों की कीर्ति' "धनि—धनि भामिनियां जिनको सुज सरह्यो जग छाये" इसका उद्देश्य स्त्रियों की दशा सुधारना है । उद्बोधन सम्बन्धी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

धन्य जवाहिर बाई, नील देवि साहस प्रगटाय ।

छत्रानी रानी गन धन्य ! धन्य पन्ना धाय ॥<sup>५२</sup>

देश की दशा सुधारने के लिए जो राजनीतिक या धर्म सम्बन्धी आन्दोलन चलते रहे, उन्हें ये बड़ी उत्कण्ठा से परखा करते थे जब कहीं सफलता दिखाई पड़ती व लेखें और कविताओं द्वारा हर्ष प्रकट करते और जब बुरे लक्षण दिखाई देते तब क्षोभ और खिन्नता कांग्रेस के अधिवेशन में ये प्रायः जाते थे । 'हीरक, जुबिली, आदि कविताओं खुशामदी कविता न समझना चाहिए । उनमें ये देश दशा का सिंहावलोकन करते थे और मार्मिकता के साथ ।"

'हीरक जुबिली' के अवसर पर लिखे 'हार्दिक हर्षादर्श' में देश की दशा का वर्णन है—

भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत ।

भये बीरबल सकल सुभट एकहिं संग गारत ।

मरे विबुध नरनाह, सकल चातुर गुन मण्डित ।

बिगरो जन समुदाय बिना पथ दर्शक पण्डित ॥

<sup>52</sup> स्त्रियों : प्रे.सर्व. , भाग—१, पृ. ६४७

‘भारत सौभाग्य’ नाटक चाहे खेलने योग्य न हो, पर देश दशा पर कैसा बड़ा अनूठा और मनोरंजक नाटक दूसरा नहीं लिखा गया । उसके प्रारम्भ के छन्द सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा इन तीनों देवियों के मुह से विदा होते समय जो कवितायें कहलाई गयी हैं वे भी बड़ी मार्मिक हैं । हंसारूढ़ा सरस्वती के चले जाने पर दुर्गा कहती हैं—

आजु लौ रही अनेक भाँति धारिकै ।

पै न भाव मोहि बैठनो सु मौन मारिकै ।

जाति हौं चली वही सरस्वती गई जहाँ ॥

उनकी कविताओं में चमत्कार—प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती । अधिकांश कविताएँ ऐसी ही हैं ।

अध्याय—पाँच

युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में  
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों

धार्मिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, साहित्यिक परिप्रेक्ष्य, आधुनिकता, प्रेस का प्रचार, यातायात के साधन, शिक्षा का पश्चिमीकरण, राष्ट्रीय नवजागरण, धार्मिक परिप्रेक्ष्य—ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थनासमाज आदि ।

## पंचम अध्याय

### युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में बदरीनारायण चौधरी

#### ‘प्रेमघन’ की कृतियाँ

पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यकार हैं । प्रस्तुत अध्याय में युगीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में बदरीनारायण ‘प्रेमघन’ की कृतियों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

#### १. धार्मिक परिप्रेक्ष्य :

प्रेमघन के समय में भारतवर्ष में धार्मिक दृष्टि से अनेक विभेद और आडम्बर फैले हुए थे । एक ओर प्राचीन सनातन धर्म विविध शाखाओं में फैला था, और दूसरी ओर विविध समाजों और सोसाइटियों के रूप में धार्मिक पुनर्जागरण के प्रयत्न हो रहे थे । शैशवाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों में फूट फैली हुई थी । प्रेमघन लिखते हैं— “ हमारे धर्म की भी शाखायें असंख्य हो गयी हैं, तब उसकी डालियों की कथा कौन कहे, आर्य धर्म के पौराणिक शाखा की एक डाली वैष्णव ही को क्या कोई बतला सकता है कि उसमें कितनी टहनियाँ फूट गई हैं और मूल मत का प्रभाव यहाँ आकर किस दशा को पहुँचाया है ?

शैव और शाक्त का बैर जाने दीजिये और वैष्णवों की चारों शाखाओं की भी चिन्ता छोड़िये क्या एक सम्प्रदाय में भी परस्पर प्रेम है ? लोग धर्म के मूल तत्त्व को भूल बैठे थे और बाह्याडम्बर को ही सर्वस्व मान बैठे थे, धर्माचरण में जड़ता आ चुकी थी धर्माधिकारी पण्डे पुरोहित दुर्व्यसनों में लिप्त थे जिनसे किसी प्रकार के मार्ग—दर्शन की आशा करना दुराशा मात्र था । प्रेमघन ने लिखा है— विरुद्ध इसके कि नाना प्रकार के नीच व्यसन, दुराचार और कृत्षित कृत्य में लीन रहते जिनके दर्शन मात्र से कठिन अश्रद्धा का उद्रेक होता । फिर जहाँ धर्माधिकारी ऐसे हैं वहाँ उनके यजमानों को इनसे धर्म विषय में क्या सहायता मिल सकती है

या श्रद्धा की वृद्धि हो सकती है समझना सहज है।'<sup>१</sup> वस्तुतः उस समय दीक्षा—गुरुओं ब्राह्मणों, पण्डों, पुजारियों और महंतों की दशा अत्यधिक चिंतनीय थी हिन्दुओं में मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का प्रचार था । 'पितर प्रलाप' नामक कविता में प्रेमघन ने हिन्दुओं की धार्मिकता और धर्माधिकारियों का तत्कालीन यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है ।'<sup>२</sup>

अंग्रेजी के साथ देश में ईसाई धर्म भी प्रवेश —प्रचार पा चुका था । राजनीति के सहारे उसे अपने प्रचार—प्रसार का विशेष अवसर मिला। वह ऐकेश्वरवादी मत था जिसमें मूर्तिपूजा को स्थान नहीं था , और समधर्मियों के बीच सामाजिक समभाव की व्यवस्था थी, अंग्रेजी पढ़े—लिखे नवयुवकों और उच्चवर्गीय हिन्दुओं से तिरस्कृत अथवा अर्थ पीड़ित निम्नवर्गीय हिन्दुओं पर उसका प्रभाव अधिक पड़ा । निम्न वर्ण हिन्दू सैकड़ों की तादाद ईसाई मत को ग्रहण करते चले जा रहे थे । इस प्रकार हिन्दू धर्मावलम्बियों का ह्रास हो रहा था । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि हिन्दुत्व की रक्षा के लिए हिन्दू धर्म के व्यावहारिक स्वरूप व हिन्दू समाज व सोसाइटियों ने जन्म लिया जिनमें ब्राह्म समाज को युगानुरूप बनाया जाता ।'<sup>३</sup> इसी प्रयोजन से देश में अनेक समाज व सोसाइटियों ने जन्म लिया जिसमें ब्रह्म समाज, वेद समाज, प्रार्थना समाज, देव समाज, आर्य समाज और थेआसाफिकल सोसायटी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय । यहाँ यह कहना आवश्यक है कि ये समाज अपने लक्ष्य में अग्रसर होते हुए भी जन सामान्य की वस्तु नहीं बनसके बल्कि अपनी ही परिधि में सीमित रहे । अतएव हिन्दू समाज का व्यापक रूप से कल्याण करने में समर्थ

<sup>१</sup> हमारे धार्मिक सामाजिक व व्यावहारिक संशोधन : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, पृ. २२२—२२३ प्रकाश हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

<sup>२</sup> 'पितर प्रलाप' प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, पृ. १५१—१६३

<sup>३</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व संस्करण, १९७६, पृ. ४०

न हो सके । प्रेमघन ने उनके कार्यों की आलोचना करते हुए लिखा है—“ कुछ दिनों से उन्हीं पश्चिमीय विद्याविशारदों अथवा उन्हीं के संतोषार्थ कई नवीन समाज भी गठित हुए हैं जैसे ब्रह्मसमाज केवल धर्मविश्वास विहीनों ही को अपने में मिला सके और विशेषतः धर्म ही से सम्बन्ध रख एक भिन्न धर्म समाज बनाकर सबसे पृथक् होकर प्राचीन सब दलों के विरोधी बन गये एवं जो कुछ उनमें सामाजिक संशोधन भी हुआ वह केवल उसी समाज के अन्तर्गत न कि अनेक अन्य जाति और समाज के समूह में यों ही अनेक अनर्गल व्यर्थाचरण और आन्दोलनों के कारण समस्त अन्य समूह से घृणास्पद और निन्द्य मान गये ।”<sup>४</sup>

यों ही जब तक उसके नेता व मूल संस्थापक जीते रहे, कुछ-कुछ कोलाहल और कार्य कर सकें, परन्तु उनके पीछे वह भी विशेष संज्ञा समान सामान्य समूह मात्र रह गये और जैसे भारत में सहस्रों मत के लोग थे ।

पूर्वोक्त में से आर्य समाज का अधिक प्रचार हुआ । वह भारतीय वैदिक धर्म पर आश्रित था । स्वामी दयानन्द ने वेदों की, जन भाषा में व्याख्या कर उन्हें सर्वजन-सुलभ बनाया । धार्मिक दृष्टिकोण से उनके समाज में ऊँच-नीच एवं छुआछूत का कोई भेदभाव नहीं था । उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार व बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा का खण्डन किया था । आर्य समाज का ‘शुद्धि’ आन्दोलन एक महत्वपूर्ण कार्य था जिससे धर्म परिवर्तन हुए, बहुत से हिन्दू पुनः हिन्दू बन सके थे इस दृष्टि से उसका कार्य नितांत युगानुरूप था ।

#### सामाजिक परिप्रेक्ष्य :

पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन “ भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख साहित्यकार हैं उनके समय पहले से ही भारत सदा से धर्म व सामाजिक व्यवस्था एवं

<sup>४</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व संस्करण, १९७६, पृ.४०



आचार—व्यवहार घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । धार्मिक ह्रास के साथ हिन्दू समाज का भी ह्रास होता चला गया । प्रेमघन के समय में हिन्दू समाज में अनेक बुराइयाँ घर कर चुकी थी । जिनका समाज—रक्षा के लिए नवीन परिस्थितियों में निराकरण बहुत आवश्यक था । इन बुराइयों को दूर करने में सरकार, पूर्वोक्त समाजों विशेषतः आर्य समाज एवं देश के अनेक जागरूक व्यक्तियों जैसे — राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

भारतवर्ष की महारानी विक्टोरिया बनी उसी के संदर्भ में प्रेमघन ने 'राजेश्वरी जयति' कविता के शुरू में लिखा है अब भारत की भूमि पर महारानी विक्टोरिया का शासन हो गया है । अब लोगों को कुछ भी परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ेगा । प्रेमघन ने महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा मातृभूमि के रूप में की है—

जै जै भारतभूमि जै भारतवासी लोग ।

जयति राजराजेश्वरी विक्टोरिया असीम ॥

अति मंगलमय राजराजेश्वरि की अभिषेक ।

मंगल श्री मंगल सुयश मंगल न्याय विवेक ॥<sup>४</sup>

पहली नवम्बर, १९५८ ई. में जनता को आश्वासन देने के लिये लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद में एक दरबार में महारानी विक्टोरिया का प्रसिद्ध घोषणा—पत्र पढ़कर सुनाया । इस घोषणा पत्र में बताया गया कि कम्पनी और देशी राजाओं में जो संधियाँ समझौते हुए हैं उनका पालन किया जायेगा । देशी राजाओं को गोद लेने का अधिकार स्वीकार किया गया । जनता को आश्वस्त किया गया कि अंग्रेजी राज्य में रंग भेद न किया जायेगा । सबको समान रूप से उच्च सरकारी

---

<sup>४</sup> 'राजराजेश्वरी जयति' : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

नौकरी दी जायेगी, सरकार ने घोषणा की कि वह किसी के धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी । इसलिए भारतवासियों में राजभक्ति उमड़ आई ।

भारतीय इतिहास में १८५७ ई. की क्रांति का विशेष महत्व है । दमन, महामारी, दुर्भिक्ष, अकाल, टैक्स आदि से जनता पिसी जा रही थी । जनता की इस दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रेमघन युगीन साहित्यकारों ने किया है । हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों में सती प्रथा, शिशुहत्या, बाल—विवाह, अनमेल विवाह, जाति—पाँति का भेदभाव, छुआछूत या उच्चनीच वर्ण भेद जैसी कुरीतियाँ थी । इनमें से सती—प्रथा अंतिम साँसे ले रही थी । इस प्रथा के अनुसार हिन्दू विधवाएँ या तो स्वेच्छा से अपने पतियों के साथ जीते जी चिता में भस्म हो जाया करती थी या ऐसा करने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता था, यह एक अत्यन्त प्राचीन अमानवीय प्रथा थी जिसका प्रचार मुख्यतः बंगाल राजपूताना तथा दक्षिण भारत की विजयनगर सियासत में था, इस प्रथा को रोकने के लिए अनेक प्रयत्न होते आये थे पर अंत में लार्ड विलियम बैंटिंग के समय में ही इसे अवैध कार्य घोषित कर इस पर प्रतिबन्ध लगाया गया, इस प्रथा को रोकने में विलियम बैंटिंग के साथ राजा राममोहनराय का भी विशेष योगदान रहा था ।

शिशुहत्या की प्रथा राजपूतों में विशेषतः प्रचलित थी अनेक कारणों से राजपूत प्रायः नवजात कन्याओं की हत्या कर दिया करते थे । १७९५ ई. में ही बंगाल कानून के अधीन शिशुहत्या को हत्या घोषित कर दिया गया था फिर भी यह प्रथा प्रचलित रही । कन्याओं को अफीम देकर या गला घोटकर मार दिया जाता था । इस कुप्रथा का अंत सरकार के प्रचार एवं दृढ़ कार्यवाहियों से हुआ ।

समाज में बहुपत्नीत्व और बालविवाह की प्रथाएँ भी बहुत प्रचलित थी । राजा राममोहन राय ने बहुपत्नी विवाह तथा कुलीनता की बुराइयों के विरुद्ध अपनी आवाज उठायी थी, केशचन्द्र के प्रयत्नों से १८६२ में देशी विवाह अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार बालविवाह की प्रथा बन्द कर दी गयी

और बहुपत्नी विवाह को अपराध घोषित कर दिया गया था । इस अधिनियम के अनुसार विधवा विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह को भी स्वीकृति प्रदान कर दी गयी थी ।

प्रेमघन के समय में नारीमात्र की अवस्था शोचनीय थी, पर हिन्दू समाज में जैसी नाटकीय यातनाएँ विधवाओं को भोगनी पड़ती थी, वैसी अन्य को नहीं । प्रेमघन ने अपने एक लेख में विधवाओं की दुर्दशा का उल्लेख विधवा विपत्ति वर्षा' में चित्रित किया है— “ कोई हाथों की हड़हड़ी चूरियायें कूँच—कूँचकर चूर करती, कोई उनके अमल ललाट से सिन्दूर को दूर करती, कोई काजल और महावर धोती, और कोई —कोई सुथरे रंगीन वस्त्र छीनकर उसे मैली मिट्टी में रंगी मैली—कुचैली धोती पहनाती और कोई सिर के बालों को खोलकर उनमें धूल भरती और कहती कि तू ! कोने में मुँ छिपाये बैठी रात दिन रोया कर और अपना मुँ किसी को मत दिखाया कर ! कोई शुभ कर्म को प्रारम्भ करता हो या दिखा, तुलसी का पूजन ठाकुर जी के सेवा कर किसी मंगल कार्य को जाता हो उसे अमंगल भेष भूल कर मत दिखा और यह माला लेकर राम—राम जपाकर ।<sup>६</sup> यह एक बाल विधवा के प्रति समाज का कितना मिर्मम व्यवहार था जो अभी विवाह के आशय से भी अनभिज्ञ थी । इन सब बुराईयों से छुटकारा पाना आवश्यक था कि समाज में विधवाओं के पुनः विवाह की व्यवस्था हो । संस्कृत के महान् विद्वान् पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए प्रबल आन्दोलन किया । उन्होंने शास्त्रों के उद्धरणों से यह प्रमाणित किया कि हिन्दू शास्त्रों में विधवा—विवाह निषिद्ध नहीं है । सन् १८५६ में सरकार ने विधवा विवाह को वैध घोषित कर दिया । तत्कालीन प्राय ! सभी समाजों ने विधवा—विवाह का समर्थन किया है विशेषतः ब्रह्मसमाज, आर्य समाज द्वारा इसे

<sup>६</sup> विधवा विपत्ति वर्षा : प्रेमघन सर्वस्व, पृ. १८९ प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ । इस दशा में पं. के. कर्वे ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किये ।

जिसका उद्देश्य दलित जातियों जैसे— कहार, चमार, परहाई, नामशूद्र तथा डेढ़ आदि की समाजिक एवं आध्यात्मिक दशाओं का सुधार करना था । इस दशा में महात्मा गान्धी के कार्य अविस्मरणीय है । उन्होंने अपना बहुत सा समय हरिजन उद्धार के कार्यों में लगाया । इस प्रकार प्रेमघन के समय में हिन्दू समाज में प्रचलित अनेक कुप्रथाओं को दूर करने का अत्यधिक प्रयत्न हो रहा था । पूर्वोक्त समाजों का इस दशा में महत्वपूर्ण योग रहा, जिस प्रकार धार्मिक दृष्टि से उन्होंने सुधारात्मक कदम उठाये उसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से भी हिन्दुओं की रूढ़िप्रियता तथा समाज के प्रति उनके दायित्वहीन होने की बात को लक्ष्य करते हुए प्रेमघन ने लिखा है, “साधू लोगों की व्यवस्था वेद की नाई प्रमाणित होती है परन्तु सोच की बात है कि हमारे देश के मनुष्य तो लकीर के फकीर हो रहे हैं । इन्हें क्या मतलब कि किसी बात पर विचार करें या सोचें, समझें, या खोज करें और सत् असत् तथा भले बुरे का विवेक करें । इन्हें केवल पशुओं की तरह खाना, सोना और मर जाना मात्र आता है ।

ऐसी विषम परिस्थिति में अंग्रेजियत के झंझावत से हिन्दू : समाज के आचार—विचारादि की मर्यादा भंग रही थी समाज के उद्धार के लिए उनका एक सुझाव रहा और वह यह कि लोगों को ईमानदारी से अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिए—एक मात्र यही मार्ग श्रेयष्कर है यह सुझाव प्रस्तुत करते हुए प्रेमघन लिखते हैं—

चारों वर्ण आश्रम चारों भिन्न धर्म के भागी ।

निज—निज धर्माचरण यथाविधि करो कपट छल त्यागी ॥

किन्तु परिस्थितियाँ इतनी बदल चुकी थीं कि उनमें प्रेमघन के आदर्श का चरितार्थ होना संभव नहीं था । वैसे भी प्रेमघन जी ने हिन्दू समाज के सभी वर्गों के सम्बन्ध में लिखा है परन्तु उनमें ही उनकी दृष्टि मुख्यतः ब्राह्मणों पर रही है ।

समाज के अन्य पक्ष व समस्याएँ भी प्रेमघन को पीड़ित किये हुए थीं । उनकी सामाजिक कविताओं में तत्कालीन अनेक समस्याएँ उभर कर आई हैं यही कारण है कि उन्होंने अनमेल विवाह, बाल विवाह और बाला—वृद्धा विवाह आदि सामाजिक कुप्रथाओं पर भी पर्याप्त रूप से लिखा है । इससे उनकी व्यापक सामाजिक जागरूकता का परिचय मिलता है । हिन्दू समाज में नारी—दशा से वे भली—भँति परिचित थे । समाज में नारियों के अपमान को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे । उनके गौरव के लिए ही उन्होंने “स्त्रियों की कीर्ति” नामक गीत की रचना की थी जिसमें भारत की ऐसी प्रसिद्ध गौरवशाली नारियों की रचना की थी, जिसमें भारत की ऐसी प्रसिद्ध गौरवशाली नारियों का उल्लेख हुआ है जो अपने—अपने क्षेत्र में आदर्श रह चुकी थीं । इस गीत में कवि ऐसी गौरवशालिनी नारियों के सम्मुख नतमस्तक होता है—

“लज्जा, दया, धर्म, पति सेवा रत, सब सहज सुभाय ।

वन्दनीय ते सुमुखि प्रेमघन सब को सीस नवाय ॥”<sup>१</sup>

सामाजिक दृष्टि से प्रेमघन का जातीयता और उसकी गौरवशाली परम्पराओं में विश्वास था हर दशा में वे उसकी रक्षा चाहते थे साथ ही समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के वे घोर विरोधी थे । इससे उनके सामाजिक दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता व जागरूकता का परिचय मिलता है । निःसन्देह समाज में वे आवश्यक संशोधन चाहते थे पर उनका आमूल चूल परिवर्तन उन्हें कदापि वांछनीय नहीं था ।

<sup>१</sup> स्त्रियों की कीर्ति : प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ. ६४७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

वे समाज—प्रचलित अंधपरिपाटियों को लज्जाजनक बताते हुए प्रेमघन लिखते हैं—

प्रचलित हाय अन्ध परिपाटी पर तुम चलते जाते ।

आर्यवंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं लजाते ॥

आगे वे उसमें आवश्यक संशोधन का सुझाव देते हैं—

आवश्यक संशोधन करो न देर लगाओ ।

हुए नवीन सभ्य औरों से अपने को न हंसाओ ॥

अपनी जाति वस्तु अपने आचार देश भाषा से ।

रक्खो प्रीति रीति निज धर्म वेष पर अति ममता से ॥

### राजनीतिक परिप्रेक्ष्य :

भारत में सन् १८५७ ई. में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लगे जो सर्व प्रथम सशस्त्र क्रांति हुई उसके स्वरूप निर्धारण मत थे । अधिकांश अंग्रेज लेखकों ने इसे सिपाही विद्रोह की संज्ञा दी है किन्तु तथ्य यह है कि इस क्रांति में भारतीय सैनिक और अधिकारच्युत राजाओं एवं नवाबों के भाग लेने साथ—साथ सामान्य जनता ने भी सक्रिय सहयोग दिया । इस मात्र सैनिकों अथवा सामन्तों का विद्रोह कहना इसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा यह स्वराज और स्वधर्म का युद्ध था । आने वाले वर्षों में अत्याचारी विदेशियों के विरुद्ध यह विप्लव, भारतवासियों के लिए स्वतंत्रता संग्राम ही बन गया । अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहारों से त्रस्त भारतीय ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने हेतु धर्मगत जाति गत एवं वर्गगत भेदभावों को भूल गये । ‘सन् ५७ का स्वाधीनता संग्राम अंग्रेजों द्वाराप्रेरित सम्प्रदायवाद की सबसे बड़ी पराजय था ।’ अतः इसे राष्ट्रीय आन्दोलन अपना स्वतंत्रता संग्राम कहना उचित है ।

‘ डॉ. रामविलास शर्मा : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी जागरण, पृ. १०, प्र.सं. १९७७, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी का आरम्भिक उद्देश्य मात्र व्यापार करना था । इसलिये भारत में ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव सर्वाधिक ध्वंसात्मक था । देशी उद्योग धंधों के विनाश के लिए संगठित प्रयास किये गये । भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित कपड़े और अन्य वस्तुयें अत्यधिक चुंगी लग तजाने के कारण विदेश जाना बन्द हो गयी और ब्रिटिश मिलों द्वारा निर्मित वस्तुओं से नाममात्र की चुंगी के कारण देश के बाजार पट गये और भारतीय कारीगरों को परेशान किया गया और अंगभंग कर दिये गये । लाखों बुनकर बेकारी तथा गरीबी से भूखे मरे गये ।

उद्योग धन्धों की दुर्दशा के पश्चात जनता ने बाध्य होकर कृषि का आश्रय लिया सम्मिलित पारिवारिक प्रथा तथा व्यवसाय मूलक (श्रम विभाजन पर आधारित) जाति प्रथा के कारण खेती का ढंग पुरातन एवं साधारण होते हुए भी भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर थे । ब्रिटिश शासन में कच्चा माल प्राप्त करने के उद्देश्य से दो नवीन व्यवस्थाएं लागू की गयीं । जमींदारी प्रथा (जिसमें शासन का प्रत्येक किसान से अलग-अलग लेन-देन होता था । इसके अतिरिक्त कम्पनी कर्मचारी निजी व्यापार भी करते थे ।

क्रांति के लिए नेताओं ने ३१ मई, १८५७ ई. का दिन निश्चित किया पंडितों साधुओं और मौलवियों ने धार्मिक उपदेशों के बहाने नगर-नगर और गाँव-गाँव घूमकर जनता तक क्रांति का संदेश पहुँचा । साधु वेशधारी क्रांतिकारियों ने छावनियों के समीप मन्दिरों आदि में निवास कर सैनिकों को क्रांति के लिए प्रेरित किया । क्रांति के प्रतीक के रूप में नगरों में कमल और गांवों में चपाती घुमायी गयी गयी मन्दिरों-मस्जिदों में इस प्रयास की सफलता के लिए प्रार्थनाएँ होने लगी । चरबी वाले कारतूसों से उत्तेजित सैनिकों ने निर्धारित तिथि से पूर्व ही विद्रोह कर दिया । क्रांति यज्ञ में सर्वप्रथम आहुति बारकपुर के मंगल पाण्डे की हुई । क्रांति का वास्तविक आरम्भ १० मई, १८५७ ई. को मेरठ के सैनिकों ने किया । मेरठ ने इस क्रांतिका प्रचार दिल्ली, अवध, रूहेलखण्ड, मध्यभारत

तथा राजस्थान, पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र के कुछ भागों में हुआ । दिल्ली में बहादुरशाह को बादशाह स्वीकार कर देश की स्वाधीनता की घोषणा कर दी गयी । क्रांति के प्रमुख नेता, नाना साहब और अजीमुल्ला (कानपुर) लक्ष्मीवाई (झांसी) तात्या टोपे (कालपी) राव तुलाराम खिलाड़ी (हरियाणा) कुँवर सिंह (जगदीशपुर बिहार) बहादुर खॉ (रुहेलखण्ड) अली बहादुर (बांदा) । प्रेमघन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति अधिकांशतः उन कविताओं में हुई है जो प्रायः विशेष अवसरों के लिए लिखी गई थीं । मंगलाशा अथवा 'हार्दिक धन्यवाद, हार्दिक हर्षादर्श, आनन्द बधाई, आनन्द अरुणोदय और आर्याभिनन्दन आदि इनके अतिरिक्त 'जातीय गीत' और स्वदेश बिन्दु में भी इस विषय के अनेक गीत मिलते हैं । राष्ट्रीयता की दृष्टि से आरम्भ में उन्होंने राजनीतिक पहलुओं का बहुत कम स्पर्श किया था, क्योंकि तब अंग्रेजी शासन के बने रहने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी । यदि उसमें देश के कष्टों का निवारण हो पाता फिर राजनीतिक पक्ष का स्पर्श कर वे शासक वर्ग को व्यर्थ चिढ़ाना भी नहीं चाहते थे । क्योंकि सन् १८५७ के विद्रोह दमन की विभीषिकाओं और रोमांचकारी परिणामों का उन्हें परिचय था । आरम्भ वे विक्टोरिया की घोषणाओं के प्रति पूर्ण आशान्वित रहे किन्तु कालांतर ने सरकार की कुटिल नीतियों ने उनके आशा स्वप्नों को भंग कर दिया, अतएव आगे चलकर उनकी कविताओं में राजभक्ति के साथ-साथ क्रमशः देश की दुर्दशा और उसके कारणों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती चली गयी थी । जातीय महासभा (नेशनल कॉंग्रेस) के प्रति उनकी सद्भावना थी तथा सरकार विरोधी जन आन्दोलनों उनका समर्थन प्राप्त था । यही कारण है कि उनकी उत्तर कालीन कविताओं में इस प्रकार की चेतना प्रकट होती है । "चरखे की चमत्कारी" जैसे गीत में स्वराज्य की गूँज स्पष्टतः सुनाई देती है । प्रेमघन लिखते हैं—

ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों आता स्वराज नियरात ।



परतन्त्रता दीनता भागी जाती खाती लात ॥

चले स्वराज राज तक तजि भय, सकल विघ्न तृण छोली ।

विजय पताका से महातमा गाँधी घर—घर डोली—डोली ॥<sup>१</sup>

राजभक्ति उस समय के कवियों की एक सामान्य प्रवृत्ति थी, इसलिए वह न केवल प्रेमघन में ही बल्कि भारतेन्दु एवं श्रीधर पाठक आदि अनेक कवियों की रचनाओं में भी सहज ही दृष्टि होती है । तत्कालीन राजभक्ति पूर्ण कविताओं के सम्बन्ध में डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने ठीक ही लिखा है, “ यहाँ हमें यह कदापि भूलना नहीं चाहिए कि यह राजभक्ति की चेतना वस्तुतः कवियों की देश—प्रेम की भावना का ही एक पक्ष थी । भारतेन्दु, प्रेमघन आदि कवि देश प्रेमी थे । ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही एक जनवादी राज्य को देखने के इच्छुक थे ।..... वे सम्राज्ञी विक्टोरिया का भारतीय जनता हित के लिए भारत में राज्य देखने के इच्छुक थे अतएव इन कवियों के राजभक्ति और देशभक्ति के दो विपरीत विश्वास न थे वरन् उनकी देशभक्ति उस युग की राजनीति चेतना की ही अभिव्यक्ति थी ।<sup>२</sup>

राजभक्ति प्रेमघन आदि कवियों के लिए वास्तव में एक साधन मात्र थी । शासक वर्ग का विश्वास अर्जित करने देश हितार्थ उनका ध्यान आकर्षित करने तथा उसके सहारे अपना मंतव्य अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से यह उन्हें एक उत्तम साधन प्रतीत होती रही थी । इसी तथ्य को प्रेमघन ने एक स्थान पर यों प्रकट किया है—

राजकोष के उपल सों सावधान अति होय ।

रहियै रंचक बीच जो सकत ना ए करि सोय ॥

राजभक्ति को अति बृहत् तासों छप्पर छाय ।

<sup>१</sup> चरखे की चमत्कारी प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, पृ. ६४८—६५०

<sup>२</sup> हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव : वि.सं. : डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा, पृ. ६१—६२

ऊपर बाके रखियै जब जासो भयमिटि जाय ।।<sup>११</sup>

प्रेमघन की राजभक्ति विषयक रचनाओं के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है— “ हीरक जुबिली आदि की कविताओं को खुशामदी कविता न समझना चाहिए । उनमें ये देशदशा का सिंहावलोकन करते थे और मार्मिकता के साथ भी प्रेमघन ने राजभक्ति विषयक रचनाओं में प्रायः अंग्रेजी शासन की प्रशंसा के साथ उनकी अनीति और देश-विरोधी कार्यों की निन्दा की है और निन्दा का यह स्वर समय के मान अग्रतर होता चला गया है ।<sup>१२</sup>

प्रेमघन की राजभक्ति विषयक रचनाओं को देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि उन्हें राजनीतिक दासत्व रुचिकर या सहा था अंग्रेजी शासन के प्रति उनका कोई लगाव था उनकी यह विनम्र नीति देश के तत्कालीन प्रबुद्ध लोगों की नीति से और विशेषतः नेशनल कांग्रेस की नीति से मेल खाती थी। प्रेमघन जैसे राष्ट्रीय कवि के सम्बन्ध में अन्यथा समझना नितांत भ्रामक होगा । वास्तव में उन्हें विदेशी शासक और उसके द्वारा किया गया राजनीतिक व आर्थिक शोषण कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकता था । यदि किन्हीं अंशों में उन्होंने उसे बर्दाश्त भी किया था , तो केवल परिस्थितिवश या कुछ देशहित में । तथा जनता द्वारा किये गये स्वदेशी व स्वराज्य विषयक आन्दोलनों का स्वागत करते रहे ऐसा उनकी प्रायः सभी राजभक्ति विषयक रचनाओं तथा ‘चरखे की चमत्कारी’ ‘होली राग काफी’ और अनेक संगीत रचनाओं से भलीभाँति विदित हो जाता है ।

अन्यत्र भी उन्होंने अधिकारी वर्ग के अनाचार और गाँधी प्रवर्तित असहयोग व स्वराज्य आन्दोलनों के प्रति अपनी भावना को इन शब्दों में—

मची है भारत में कैसी होली सब अनीति गति होली ।

<sup>११</sup> शुभ सम्मेलन : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ३५८-५९, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

<sup>१२</sup> हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ५६७

पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब घोली ।<sup>१३</sup>

प्रेमघन ने अपनी कविता में राजनीतिक हलचलों का उसकी दुर्दशा के कारणों का एक व्यापक इतिहास सा प्रस्तुत कर दिया है । अपनी युग प्रवृत्ति के अनुरूप उन्होंने देशभक्ति विषयक रचना भी की है । उनके समय में श्रीधर पाठक तथा कविरत्न सत्यनारायण आदि कवियों ने इस प्रकार की अनेक कविताएँ लिखी थीं जिनमें भारत को प्रायः माता या देवी आदि रूपों से सम्बोधित किया गया है । प्रेमघन का भी वन्देमातरम् नामक जातीय गीत एक ऐसी ही रचना है जिसमें भारतभूमि की भवानी के रूप में वन्दना की गयी है—

“ जय जय भारतभूमि भवानी ।

जाकी सुयश पताका जग के दस हूँ दिसि फहराती ॥

सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ।<sup>१४</sup>

### साहित्यिक परिप्रेक्ष्य :

प्रेमघन ने जिस समय साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया वह आधुनिक काल का प्रथम उत्थान समय था वह संक्रमणकाल था, जिसमें साहित्यिक धारा, भाषा और शैली की दृष्टि से नवीन उपधाराओं में विभक्त होकर बहने लगी थी । उस काल की प्रमुख विशेषता थी । गद्य साहित्य का प्रवर्तन शैली की दृष्टि से मोटे रूप से साहित्य के दो भाग थे—पद्य साहित्य, गद्य साहित्य । तत्कालीन साहित्यिक वातावरण को समझने के लिए यहाँ उसके उक्त दोनों प्रकारों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है ।

### आधुनिकता :

आधुनिक शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है । यह शब्द संस्कृत के ‘अधुना’ शब्द में ठक् प्रत्यय इक् लगाकर बना है । अतः अधुना शब्द से

<sup>१३</sup> चरखे की बमत्कारी : प्रेमघनसर्वस्व, प्रथम भाग, पृ. ६४८

<sup>१४</sup> ‘स्वदेश विन्दु’ : वन्देमातरम् जातीय गीत : प्रेमघन सर्वस्व, पृ. ६४५, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

विकसित आधुनिक का अर्थ अत्यन्त नवीन है जो कई अर्थों में अभिव्यक्त हुआ है भाव प्रत्यय 'ता' शब्द से संयुक्त होने पर इस शब्द से गुण अवस्था एवं परिणाम का बोध होता है ।<sup>१५</sup> अभिप्राय यह है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन गुण अवस्था एवं वातावरण के फलस्वरूप बौद्धिक कल्पनाएँ विभिन्न परिवर्तनों को ग्रहण करती हुई अत्यन्त नवीन रूप में दृष्टिगोचर होने लगी । इसे ही आधुनिकता की संज्ञा दी गयी । इसका प्रथम अर्थ प्राचीन एवं मध्ययुगीन भावबोध से भिन्न नवीन इहलौकिक विचारधारा है । आधुनिकता से तात्पर्य यह है कि आज के युग में पुरातन कालीन भक्तिकालीन अनेक विचारधाराओं को तोड़ा गया ।

आधुनिकता का दूसरा अर्थ है— इहलौकिक दृष्टिकोण इसमें धर्म, दर्शन, साहित्य चित्र आदि सभी के प्रति नवीन विचारधाराएँ प्रवाहित हुई हैं । मध्यकाल में पारलौकिक विचारधारा से व्यक्ति इतना लीन था कि उसे अपने जीवन का बोध भी न था लेकिन आधुनिकता ने अपने सम्बन्ध में चिन्तन मनन करने के लिए विवश किया ।

आधुनिकता को विभिन्न विचारकों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है— डॉ. रामेश्वर खण्डेलवाल का कथन है— “ आधुनिक जीवन और जगत को काल बिन्दु से देखने समझने की एक भिन्न स्थिति या 'दृष्टि भंगिमा' है जो मुख्यतः हमारे बौद्धिक जीवन मूल्यों का निर्धारण व जीवन प्रणाली का नियम तथा रूपांकन करती है । ”

डॉ. भारद्वाज के विचारानुसार, “ आधुनिकता का मूल आधार नगरीकरण है ग्राम संस्कृति के सामन्ती बोध का आधुनिक भावबोध में रूपांतरण तीव्र नगर विकास से ही संभव हुआ है । नगरीकरण की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय

<sup>१५</sup> डॉ. आरिफ़ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १२७

विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उसकी विभिन्न अवस्थाओं का निरूपण किया । उनका मत था कि सभी गुण दोषों के साथ आधुनिकता हमारी नियति है ।

जिससे लौटना किसी भी दृष्टि संभव नहीं है । आधुनिकता के कुछ तत्त्व अस्थायी हैं जो ऐतिहासिक विकास में अपना रूप परिवर्तित कर लेंगे । आधुनिकता जहाँ एक और मानवीय मुक्ति के आह्वान के रूप में हमारे सामने आयी है वह दूसरी ओर व्यक्ति निरन्तर अकेला और आरक्षित भी बनी रही है ।

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने आधुनिकता को चार मॉडलों के अन्तर्गत पहचानने का प्रयास किया है । उनका पहला मॉडल राजा राम मोहन है जिन्हें वे भारतीय आधुनिकता के 'प्रथम पुरुष' के रूप में देखते हैं इसीलिए वे राजाराम मोहन राय के युग का पुनर्जागरण काल न कहकर नवजागरण काल कहना अधिक पसन्द करते हैं । आधुनिकता के प्रथम चरण के रूप में यहाँ वस्तुओं को बौद्धिक आग्रहों से देखने की परम्परा का सूत्रपात हुआ । उनके द्वारा प्रवर्तित सतीप्रथा विरोधी आन्दोलन की समकालीन स्त्री जागरण की पृष्ठभूमि है । इस मण्डल की अपनी गम्भीर समस्याएँ थी । मसलन यह अपने आपको दलित हरिजनों की दारुण स्थिति से जोड़ने में असफल रहा । "गाँधी मण्डल" का आधार ज्यादा व्यापक और संश्लिष्ट था । उसे अति मानववाद और भाववाद को नेहरू मण्डल में संतुलित करने का प्रयास मिलता है । आधुनिकता का श्रेष्ठ मॉडल 'लोकमण्डल' है जिसमें जन-जन की मुक्ति के लिए वर्गगत द्वन्द्व को समझने और सुलझाने का संकल्प हो उसका मत था कि उस बोध से सम्पन्न लेखक और कलाकृति ही उचित आधुनिकता बोध का प्रतिनिधित्व करती है ।

डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय का कथन आधुनिकता के संदर्भ में आधुनिकता के पैरवीकारों को उसके नकारात्मक पक्षों के समाधान के लिए किसी ठोस सुझाव को प्रस्तुत करना चाहिए । समय की आवश्यकता यह है कि हम अपनी सभ्यता को समकालीन विकृतियों से सुरक्षित करने के लिए एक जुट हों ।

सत्यपाल सहगल ने कहा कि आधुनिकता क्षेत्र या देश विदेश में सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक ढांचे से अभिन्न है जिनकी ओर संकेत किये बगैर आधुनिकता की सही व्याख्या नहीं की जा सकती । एक पूँजीवादी देश ओर समाजवादी देश के नगरीकरण में अन्तर होगा । हमारा अब तक का सारा चिन्तन पश्चिमी यूरोप के आधुनिक मनुष्य की नियति को लेकर हुआ है ।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता के सन्दर्भ में यह विचार प्रकट किया कि प्रक्रिया और मूल्य एक दूसरे के विरोध नहीं है । यदि वे आधुनिकता को एक प्रक्रिया मानते हैं तो उसका अर्थ मात्र इतना है कि उसके मूल्य शाश्वत नहीं होते, निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं यदि उन्होंने कहीं इसके विपरीत बात भी की है तो वो अपनी भूल स्वीकार करते हैं ।

वस्तुतः आधुनिकता मध्ययुगीन भावबोध के विरुद्ध एक दृष्टिकोण है, प्रक्रिया है अद्यतनता है तथा मानव—जीवन मूल्यों को नवीन भावबोध के साथ उपस्थित करना है वैज्ञानिक बौद्धिकता इसमें सर्वोच्च है ।

आधुनिकता के स्वरूप की विवृति के लिए उसके ऐतिहासिक संदर्भ भिन्न एवं प्रवृत्ति का परिज्ञान अपेक्षित है । आधुनिक काल अपने ज्ञान—विज्ञान ओर प्रविधियों के कारण मध्यकाल से भिन्न है यह कालन औद्योगीकरण नगरीकरण और बौद्धिकता से चिपका हुआ है इसके फलस्वरूप नूतन आशाएँ उभरीं और भविष्य का नूतन स्वप्न देखा जाने लगा । देश धर्म राष्ट्र, ईश्वर आदि की नवीन व्याख्याएँ होने लगीं, प्रत्येक देश में पुनः जागरण हुआ । बहुत से देश स्वतंत्र हुए तथा अपने —अपने ढंग की उनकी नयी सरकारें बनीं ।

पुरातन तथा अधुनातन दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है । प्राचीन काल में धर्म की प्रधानता थी । आधुनिक काल में धर्म का स्थान विज्ञान ने ले लिया । प्राचीन काल में ईश्वर की प्रधानता पर मानव पर बल दिया जा रहा है । प्राचीन काल में धार्मिकता तथा भावना की प्रधानता थी । आधुनिक काल में इनके स्थान

पर बौद्धिकता प्रधान हो गयी । आज जो चीजें आधुनिक हैं वे आने वाले समय में कब तक आधुनिक बनी रहेंगी ऐसा कहना कठिन है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिकता के तीन लक्षण स्वीकार किये हैं — उनकी दृष्टि में आधुनिकता का पहला लक्षण है— “ऐतिहासिक दृष्टि दूसरा यह कि इसी दुनियाँ के मनुष्य को सभी प्रकार की भीतियों और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह और तीसरा यह कि व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि मानव या सम्पूर्ण मानव समाज की कल्याण कामना ।” यथार्थवाद , नग्न यथार्थवाद, मार्क्सवाद फ्रायडवाद आदि भावनाओं से आधुनिकता बहुत प्रभावित है ।

कुबेरनाथ राय ने आधुनिकता का विश्लेषण करते हुए लिखा है। आधुनिकता एक सृष्टि क्रम है , एक बोध प्रक्रिया है, एक संस्कार प्रवाह है ।

वस्तुतः आधुनिकता अपने परिवेश एवं बदलते हुए संदर्भों तथा जीवन मूल्यों को समझने की दृष्टि है ।

### प्रेस का प्रचार :

१८वीं शती में प्रिंटिंग प्रेस आई । जो ज्ञान साधन सम्पन्न व्यक्तियों तक सीमित था वह सर्व सुलभ हो गया । इस काल में अंग्रेजों ने भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार घोषित कर दिया इससे पहले भूमि सम्राट के नाम होती थी । भूमि तो व्यक्ति की होती थी । किन्तु पर उस उत्तराधिकार नहीं होता था । इस काल में नई शिक्षा व्यवस्था आई । पुरानी शिक्षा व्यवस्था में निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । इस युग में शिक्षा के सभी द्वार खुल गये निम्न वर्ग का भी व्यक्ति अध्यापक हो सकता था । सभी वर्गों के व्यक्ति एक साथ बैठकर शिक्षा प्राप्त करेंगे । ऐसी शिक्षा प्रणाली ने पुरानी जाति व्यवस्था को तोड़ दिया । वेद शास्त्र आदि ग्रन्थ प्रेस की सुविधा से सबके लिए सुलभ हो गये । पुस्तकों का मूल्य कम रखा गया जिससे सभी लोग पुस्तकें

आसानी से खरीद सकें तथा पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार हो । पुस्तकें सटीक प्रकाशित की गई । सभी ने सब प्रकार के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सही अर्थ जाना देश के विभिन्न भागों में न्यायालय स्थापित किये गये । कानून की दृष्टि में सबको समान माना गया देश उद्योग कार्य बढ़ने लगा । “ हिन्दुस्तान में अब तक कलों के कारखाने नहीं हैं इससे हिन्दुस्तानियों को बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है मैं जानता हूँ कि इस समय हिम्मत करके जो कलों के कारखाने पहले जारी करेगा उसको जरूर फायदा रहेगा ।”<sup>१६</sup> कारखानों में सभी वर्गों के व्यक्ति एक साथ बैठकर कार्य करने लगे । जाति व्यवस्था और अधिक ढीली हुई । छापाखाने की सुविधा से बहुत पुस्तकें छपने लगीं तथा सभी उन्हें सरलतापूर्वक प्राप्त करने लगे । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने छापाखाने की वास्तविकता बताते हुए एक मुकरी में सत्य ही कहा है —

एक गरभ में सौ—सौ पूत

जनमावै ऐसा मजबूत

करै खटाखट काम सयाना

ए सखि सज्जन नाहिं छापाखाना ॥ <sup>१७</sup>

प्रेस के प्रचार के साथ ही गद्य का विकास बहुत तेज हुआ ब्रजभाषा की गद्य परम्परा आगे नहीं बढ़ सकी । ब्रजभाषा में गद्य लिखने की प्रवृत्ति ही बहुत कम है । खड़ी बोली जनसाधारण के बोलचाल की भाषा थी । धीरे—धीरे इसका प्रयोग होने लगा । दक्षिण भारत ने भी उर्दू से परिचित होने के कारण खड़ी बोली को आसानी से स्वीकार किया । ब्रजभाषा जहाँ ब्रजक्षेत्र में ही प्रचलित

<sup>१६</sup> श्रीनिवास बास : परीक्षा गुरु, पृ. २६

<sup>१७</sup> भारतेन्दु समग्र, पृ. २५६, सं. हम्पेचन्द्र शर्मा(हिन्दी प्रचारक संस्थान, १९८७)



थी वहाँ खड़ी बोली का व्यापक क्षेत्र में हुआ । इसने पूरे भारत को जोड़ने का कार्य किया । विभिन्न देशों से अनेकानेक पत्रिकाएँ भी निकाली गई ।

### यातायात के साधन :

१९वीं शताब्दी में संसार में यातायात के नवीन साधनों का विकास हुआ । भारत में रेल, बस, मोटर कार आदि गाड़ियों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ । इससे पूर्व यात्रा का साधन पदयात्रा अथवा पशुओं का सहारा ही था । इसके द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की स्थापना बहुत हद तक व्यावहारिक रूप में हुई । देश की जनता के विचारों में ऐसे वातावरण में भारी परिवर्तन आया । इस काल में देश के विभिन्न भागों में सुन्दर सड़कों का निर्माण हुआ । देश का सामन एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुँचने लगा । " यही नहीं रेलों के द्वारा हिन्दुस्तान का कच्चा माल विदेश भी ले जाया जाने लगा । जहाज का वर्णन करते हुए — भारतेन्दु ने लिखा है—

“ लंगर छोड़ि खड़ा हो झूमै ।

उलटी गति प्रतिकूलहि चूमै ।

देस देस डोलै सजि साज

क्यों सखि सज्जन नहिं जहाज ।”<sup>१८</sup>

प्रेमघन के समय में अंग्रेजी शासन था उस समय अँग्रेजों ने माल विदेश ले जाने के लिए जहाज और रेल यातायात के साधन अपनाये । रेल के सम्बन्ध में भारतेन्दु का कथन है—

साटी देकर पास बुलावै

रूपया लै तो निकट बिठावै ।

लै भागै मोहि खेलहि खेल

---

<sup>१८</sup> नये जमाने की मुकरी : भारतेन्दु समग्र, २५६

क्यों सखि सज्जन नहिं सखि रेल ।<sup>१९</sup>

### शिक्षा का पश्चिमीकरण :

अंग्रेजी शासन के साथ ही भारतीय शिक्षा प्रणाली को झकझोर दिया । भारतीय ज्ञान—विज्ञान की प्रकृति पश्चिमी देशों के ज्ञान विज्ञान से भिन्न भी भारतीय ज्ञान गतानुगतिक और परम्परामुक्त हो चला था जबकि पाश्चात्य ज्ञान—विज्ञान नये जीवन संदर्भों के साथ ताजगी लिए हुए था । भारतीय ज्ञान—विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक एवं पारलौकिक रहा है ।

भारतीय विचारानुसार मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में कहा है—

“काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशचुजे ॥<sup>२०</sup>

पाश्चात्य ज्ञान—विज्ञान भौतिक तथा इहलौकिक रहा है । भारतवर्ष में विद्या वर्ग विशेष तक सीमित थी । पाश्चात्य जगत् में शिक्षा के द्वारा सभी के लिए खुल गये । दर्शन, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, गणित, धर्मशास्त्र व्याकरण आदि के क्षेत्र में भारत ने श्रेष्ठता प्राप्त की । कुछ लोग वैदिक मान्यताओं के अनुसार समाज रचना एवं शिक्षा का समर्थन अभी भी कर रहे थे । शिक्षा प्रायः उस भाषा में दी जाती थी जो आम जनता की भाषा नहीं थी । बहुत से विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद भी इस काल में भारतीय भाषाओं में हुआ ।

### राष्ट्रीय नवजागरण :

भारतीय नवजागरण की एक धारा अगर भारतीय परम्परा पर साम्राज्यवादी परम्पराओं के प्रभुत्व की है तो दूसरी धारा भारतीय परम्परा की साम्राज्यवादी परम्पराओं से एक राहत की है । १८५७ के विद्रोह ने नवजागरण को एक नया स्तर प्रदान कर भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि भारतीय

<sup>१९</sup> नये जमाने की मुकरी : भारतेन्दु समग्र, २५७

<sup>२०</sup> मम्मट : काव्य प्रकाश, उल्लास—२

संदर्भ में नवजागरण का अर्थ साम्राज्यवादी आधुनिकीकरण के प्रति सम्मोहन कदापि नहीं हो सकता था । राजा राममोहन राय के साम्राज्यवाद की तरफ झुके एकांगी नवजागरण की वस्तुगत उपलब्धियों को नकारे बिना तथा स्पष्ट सीमाओं को अनदेखा किये बिना १८५७ के विद्रोह से देखते ही देखते नवजागरण की दूसरी धारा फूटी, जिसका झुकाव साम्राज्यवाद विरोध की ओर था पहली धारा की भाँति उसके मूल सामाजिक आधार में विशिष्ट वर्ग के लोग नहीं बल्कि मध्यमवर्ग और किसान वर्ग के लोग थे ।<sup>२१</sup>

प्रेमघन के समय में भारतवर्ष में अनेक ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए जो धार्मिक विचारधाराओं की भीतरी स्वामियों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने लगे तथा उसमें सुधार की संभावनाएँ टटोलने लगे । इन सुधारों में धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रीति रिवाजों का नवसंस्कार करने तथा नैतिक मान्यताओं को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया ।

बंगाल नवजागरण का मुख्य केन्द्र था राजाराममोहन राय, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि बंगाल में तथा महादेव गोविन्द रानाडे और ज्योतिबा फुले इत्यादि महाराष्ट्र में इस नयी चेतना का अपने ढंग से प्रचार—प्रसार कर रहे थे । दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द तथा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने राष्ट्रीय नव जागरण को एक आन्दोलन का रूप दिया । सैय्यद अहमद ख़ाँ, अमीर अली मीर, मुहम्मद इकबाल आदि ने भी इसी समय समाज—सेवा की ।<sup>२२</sup>

<sup>२१</sup> श्यामु नाथ जोशी : भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, प्र.सं. १९८६ (आनेवाला कल प्रकाशन, राधा बाजार, स्ट्रीट, ६३ कलकत्ता)

<sup>२२</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १३२

अंग्रेजों के आगमन से भारतीय जनता की पुरानी विचारधारा में बहुत परिवर्तन आया । सन् १८५७ की क्रांति के बाद ही भारतवासियों ने समझ लिया कि अब बुद्धि तथा बाहुबल से काम लेना होगा ।

पुराने धार्मिक संस्कार, रीति—नीति आदि की बातें यहाँ टूटने लगी नये विचार तथा पुराने धार्मिक संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । नये भारतीय समाज की रचना प्रारम्भ हुई । ब्राह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने धर्म का युगानुरूप संस्कार की भावना का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया ।

नये परिवेश के फलस्वरूप जाति—प्रथा, छुआछूत बाह्याडम्बर आदि के बन्धन बहुत शिथिल हुए । स्त्री—पुरुष की समानता पर भी बल दिया जाने लगा । सती—प्रथा उन्मूलन हुआ तथा बाल विवाह का विरोध किया गया । स्त्री शिक्षा का प्रचार—प्रसार किया गया । इस भारतीय जनता में एक नये प्रकार की जागृति आई ।

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं नवजागरण को आगे बढ़ाने में आर्य समाज ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ब्रिटिश सरकार ने इसके दमन का भी प्रयत्न किया । किन्तु वह पूर्णतया सफल न हुई । उत्तरी भारत में इस विचारधारा का विशेष प्रभाव रहा ।

अस्पृश्यता का इस आन्दोलन ने अत्यन्त विरोध किया । भारत का मध्यवर्ग इस विचारधारा का अत्यन्त आक्रामक दृष्टिकोण रहा, इसलिए मुसलमान इसे किसी प्रकार भी स्वीकार करने को तैयार नहीं हुए । वेद को अपौरुष और अतर्क्य मान लेने के कारण व्यक्तिगत चिन्तन में कोई स्थान नहीं रहा ।

भारतीय नवजागरण की अमर ज्योति प्रज्वलित करने में सर सैयद ने बड़ा कार्य किया । वह इस्लाम के अनुसंधाता, ज्ञान—विज्ञान के पक्षपाती समाज

सुधारक राजनीतिज्ञ, लेखक और प्रमुख विचारक थे । भारत की उन्नति हेतु उन्होंने पाश्चात्य ज्ञान—विज्ञान को स्वीकार करने का आग्रह किया ।

भारतवर्ष की इज्जत बढ़ाने हेतु सर सैयद सदैव प्रयत्नशील रहे । इसके लिए वह राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं सद्भावना आवश्यक मानते थे । उनका कथन है— “ हिन्दुस्तान की दोनों कौमें हिन्दू और मुसलमान अगर बराबर तरक्की करें तो हिन्दुस्तान के नाम को इज्जत मिलेगी और मादरे वतन भारत एक खूबसूरत दुल्हन बन जायेगा ।”<sup>२३</sup>

सर सैयद साहब ने स्त्रियों की शिक्षा के प्रचार—प्रसार के महत्वपूर्ण कार्य किया । पंजाब में स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—“ घर का इंतजाम अपने हाथों में रखो । इस पर शहजादी की तरह हुकूमत करो अपनी लड़कियों को तालीम देकर अपना सा बनाओ ।

भारतवर्ष की अधिकाधिक उन्नति हेतु सरसैयद ने बड़ा परिश्रम किया । वे चाहते थे कि भारतीय जनता मिल जुलकर ज्ञान—विज्ञान, सभ्यता शिष्टता और वैभव की उच्चता को प्राप्त करे । उन्होंने अपनी अधिकांश रचनाओं में उर्दू भाषा का प्रयोग किया । उनकी रचनाओं का नागरी लिपि के माध्यम से अधिकाधिक प्रचार—प्रसार किया जाना चाहिए । राष्ट्रीय सद्भावना और भारत की भावात्मक एकता को मजबूत बनाने में यह कार्य निश्चय ही अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा ।

सैयद अमीर अली “मीर” १८७३—१९३६ का जन्म सागर में हुआ । इन्होंने हिन्दी साहित्य की बहुत सेवा की इनके कारण देवरी में “मीर मण्डल” कवि समाज की स्थापना हुई । हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने का इन्होंने बहुत समर्थन किया । “रामचरितमानस” के प्रति इनका विशेष अनुराग था इनकी भाषा

<sup>२३</sup> डॉ.आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १४३

खड़ी बोली थी । ईश्वर प्रेम तथा देशभक्ति इनके काव्य रचनाएँ हैं । भारत के युवकों को आजादी की लड़ाई के लिए पुकारते हुए इन्होंने कहा—

उठो युवक गण उठो भेद का भंडा फोड़ो,  
उड़ि आये अगर रूढ़ि के बन्धन तोड़ो ।  
ठीक समय है यही वीर, अवसर मत चूको,  
फूंक—फूंक, शंख एकता का अब फूँको ।<sup>२४</sup>

बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने इस समय समग्र देश—जाति के हित को दृष्टि रखते हुए अपना स्वर मुखरित किया—

“ हिन्दी मुस्लिम जैन फारसी ईसाई सब जात ।  
सुखी होय हिय भरे प्रेमघन सकल भारती भ्रात ॥

### धार्मिक परिप्रेक्ष्य :

भारतवर्ष आदिकाल से ही एक धर्मपरायण देश रहा है । यहाँ धर्म को लोकल्याण तथा मोक्ष दोनों का ही प्रदाता समझा गया है । यहाँ के जीवन में धर्म और दैनिक क्रिया प्रक्रियाएँ दूध और पानी की तरह आपस में घुलमिल गई है ।

### ब्रह्म समाज :

१९वीं शताब्दी के धार्मिक सुधारकों में राजाराममोहनराय (१७७८—१८८३) का नाम प्रमुख है, उन्होंने भारत धार्मिक सुधार के लिए अत्यन्त संघर्ष किया । राजाराम मोहनराय ने पटना में अरबी—फारसी सीखी तथा कुरान शरीफ पढ़ा । काशी में संस्कृत, धर्मशास्त्र एवं वेदान्त पढ़कर जब वह जंगल में अपने राधानगर(जिला हुगली) गये तब तक वह एकेश्वरवादी तथा मूर्तिपूजा विरोधी बन चुके थे । वह तिब्बत गये वर्षों काशी में रहे और फिर १८०३ में मुर्शिदाबाद आ

<sup>२४</sup> डॉ. रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. १४० (अनुपम प्रकाशन, जयपुर)

गये वहीं उन्होंने 'तुहफतुल मुबाहिदीन (एकेश्वरवादियों का उपहार) नामक पुस्तक लिखी, तथा उसमें यह सिद्ध किया कि परमसत्ता विश्वास ही समस्त धर्म भावना का मूल है उन्होंने उपनिषदों के मूलपाठ और भाषा टीका बंगला भाषा में तथा वेदान्त का सार फारसी में प्रस्तुत किया । अंग्रेजी में उन्होंने " एक डिफेंस आफ हिन्दू धीइज्म" तथा ए सेकेंड डिफेंस आफ द मॉनोथीज्म' नामक पुस्तकें लिखीं । इनके साथ ही उन्होंने " द प्रिसेप्ट्स ऑफ जीसस द गाइड टू पीस एण्ड हैपिनेस" नामक पुस्तकें लिखीं जिसमें ईसा मसीह के उपदेशों का सार दिया गया है।

सर्वप्रथम राजा साहब ने अपने मत के प्रचार के लिए आत्मीय सभा की स्थापना की । उन्होंने वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित कराया तथा उपनिषदों की ओर लौटो का उपदेश दिया । २० अगस्त, १८२८ ई. को उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसके विधि विधान भारतीय सिद्धान्तों के अनुरूप थे । उन्होंने सतीप्रथा और बालविवाह आदि का विरोध किया और स्त्री-शिक्षा एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया । बंगाल में सतीप्रथा के उन्मूलन का श्रेय राजा साहब को ही है । " धर्म के अध्ययन और विश्लेषण से उन्होंने वह शक्ति निकालनी चाही जिससे हिन्दू क्रिस्तान होने से बच सकते थे । वे धार्मिक सुधारक कम सामाजिक सुधारक अधिक थे । उन्होंने जो कुछ किया हम उसे सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य कह सकते हैं ।"<sup>२५</sup>

राजाराम मोहन राय की मृत्यु के पश्चात् महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने ब्रह्म समाज का नेतृत्व किया । वेदपाठ के कमरे में ब्राह्मणों के साथ अब्राह्मणों के प्रवेश का भी विधान कर उन्होंने समाजसुधार के मार्ग की एक बाधा को समाप्त कर दिया ।

<sup>२५</sup> रामधारी सिंह 'दिनकर': संस्कृति के चार अध्याय, पृ. ४७, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, द्वि.सं. १९५६ ई.

केशवचन्द्र सेन के पदार्पण से ब्रह्मसमाज समाजसुधार की ओर तीव्र गति से उन्मुख हुआ । मूर्तिपूजा के त्याग के साथ-साथ उन्होंने जात-पाँत और मदयपान को भी समाप्त करने का प्रयास किया । वे ईसाई धर्म से विशेष रूप से प्रभावित थे तथा सामाजिक क्रान्ति के प्रबल समर्थक थे फलतः सामाजिक प्रश्नों पर मतभेद के कारण १८६६ ई. में ब्रह्मसमाज विभक्त हो गया । केशवचन्द्र सेन द्वारा स्थापित समाज “ भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज ” (बाद को नवविधान में परिवर्तित) महर्षि देवेन्द्रनाथ द्वारा संचालित समाज ‘ आदि ब्रह्मसमाज ’ ब्रह्मसमाज के सदस्य पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाल में विधवा विवाह के प्रसार में सक्रिय योगदान दिया । वस्तुतः ब्रह्मसमाज भारतीय नवजागरण के उषःकाल की प्रथम किरण था ।<sup>२६</sup>

### आर्य समाज :

आधुनिक काल में सामाजिक क्षेत्र में आर्य समाज का उदय सर्वाधिक क्रान्तिकारी घटना है। ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सामाजिक क्षेत्र में नवीन चेतना के प्रतीक हुए। स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४—८८ ई.) हुए उनकी शिक्षा—दीक्षा संस्कृत में हुई थी इसके साथ ही गुजराती तथा हिन्दी का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था । जन्मभूमि की भाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने संस्कृत भाषा में ‘सत्यार्थ प्रकाश’ नामक ग्रन्थ की रचना की । इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन १८७५ ई. में हुआ । ‘सत्यार्थ प्रकाश’ का अर्थ बताते हुए स्वामी जी ने लिखा है, “ मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य—सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है, ”<sup>२७</sup>

<sup>२६</sup> राष्ट्रियता की अवधारणा : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, पृ. ४७ (प्रकाश बुक डिपो, बरेली)

<sup>२७</sup> वही, पृ. ४८



१८६७ ई. में बम्बई, में आर्य समाज की स्थापना की आर्य समाज का अर्थ है श्रेष्ठ पुरुषों का संगठन — Society of the noble men दयानन्द सरस्वती ने आन्दोलन के तीन चरण स्थिर किये, एक ईश्वर, एक धर्म तथा विश्व । एक ईश्वर का One Distinction and one God है । एक धर्म से अभिप्राय एक आचरण संहिता एक विश्व का अर्थ एक परिवार है वेदों में अन्तिम सत्य पाया जा सकता है ।

उन्होंने अतीत के माध्यम से भारतीयों में निजत्व (भाई चारा) का समावेश किया तथा राष्ट्रीयता को उदात्त रूप प्रदान किया । राय एवं रानाडे उपनिषदों तक ही सिद्ध किया है । उन्होंने वैदिक धर्म को पूर्ण सत्य घोषित किया और “वेदों की ओर लौटो” का मंत्र प्रदान किया ।

स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म का विशाल और उदार स्वरूप समाज के मानव मात्र उसके द्वार खोल दिये । मूर्ति पूजा, अवतारवाद श्राद्ध आदि इनकी दृष्टि में अमान्य थे । उन्होंने जाति भेद छुआछूत, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह, परदाप्रथा, दहेज—प्रथा आदि का घोर विरोध किया तथा विधवा विवाह, अर्न्तजातीय विवाह नारी शिक्षा और समुद्र यात्रा का समर्थन किया ।

आर्य समाज की दो विशेषतायें (१) एक ओर जात—पात के उन्मूलन एवं शुद्धि आन्दोलन द्वारा उसमें इस्लाम के उफनते प्रवाह की गति अवरुद्ध कर दी, (२) दूसरी ओर अनाथ बच्चों के लिए अनाथालयों तथा असहाय महिलाओं को वनिता सदनों की स्थापना और प्राकृतिक आपदाओं के समय सहायता—कार्यक्रमों की आयोजना कर ईसाई मिशनरियों के कुचक्रों को विफल कर दिया । दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालयों तथा गुरुकुलों की स्थापना कर मैकाले की घातक शिक्षा नीति को ध्वस्त करने का प्रशंसनीय प्रयास किया ।

धार्मिक तथा सामाजिक जागरण के साथ—साथ आर्य समाज राजनैतिक जागरण का भी अग्रदूत था । अमौरी दे रीनकोर्ट ने लिखा—“ महर्षि दयानन्द

का संगठन राजनैतिक राष्ट्रीयता का प्रथम मूर्त केन्द्र बिन्दु था;<sup>26</sup> राजनैतिक तथा आर्थिक उत्थान के भी प्रबल पक्षपाती थे। वे स्वधर्म, स्वदेशी तथा स्वभाषा के पक्षधर थे। उन्होंने सुराज्य तथा स्वराज्य का अंतर स्पष्ट कर राष्ट्र समक्ष स्वराज्य का महत्व प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि किसी दूसरे अच्छा शासन स्वशासन का स्थान कदापि नहीं हो सकता। “कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता—माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।”<sup>27</sup>

आर्य समाज आन्दोलन के मूलभूत सिद्धान्त प्राचीन वाङ्मय पर आधारित थे, जो भारतीय मनीषा की अक्षयनिधि है नाना प्रकार के कर्मकाण्डों तथा राष्ट्र में प्रचलित विभिन्न मतमतान्तरों की, स्वामी दयानन्द ने कड़ी निन्दा की। भारतीय समाज स्वामी जी का इसके लिए भी ऋणी रहेगा कि नवीन सम्प्रदायों के प्रवर्तक के लिए उपजाऊ भूमि होते हुए भी उन्होंने किसी नवीन मत का उद्भावना नहीं की। “मेरा कोई नवीन कल्पना व मत मातरं चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना भी अभीष्ट है।”<sup>28</sup>

ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज के आन्दोलन जहाँ उच्चवर्ग तक ही सीमित थे वहाँ आर्य समाज का प्रसाद मध्य एवं निम्न वर्ग में हुआ। आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति का आत्माभिमान सबसे पहले आर्य समाज के स्वाभिमान के रूप में ही प्रकट हुआ। मौलाना हसरत मुहानी ने लिखा है, “जब तक लोग स्वराज्य

<sup>26</sup> डॉ. कर्ण सिंह : राष्ट्रीयता का अग्रदूत, पृ. 22 (शम सन प्रेस दिल्ली, प्र.सं. १९७०)

<sup>27</sup> दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश : अष्टम उल्लास, पृ. १४१ (वैदिक यान्त्रालय अजमेर, पच्चीसवीं सं. १९९२)

<sup>28</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, पृ. ५० (प्रकाश बुक डिपो, बरेली)

का स्वप्न देख रहे थे । स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने में लगे थे । मैं खुशी के साथ कहता हूँ कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ९० फीसदी आर्यसमाजी स्वराज के कामों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे ।'<sup>३१</sup>

### रामकृष्ण मिशन :

जिस समय आर्य समाज की दुन्दुभि उत्तरी भारत में बज रही थी , उसी समय बंगाल में रामकृष्ण परमहंस का उदय हुआ उनके ऋषितुल्य व्यक्तित्व में अद्भुत आकर्षण था । वे सब धर्मों की मौलिक एकता में विश्वास रखते थे तथा एकेश्वरवाद के समर्थक थे वे धर्म के ब्रह्मपक्ष को मांग बताकर, जनता को उसके अन्तः पक्ष को अपनाने का उपदेश देते थे ।

रामकृष्ण के परमहंस के ही परम शिष्य नरेन्द्रनाथ दत्त जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रख्यात हुए अपने गुरु का संदेश—देशदेशांतरों में पहुँचाने के लिए रामकृष्णमिशन की स्थापना की आधुनिक काल में सर्वप्रथम उस महान कर्मयोगी ने सांस्कृतिक दूत के रूप में विदेशों में भारतीय संस्कृति की पताका फहराई । एक महान देश भक्त और समाज —सुधारक होने के साथ—साथ उन्होंने राष्ट्रीय पुनरुत्थान की शक्तियों के संचालन में बहुमूल्य योगदान देकर विदेशी सत्ता के प्रहारों से जर्जरित राष्ट्र के पुनर्निर्माण का पथ प्रशस्त किया । उन्होंने संसार को दिखा दिया कि पद दलित और परतंत्र भारत में आज भी विश्व का मार्ग—दर्शन करने की शक्ति निहित है ।

स्वामी विवेकानन्द की उत्कृष्ट कामना थी कि विगत गौरव का स्वाभिमान संपूर्ण जाति में पुनः व्याप्त हो परतंत्रता के तिमिर और स्वधर्म के प्रति उत्पन्न होती अश्रद्धा के उस भीषण युग में भी उन्होंने परानुकरण की धारा को मोड़ दिया ।

<sup>३१</sup> राष्ट्रीयता की अवधारणा : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, पृ. ४७ (प्रकाश बुक डिपो, बरेली)

उन्होंने हिन्दू समाज को उसके 'स्व' से अवगत कराया और उस पर गर्व करने का आह्वान किया । भारतीय जीवन में धर्म का मुख्य स्थान होने के कारण वे भारत की उन्नति का मूलाधार उसकी आध्यात्मिक शक्ति को मानते थे । उन्होंने अध्यात्म का सम्बन्ध दैनिक जीवन से जोड़ा एवं बताया कि मुक्ति सब कुछ त्याग देने में नहीं है बल्कि कर्म ज्ञान और भक्ति की आराधना में है । उन्होंने सेवा को सर्वोत्तम धर्म मानते हुए कहा , "तुमने पढ़ा है, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, लेकिन मैं कहता हूँ दरिद्रदेवोभव, मूर्ख देवोभव । गरीबों , अशिक्षितों, अज्ञानियों और पीड़ितों को अपना ईश्वर मानों । इनकी सेवा की उच्चतम धर्म है ।"

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय व्यवहार के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अर्थ प्रत्यक्ष चरितार्थ कर दिखाया। उनका विचार था कि अपमानित और तिरस्कृत जीवन जीने की अपेक्षा मृत्यु का वरण श्रेयस्कर है तथा दौर्बल्य ही समस्त समस्याओं का मूल ।

उन्होंने " वीर भोग्या बसुन्धरा" का आदर्श राष्ट्रवासियों के समक्ष रखा शारीरिक दुर्बलता, मानसिक हीनता, अंध विश्वासों का परित्याग और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष से मुक्ति द्वारा ही जाति संगठित हो सकती है तभी राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकती है । विवेकानन्द के जीवन का यही संदेश है ।

१८९२ ई. में शिकांगो में सर्व-धर्म सम्मेलन (पार्लियामेंट आफ रिलीजन्स) हुआ उसमें सम्मिलित होने के लिए स्वामी अमेरिका गये वहाँ उन्हें भारतीय संस्कृति की महत्ता को समूचे विश्व को बताने का अवसर मिला । उनके व्याख्यान से पाश्चात्य विद्वान् अत्यन्त प्रभावित हुए । स्वामी जी ने सम्मेलन में कहा , " मैं प्रेम, मात्र प्रेम का ही उपदेश दे सकता हूँ । मेरी यह धारणा वेदान्त के इस सत्य पर आधारित है कि विश्व की आत्मा एक और सर्वव्यापी है..... पहले रोटी, फिर धर्म, जबकि लोग भूख से कर रहे हैं, हम उनके मस्तिष्क में धर्म दूँस रहे हैं भूख की तिलमिलाहट कोई भी दर्शन सन्तुष्ट नहीं कर सकता । मैं

ऐसे धर्म या परमेश्वर में विश्वास नहीं करता जो विधवा की आँखों के आँसू नहीं पोंछ सकता या जो अनाथों के मुह में रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं दे सकता ।”

स्वामी जी ने १६ वर्ष तक देश विदेश का भ्रमण किया तथा भारतीय सांस्कृति संदेश घर-घर पहुँचाया । ४ जनवरी, १९०२ को उनका निधन हो गया ।

### ईश्वरचन्द्र विद्यासागर :

इस काल में देशभक्तों एवं समाज सुधारकों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०—१८९१) का नाम विशेष है जिस प्रकार १८२९ का सती एक्ट राजाराम मोहन राय के नाम के साथ जुड़ गया । उसी प्रकार १८५६ का विधवा कानून विद्यासागर जी के नाम सम्बद्ध है इसे पास करवाने में उन्हें बड़ा ही परिश्रम करना पड़ा । केवल कानून पास कराकर ही वह शान्त नहीं हो गये इन्होंने अनेक विधवा विवाह स्वयं अपने खर्चे से आयोजित किये जिससे उन पर ५० हजार रूपये का कर्ज उस काल में चढ़ गया । बाल विवाह रोकने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे तथा स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार में वह तल्लीन रहे । भारतीय हरिश्चन्द्र जी ने स्व रचित मुकरी में विद्यासागर की प्रशंसा करते हुए कहा है—

“ सुन्दर बानी कहि समुझावै ।

विधवा गन सों नेह बढ़ावै ।

दयानिधान परम गुन— आगर ।

सखि सज्जन नहिं विद्यासागर ॥<sup>३२</sup>

### प्रार्थना समाज :

जिस समय बंगाल में ब्रह्मसमाज द्वारा सामाजिक तथा धार्मिक उत्थान का कार्य सम्पन्न हो रहा था उसी समय महाराष्ट्र में भी समाज सुधार की भावना का

---

<sup>३२</sup> भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ. ८१०

उदय हुआ । बम्बई १८६७ ई. में प्रार्थना-समाज की स्थापना इसी के परिणामस्वरूप हुई थी । वस्तुतः मूल प्रेरक केशवचन्द्र सेन ही थे । इस समाज के धार्मिक सिद्धान्त ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों पर ही आधारित थे किन्तु दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण में अन्तर था । प्रार्थना समाज का नेतृत्व आधुनिक महाराष्ट्र के आदि निर्माता न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे ने किया । वे ईश्वर को सर्वव्यापक मानते थे और मूर्तिपूजा के विरोधी थे । राष्ट्र-प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा था । रानाडे महोदय अछूतोद्धार, स्त्रीशिक्षा और विधवा विवाह के कट्टर समर्थक थे । उन्होंने बाल विवाह को भी समाप्त करने का प्रयास किया । इस संस्था ने महाराष्ट्र में दलितोद्धार के लिए सराहनीय कार्य किया । प्रार्थना समाज ने धार्मिक रूढ़ियों और अकर्मण्य का विरोध कर समाज में एक नवीन-चेतना जागृत की। रानाडे पुनर्विवाहोत्तेजक मंडल, सार्वजनिक सभा, “ बसन्तव्याख्यानमाला ” आदि की स्थापना में भी महत्वपूर्ण समाज को शिक्षित किए बिना समाज तथा राष्ट्र उत्थान सम्भव नहीं है ।

अतः अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना में उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया । प्रार्थना समाज तथा अन्य संस्थओं के माध्यम से उनके द्वारा किये गये कार्य महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुए ।

षष्ठ अध्याय  
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों  
में अभिव्यक्त राष्ट्रीय— चेतना

नाटक, काव्य, निबन्ध,  
पत्रिका एवं अन्य साहित्य,  
प्रेमघन के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन  
राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन ।

### षष्ठ अध्याय

#### बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय चेतना का अर्थ केवल देश प्रेम का गुणगान नहीं है । वह गहराई एवं बड़ी व्यापक साझेदारी का भाव है जो भारतीय साहित्य में वाल्मीकि से लेकर आज तक सूक्ष्म रूप से अभिव्याप्त है ।<sup>१</sup>

प्रेमघन—युग का साहित्य आधुनिक चेतना का साहित्य है । इस साहित्य में यह आधुनिक चेतना कहाँ से आई ? यह चेतना वस्तुतः उस राष्ट्रीय पूँजीवाद की देन थी जिसके तत्त्व मुगल काल में ही प्रकट होने लगे थे और जिसने भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया था । यूरोपीय व्यापारियों के आगमन से इस देश में राष्ट्रीय पूँजीवाद का विकास न हो सका, और यह देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया । सन् १८५७ ई. के विद्रोह के बाद विदेशी पूँजीवाद ने देशी सामन्तवाद के साथ गठजोड़ कर इस देश को लूटना और तबाह करना शुरू कर दिया। भारतेन्दु युग का साहित्य इस स्थिति के प्रति तीव्रप्रतिवाद का साहित्य है । उसमें एक ओर उपनिवेशवाद का विरोध और दूसरी ओर सामन्तवाद ।<sup>२</sup>

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है । इस युग के प्रमुख साहित्यकार पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन हैं । प्रेमघन के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करते समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य समाप्त हो चुका था तथा विक्टोरिया के घोषणा—पत्र से भारतीय जनता में भविष्य के लिए आशा की नई किरणें फूटने लगीं । पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने भारत के स्वर्णिम अतीत की गौरवमयी गाथाओं के गायन के साथ ही वर्तमान अधोगति के वास्तविक चित्रों को उपस्थित कर देश में नयी जागृति और चेतना का श्रीगणेश किया। उन्होंने देश की समृद्धि उन्नति और स्वतंत्रता के लिए कामना

<sup>१</sup> भुवनेश्वर गुरु मैता : (भूमिका) आधुनिक भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली) ।

<sup>२</sup> नन्द किशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास, पृ. ३८, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।



करते हुए स्वदेशभिमान की भावना का संचार किया और भविष्य के लिए शुभचिन्तन किया ।<sup>१</sup> पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेन्दु की तरह हिन्दी जगत में अवतरित हुए ।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के समय में विषय और शैली की दृष्टि से पौराणिक, प्रेमप्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक नाटक और विविध विषयों की प्रहसन-वार्ताएँ लिखी जा रही थीं । प्रहसन-वार्ताओं के लिखने का उस समय विशेष प्रचलन था । क्योंकि उस समय के नाटककारों में से प्रायः— पत्रकार भी थे और वे अपने पत्रों में हास्य व्यंग्यादि के लिए रचनाएँ लिखा करते थे । प्रेमघन के सम्मुख संस्कृत शैली, लोक नाट्य शैली, पारसी —नाट्य शैली तथा अंग्रेजी नाट्य शैलियों का आदर्श था । अभिनय या मंच की दृष्टि से उस समय लोक नाट्य परम्पराएं— रामलीला, रासलीला और नौटंकी आदि थीं तथा पारसी थियेटर्स थे ।<sup>२</sup> बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के साहित्य में देशभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना प्रचुर रूप से विद्यमान है । प्रस्तुत अध्याय में राष्ट्रीय चेतना के परिवेश में प्रेमघन साहित्य का विद्यानुसार मूल्यांकन किया जायेगा—

### नाटक :

पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने चार नाटक और १४ (चौदह) प्रहसन आदि की रचना की है । जो कि प्रस्तुत किये जा रहे हैं— (१) माधवी माधव नाटक, (१८८५) (२) वारांगना रहस्य महानाटक (१८८९), (३) भारत सौभाग्य (सन् १८८९) (४) प्रयाग रामागमन सन् (१९११) ।

प्रहसन आलाप— (१) पाठशाला कुतूहल सन् १८७१ (२) घोघेमल साहू ओर सिविलाइज्ड जेंटिलमैन सन् १८८१, (३) रावो रोवो रोते जावो सन् १८८१, (४) बीवी महतरानी और ब्राह्मणी की बातचीत सन् १८८१, (५) जुबिली जमघट

<sup>१</sup> डॉ. आरिफ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. १९९ साहित्य प्रकाशन आगरा, प्र.सं. १९९५

<sup>२</sup> डॉ. रामचन्द्र प्रोहिट : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. २१० ( अनुपम प्रकाशन, जयपुर, ३ )

या कि यारों का ठह सन् १८८७, (८) पशुप्रपंच सन् १९०४, (९) अपूर्व सम्मिलन सन् १९०४, (१०) कुट्टी और जुट्टी सन् १९०७, (११) उपासक और परिहासक सन् १९०७, (१२) वक्ता और स्त्रोता १९०७, (१३) एक आर्य समाजी बरात के बराती और उनके दर्शक सन् १८९३, (१४) पांडे और पादड़िन का समागम १८९५ ।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन द्वारा रचित नाटकों को विषय एवं प्रवृत्ति भेद के आधार पर पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रेमधान, सामाजिक के उपादानों के आधार पर रचित, प्रहसन और प्रतीकवादी इन वर्गों में रखा जा सकता है । देश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की छटा इन नाटकों में सर्वत्र दिखाई देती है।

भारतेन्दु की भाँति प्रेमघन भी साहित्य को जनहित का साधन मानते थे । उन्होंने साहित्य रचना द्वारा देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का मंत्र फूँका । प्रेमघन के समय में भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार—'प्रसार बहुत अधिक नहीं हुआ था उस समय में भारतवर्ष की बहुत बड़ी जनता अनपढ़ थी । प्रेमघन जानते थे कि काव्य के पठन पाठन करनेवाले मनुष्यों की संख्या देश में बहुत अधिक नहीं है काव्य निबन्ध आदि द्वारा अनपढ़ जनता तक विचारों को पहुँचना कठिन है । अतः उन्होंने नाटकों रूपकों तथा प्रहसनों को माध्यम बनाया । प्रेमघन ने स्वयं अनेक श्रेष्ठ नाटक लिखे और उनका सुन्दर अभिनय किया । इससे जनमन आन्दोलित हो उठा ।

नाटकों को काव्य की सर्वश्रेष्ठ विधा माना गया है—“काव्येषु नाटकं रम्यम्” नाटक शास्त्र में कहा गया है कि नाटक काव्य की सर्वश्रेष्ठ विधा है इसमें धर्म, क्रीड़ा, अर्थ, हास्य, युद्ध, काम, वध आदि को प्रस्तुत किया गया है—

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।

क्वाचिद्धर्मः क्वविघत्क्रीडा क्वचिच्छ्रमः ॥

क्वद्विष्यं क्वचिद्युद्धं क्वचिदकामं क्वचिद्धधः ॥

नाटक, स्वांग, तमाशा आदि का महत्त्व बताते हुए कबीर ने कहा—

कथा होय तहँ खोता सोवै, वक्ता मूड़ पचाया रे ।

होय जहाँ कहीं स्वांग तमाशा, तनिक न नीद सताय रे ॥

प्रेमघन के नाटक व ग्रहसन में देश के प्रति प्रेम और राष्ट्रीय चेतना के भाव सर्वत्र मिलते हैं ।

वारांगना हास्य महानाटक नामक रूपक नाटक में वर्तमान समय के समाज में फैली बुराइयों एवं दुर्व्यसनग्रस्त का चित्रण किया गया है इसमें उस समय के दूषित तत्वों का सही अनुमान लगाया जा सकता है जो हिन्दू समाज को दुर्दशाग्रस्त बनाने में अंग्रेजों का हाथ था । नाटक के नायक प्रथम अंक में राजीव लोचन जैसे सरल हृदय एवं अनुभवी युवक को उसके कुटिल एवं लंपट साथी अपने कुचक्र में फंसा लेते हैं, दूसरे अंक में राजीव लोचन वेश्याओं, लुटेरों, लंपटों और दुश्चरित्र व धूर्त मित्रों से घिरा हुआ है वह दुर्दशाग्रस्त हो चुका है । राजीव लोचन दुबारा शराब माँगते हुए अपने मित्र शास्त्री से पूँछता है—‘‘क्योंकि महाराज ! तो कहाँ तक कुछ दोष होगा ? उनका मित्र उत्तर देता है । भला इसमें क्या दोष ! प्रथम तो मदिरा ही चौदहों रत्नों में एक सर्वोत्कृष्ट रत्न है और फिर इन्हीं चौदहों रत्नों में से एक पीने वाली है, पुनः मद्यपान करने लगता है ।

राजीव लोचन सौन्दर्य और प्रेम का प्यासा है । हृदय से शरीफ और उदार है । उसमें भले बुरे की भेद बुद्धि नहीं है । वह शृंगारी सुन्दरी नामक वेश्या को एक बार देख कर मुग्ध हो जाता है तथा उसके मन में विवाह की लालसा उत्पन्न होती है । मन ही मन वह कामना करता है, अहा, हा, हा, क्या हावभाव और कैसा कटाक्ष है यह बीबी बन जाय तो । फिर संसार में सार ही और क्या बच जाय । राजीव लोचन को उसके कुचक्रही साथियों ने कामिनी कादम्बिनी ने आसक्ति में ऐसा फसाया कि उससे कोई मुक्ति का उपाय नहीं रहा । उसकी दुर्दशा देखकर विवेक वर्धन मर्माहत हो उठा । शराब के नशे में चूर, वेश्या के

साथ नाचते नाचते जब राजीव लोचन चूर हो गया । तब कहा है यह कैसा भयंकर दृश्य है । राजीव लोचन अपने भले बुरे की चिन्ता न कर दुबारा शास्त्री से प्रश्न करता है, “ यह तो सब सच है पर सचमुच कुछ दोष है या नहीं । (गवेन्द्र से क्यों पंडित जी इसमें जो लोग दोष कहते हैं सो कैसा है और अपना शास्त्र समर्थित उत्तर प्रस्तुत करता है, महाराज सच पूछिये तो दोष कुछ भी नहीं है मुख्य धर्मशास्त्र मनुसंहिता में भगवान् मनु कहते हैं—

ना मांसं भक्षसे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरेषां भूतानां निवृत्तिस्तु महा फला ॥

अर्थात् मांस, मद्य, मैथुन से कुछ दोष नहीं क्योंकि यह जीवों का साधारण धर्म है, हाँ यदि इससे बचा रहे तो बड़ा फल है ।”<sup>५</sup>

राजीव लोचन को जब यह मद्यपान के समर्थन में अपनी व्यवस्था देता है तब विवेक वर्धन वाजपेयी उससे कहता है— “ अरे महाराज आप साक्षात् भूदेव ब्राह्मण हैं और फिर पंडित जन होकर मद्यपान की व्यवस्था क्यों कर देते हैं । अंग्रेजी विद्या के प्रभाव से यों ही धर्म का नाश होता जा रहा है ।<sup>६</sup> इस पर गवेन्द्रशास्त्री उत्तर देता— “सुनिये बाबू साहेब ! व्यवस्था ब्राह्मण छोड़ बनिए तो देने से रहे और हमारे तो जैसे यजमान मिलें जो पूछें वही बता कर उन्हें प्रसन्न करना ठहरा । मैं तो अश्वमेध की व्यवस्था दे दूँ कोई करनेवाला भी तो हो और जो मैंने कहा उसे पुस्तक मंगाकर देख लीजिए, यदि ये बातें न हों तो मैं अवश्य दोषी ठहराया जाऊँ और मद्य मांस यह तो हिन्दुओं का भोजनपान और नैसर्गिक धर्म है ।”<sup>७</sup>

राजीव लोचन आँख मूँदकर माला का स्पर्श सुख अनुभव करता हुआ अहा (सुखं निषिंचन्तमिवाभृत्वंत्वचि ) । गवेन्द्र अरे ! भाई अब तो कुछ दक्षिणा देते

<sup>५</sup> वारांगना रहस्य, महानाटक, प्रथम अंक, चतुर्थ गर्भांक ।

<sup>६</sup> वही,

<sup>७</sup> वारांगना रहस्य, महानाटक, प्रथम अंक, चतुर्थ गर्भांक ।

जाओ ?”<sup>८</sup> बातचीत में उसे संस्कृत, फारसी और हिन्दी के उद्धरण प्रस्तुत करने का शौक है । भंग के प्रति उसकी विशेष रुचि है उसकी प्रशंसा करता हुआ वह अघाता नहीं । नाटक में भंग की प्रशंसा में उसका एक लम्बा गीत दिया हुआ है जो लगभग पाँच छः पृष्ठों का है भंग को गंगा की बहिन बतलाते हुए वह कहता है—

गंग भंग द्वै बहन है रहत सदा सिव संग ।

मुरदा तारीन गंग है जिन्दा तारीन भंग ॥

भंग के नशे में मनुष्य की क्या दशा होती है इसका वह इन शब्दों में उल्लेख करता है —

घर के जानै मर गये मन में परम आनन्द ।

लिहें जात बैकुण्ठ को मोहना तेरी भंग ॥

“पाठशाला कुतूहल” में प्रेमघन ने अपने समय के दूषित समाज के वातावरण को हास्य व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है, कला की दृष्टि से यह एक अत्यन्त साधारण कोटि की रचना है प्रारम्भ में नांदी और सूत्राधार की योजना हुई ।

‘घोघेमल साहु और सिविलाइज्ड जैटिल मैन’— इस प्रहसन में अंग्रेजी सभ्यता एवं शिक्षा का प्रभाव तथा भारतीय जन सामान्य में शिक्षा के प्रति दृष्टि को व्यक्त किया है ।

‘रोवो रावो रोते जावो’— इस प्रहसन में ज्योतिष सम्बन्धी अंधविश्वास से सम्बन्धित है— देश विदेश के ज्योतिषियों की इस सूचना से अवगत कराया जाता है कि दुनियाँ में शीघ्र ही प्रलय होनेवाला है यह सुनकर गोबर गणेश बुरी तरह घबड़ा उठता है और अन्त में लिखता हुआ कहता है—

अरे क्या ऐसा फिर क्या तब तो रोवो ! रोवो !! रोते जावो !!

<sup>८</sup> आनन्द कादम्बिनी, माला—६, मेघ ८, पृ. १४२

आर्या किसकी भार्या — में प्रेमघन ने उस समय की घटनाओं से सम्बन्धित प्रहसन लिखा देश में उस समय रूसी आक्रमण के बादल मँडरा रहे थे और भारत उस समय भयग्रस्त था । इसमें भारत को आर्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके सभी पात्र विभिन्न देशों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं ।

‘जुबिली जमघट या कि यारों का ठड्ड’ : का सम्बन्ध महारानी विक्टोरिया की इंग्लैण्ड में मनायी जानेवाली जुबिली जिसमें भारतीय राजाओं के प्रति समुचित सम्मान का व्यवहार नहीं हुआ । इसमें भारत के प्रति अंग्रेजी शासन—नीति के रुख पर व्यंग्य किया है ।

‘पशु प्रपंच’ : प्रतीकात्मक प्रहसन है इसके सभी पात्र पशु हैं और वे विविध देशों या स्थानों के प्रतीक हैं । इसका विषय ऐतिहासिक राजनीतिक है । ई. सन् १९०४ के भारत तिब्बत के झगड़े को लेकर यह प्रहसन लिखा गया है ।

‘कुट्टी और जुट्टी’ नामक प्रहसन का सम्बन्ध बंग विभाजन की घटना से है । इसमें अंग्रेजों की इस नीति के प्रति देशवासियों का रोष प्रकट किया गया है ।

पंडित, मुंशी और महाजन ’ का विषय आर्थिक है इसका सम्बन्ध सरकार की आयकर नीति से है ।

‘प्रयाग रामागमन’ के राम तुलसी के राम न होकर वाल्मीकि के राम हैं । देवी गुणों से सम्पन्न होते हुए भी वे मानव हैं । राम की भाँति प्रेमघन ने सीता व लक्ष्मण का चरित्र भी भारतीय मर्यादा एवं परम्परा के अनुसार चित्रित किया है । सीता पति—परायण भक्ति भावना से पूर्ण सुकुमार व विनम्र नारी है, लक्ष्मण पौरुषवान अग्रजानुसारी विनयशील भाई है । उनके मन में भाभी के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा है ।<sup>१</sup>

‘प्रयाग रामागमन’ रामलीला नाटक है किन्तु रचना की दृष्टि से वह एकानकी पद्धति पर रचा गया है । वह रामलीला नाटक होते हुए भी उस शैली के नाटकों से

<sup>१</sup> डॉ. रामचन्द्र पुणेहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ. २१८

अधिक विकसित और नाटकीय है इसकी तो विशेषताएँ—एक तो वह एकांगी है और दूसरे उसमें रामलीला का एक अंश प्रस्तुत किया गया है और वह अंश भी रामलीला का प्रमुख अंश नहीं है । रामलीला शैली के नाटकों के कथोपकथन प्रायः पद्यबद्ध हुआ करते हैं किन्तु प्रयाग रामागमन में पद्य का कहीं कहीं प्रयोग किया गया है और विशेषता वर्णनों के लिए संस्कृत नाटकों की जो पद्य परम्परा उसमें भी मिलती है इस प्रकार वह रामलीला नाटक होते हुए भी रचना विधान की दृष्टि से उस शैली के नाटकों से भिन्न है वस्तुतः वह हिन्दी एकांगी परम्परा की एक आरम्भिक रचना है उसमें संकलनत्रय का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है ।

वारांगना रहस्य, 'भारत सौभाग्य' और 'पाठशाला कौतूहल का' आरम्भ नांदी षष्ठ सूत्रधारादि से हुआ—

मंगलायतन श्रीपति मंगल करें तुमारा ।

इन्द्र, वरुण कुबेर दे तुम्हें सदैव हमारा ॥

रवि प्रताप अरु प्रबल पराक्रम वायु बढ़ावें ।

यम सब शत्रु समूह नाश कर धूर मिलायें ॥

तब शुभ शरीर और सुयश की रुद्रदेव रक्षा करें ।

रह सानुकूल सब आपके विघनों को गणपति हरे ॥<sup>१०</sup>

“बीबी मेहतरानी और ब्राह्मणी से बातचीत” : यह प्रहसन जाति—पौति के भेदवर्ण से सम्बन्धित है ।

‘एक आर्य समाजी बरात के बराती और दर्शक’ : इसमें प्रेमघन ने ‘दो आर्य’ आर्य समाजी मतावलम्बियों की खण्डनात्मक प्रवृत्ति पर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है ।

“पांढे और पादड़िन का समागम ” इस प्रहसन में प्रेमघन ने ईसाई धर्म के मानने वालों में अपनी कट्टरता तथा उनके प्रचारात्मक कार्यों के सम्बन्ध में व्यंग्य प्रस्तुत

<sup>१०</sup> प्रयाग : रामागमन, वि.सं. १९६८, पृ. ३४

किया है। उस समय की सामाजिक धार्मिक विषयों पर जो नाट्य रचनाएँ मिलती हैं प्रेमघन ने अपने प्रहसन वार्ताओं के द्वारा समाज के विभिन्न पक्षों एवं कुरीतियों पर व्यंग्य किया है।

भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाटक के स्थान पर प्रेमघन ने " भारत सौभाग्य" नाटक सन् १८८९ ई. में लिखा था। यह छः अंकों में लिखा गया है— प्रथम अंक में बदइकबाले हिंद की कृपा से फूट वैर और कलह की करामात से देश की दुर्दशा तथा सरस्वती और दुर्गा का प्रयाण दिखलाया गया है। द्वितीय अंक में देश में मारकाट, लूट, तोड़फोड़, फूँक सुकृत देवी का विलाप और भारत को अचेत अवस्था में दिखलाया गया है, तृतीय अंक में बदइकबाले हिंद के प्रभाव से विविध भागों में विद्रोह भड़क उठता है। चतुर्थ अंक में लक्ष्मी भी प्रस्थान कर जाती है यहाँ के व्यापार उद्यम व कृषि कर्म नष्ट हो गये हैं और बेकारी फैल गयी है। लार्डरिपन के यहाँ से चले जाने पर भारत को अतीव खेद होता है। भारत जातीय सम्मिलनी (इण्डियन नेशनल काँग्रेस) की स्थापना का विचार उत्पन्न होता है। पंचम अंक में मन्दारस (मद्रास) में नेशनल काँग्रेस की सूचना सुनकर बदइकबाले हिन्दू को शोक होता है और पुनः अपनी घातक करतूत पर उतारु होता है। कुछ मुसलमानों द्वारा काँग्रेस का विरोध होता है जातीय सभा से भारत सुकृत देवी का प्रादुर्भाव होता है। षष्ठ अंक में भारतवासी लंदन में विक्टोरिया दरबार में अपनी माँगें रखते हैं और राजराजेश्वरी विक्टोरिया उन्हें स्वीकार कर लेती हैं। सरस्वती एवं लक्ष्मी सौभाग्यवती देही पुनः लौट आती हैं। आरम्भ में अंग्रेजी राज्य के प्रति आशा और उसकी प्रशंसा तदनन्तर इसके प्रति निराशा और फिर इण्डियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना देश के उद्धार की आशा व्यक्त की गयी है। ' भारत सौभाग्य' नाटक के सूत्राधार एवं नटी के समबंत गान से उनके देशहित की भावना प्रकट हुई है —

मंगल करै इस भारत को सकल अमंगल बेगि बहाय ।



आलस निद्रा सों उठि जागै भारतवासी धाय ॥

एका सुमति कला विद्या बल तेज स्वत्व निज पाय ।

उद्यम पगे धरत रत उन्नति देश कौ चित चाय ।

दुःख कलंक धोय देवै फिर वे ही दिन दिखलाय ॥<sup>११</sup>

प्रेमघन के नाटकों की गद्य भाषा सामान्यतः खड़ीबोली हिन्दी रही है ।

परन्तु पात्र प्रायः अपनी—अपनी भाषा का प्रयोग करते या हिन्दी पर उनका रंग चढ़ाते देखे गये हैं । यदि पंजाबी है तो वह प्रायः पंजाबी में ही, बंगाली है तो बंगला में, उर्दू भाषी है तो उर्दू ही में , और अंग्रेजी—भाषी है तो अंग्रेजी गर्भित टूटी हिन्दी में बोलता है अर्थात् पात्रानुसार भाषा वैविध्य का यह रूप 'वारांगना रहस्य महानाटक और भारत सौभाग्य रूप में सहज ही देखा जाता है —

बंगाली पात्र —चौपट. ( मद्यपान कर उन्मत्त) ए उलू का माफीक आइडिल बैठने से की आनन्दो लाभ होने शेकता ? सभूभोगन ! इंगरेज लोगों का माफीक बाल नाच क्यानो कोरा ज़ाय ? लेट् अस डैन्स ।<sup>१२</sup>

अंग्रेजी पात्र — वेल् ! जब अम विलायट से चला, याँ का बरा टारीफ सुना ठा, मगर अफसोस याँ तो सब बेजान और मुर्दा डिकलाई डेटा हाय० क्या अम मुर्दा पर हकूमट करने को आया ? नई ऐसा नई ओने सकता (नाड़ी धरता है) ओ ! ये अबी जीटा हाय ! (जगाकर) वेल् ! उठो उठो क्या सोटा ( भारत आँख खोलता है पर बोलता नहीं) वेल् । बोलता क्यों नई ! (प्रेस ऐक्ट का ताला देखकर ) आ! हाउकेन् ही स्पीक ! (ताले को लेकर हथौड़ी से तोड़ता है) ।<sup>१३</sup>

पंजाबी पात्र : सिक्ख— नई ! नई ! मेम साहब ! आप सॉडेनाल आओ, होर कोई बातों दी फिकर ना करो, सारा हिन्दुस्तान दा आदमी बेमाण थोडयाई है, ये

<sup>११</sup> प्रयाग —रामायण वि.सं. १९६८, पृ. ३४

<sup>१२</sup> वारांगना रहस्य महानाटक : आनन्द काटम्बिनी, माला—६, मेघ—८, पृ. १४५

<sup>१३</sup> भारत सौभाग्य रूपक, सन् १८८९, पृ. ६६

बद—माशां दी बातों पूल जाओ, देक्खो मैड़े पंजाब दे बिच्च बल्बे दा नाम भी कोई नहीं जाणदा न बम्बई, न मदरासए होर ऊद्भोत पूरबदे बिच्च भी किसी को मालूम नई हे, ये तो इन्द्र नालायकों दी खराबी है, जिन्हा पली बुरी बातों दी तमीज होर पिछाणा भुतलुक नई हे. आप विशक्क चलो, माडे करदे बिच्चर : हो होर चैण करो, डर दा कुछ मतबुल नहीं है ?<sup>१४</sup>

उर्दूभाषी पात्र : खुर्शेद—हुजूर ! नाम है सिंगार सुन्दरी, आप बनारस की एक बहुत ही मशहूर मुअज्ज खानदान की तवायफ है । लुट्टो बाई साहबा अपने आलेम शबाबा में तो बड़े—बड़े उमरा और रोअसा के जान और माल सफाई कर चुकी है, अब उनके जीवन के आफताब को ढलते देखकर कुदरत ने इस चाँद के टुकड़े को भी भेज दिया खुदा खैर करे—अभी फितना है किसी रोज कयामत होगी ।<sup>१५</sup>

### निबन्ध :

निबन्ध आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से निबन्ध शब्द के, विभिन्न शब्दकोशों की सहायता से, भले ही कितने ऐसे अर्थ निकाल लिये जायें तो अंग्रेजी 'एसे' शब्द के समानार्थक प्रतीत होते हैं।<sup>१६</sup> हिन्दी गद्य में निबन्ध का उदय आधुनिक युग में ही हुआ था। भारतेन्दु युग के मुख्य साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने आनन्दकादम्बिनी (मासिक) और नागरी नीरद (साप्ताहिक) पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इन पत्रों में अनेक निबन्ध प्रकाशित हुये । जैसे— हिन्दी भाषा का विकास, परिपूर्ण प्रयास, उत्साह, आलम्बन आदि । 'प्रेमघन' की भाषा में आलंकारिकता कृत्रिमता और

<sup>१४</sup> वही, पृ. ८२

<sup>१५</sup> आनन्द कादम्बिनी : माला—६, मेघ ५—६, पृ. ९२

<sup>१६</sup> डॉ. शैलेश जैदी : (संपा.) तल्लश, त्रैमासिक पत्रिका, अलीगढ़

चमत्कारोत्पत्ति का प्रवास मिलता है।<sup>१७</sup>

प्रेमघन का समय प्रायः आन्दोलनों और विशेष परिवर्तनों का समय था, जिसमें नवीन सभ्यता, शिक्षा व नीति के प्रभाव स्वरूप सभी क्षेत्रों में नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो रही थी। क्या धर्म और क्या समाज, क्या राजनीति और क्या आर्थिक स्थिति, सभी दृष्टियों से देश का काया पलट हो रहा था। परम्परा और नवीनता के संघात से देश की परम्परागत तीव्रता का जैसा अनुभव भारतेन्दु के समसामयिक लेखकों का हुआ वह अभूतपूर्व था, अतः प्रेमघन की दृष्टि का अपने समय में ज्वलन्त समस्याओं पर केन्द्रित रहना स्वाभाविक था यही कारण है कि न केवल उनकी ही प्रत्युत अनेक समसामयिक अन्य लेखकों की भी प्रवृत्ति प्रायः वैसी ही रही है प्रेमघन में युग चेतना अपेक्षाकृत आधुनिक थी।

अतः उनमें अपने समय की स्थिति व समस्याओं को ऐतिहासिक या परम्पराक्रम में देखने की प्रवृत्ति विशेष रूप से परिलक्षित होती है। प्रेमघन ने भाषा, समालोचना, पत्रकारिता, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं, उन सभी निबन्धों पर विचार किया जा रहा है—

नागरी भाषा या देश या इस देश की बोलचाल की भाषा हिन्द, हिन्दू और हिन्दी, हमारी प्यारी हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से दिये भाषण का सम्बन्ध प्रमुखतः भाषा और अक्षर से रहा है प्रेमघन जी ने इनमें भाषाविद् की भाँति हिन्दी भाष्य के विकास, उसके नाम—अभिप्राय एवं महत्त्व के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया गया है उन्हें अपनी भाषा हिन्दी से विशेष प्रेम था और उसी के उत्थान एवं समृद्धि के लिए वे भारतेन्दु की भाँति आजीवन प्रयत्नशील रहे।

<sup>१७</sup> डॉ. गणपतिचन्द गुप्त : साहित्यिक निबन्ध, पृ. ४४०

किसी देश जाति और उसकी भाषा का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध हुआ करता है उनमें एक की उन्नति दूसरे की उन्नति का कारण हुआ करती है । 'हिन्दू हिन्दू और हिन्दी में प्रेमघन अभिन्न सम्बन्ध मानते थे । इनकी उन्नति परस्पर अन्योन्याश्रित थी । वे लिखते हैं— 'क्योंकि उसमें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी देश की उन्नति तहाँ तक हो ही नहीं सकती कि जहाँ तक उस देश के निवासियों की उन्नत दशा नहीं और यावत्पर्यन्त उस देश की भाषा की उन्नति नहीं तब तक उस जाति की उन्नति कैसे मानी जायेगी ?'<sup>१८</sup> खड़ी बोली हिन्दी को वे 'नागरी' के नाम से अभिहित किया करते थे । वे लिखते हैं, "उस भाषा का जो सबी ठौर के सभ्य समाज की भाषा है और जिसमें परस्पर एक प्रान्त के नागरिक जन दूसरे देश वा प्रान्त के लोगों से वार्तालाप करते, अथवा जिसमें आज पुस्तकें आज लिखी जाती और समाचार —पत्र छपते—छपते उसका कुछ विशेष नाम अवश्य ही होना उचित है । मैं सदा से उसे नागरी भाषा ही कहता और लिखता आया हूँ ।'<sup>१९</sup> खड़ी बोली की तरह उन्होंने ब्रजभाषा और संस्कृत को भी नागरी कहा है क्योंकि किसी समय उनका भी इस प्रकार प्रयोग होता था ।<sup>२०</sup> प्रचलित हिन्दी (खड़ी बोली) के लिए इस शब्द का प्रयोग कम्पनी काल में भी देखने में आया है । कम्पनी के एक आईन में इस प्रकार मिलता है— "इस आईन के पावने पर ऐक —ऐक केता इसतहारनामा नीचे के सरह से फ़ारसी वो नागरी भाषा वो अच्छर में लिखाये के अपने मोहर वा दसख़त से अपने जिल्ला के — कचहरी में भी तमामी आदमी के बुझने के वासते लटकावही ।'<sup>२१</sup>

<sup>१८</sup> हिन्दू हिन्दी और हिन्दी प्रेमघन सर्वस्व भाग-२, पृ. ४५-४६

<sup>१९</sup> तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता, पहला भाग, पृ. २६

<sup>२०</sup> वही, पृ. २८

<sup>२१</sup> कचहरी की भाषा और लिपि, प्र. चन्द्रावली, पृ. २७

प्रेमघन के भाषा सम्बन्धी निबन्धों में प्रायः उर्दू के प्रबल विरोध और हिन्दी के प्रबल समर्थन की भावना मिलती है । इसका मूल कारण था सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति । देश के अन्य प्रदेशों में राजकाज प्रायः वहीं की भाषा में होता था किन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्थिति कुछ भिन्न थी । वहाँ बहुसंख्यक लोगों की भाषा की भाषा हिन्दी को उपेक्षित कर अरबी—फ़ारसी लिपि में लिख जाने वाली उर्दू को कचहरियों में मान्यता प्रदान की गयी थी। मुसलमानी शासन और कम्पनी के शासनकाल में भी शाही फरमानों जिस हिन्दी फ़ारसी को स्थान दिया जाता था<sup>२२</sup> उसकी ऐसी उपेक्षा विस्मयकारी थी । हिन्दी की तुलना में, उर्दू भाषा और लिपि के दोष सर्वविदित थे । हिन्दी की यह अपेक्षा न केवल कचहरियों और न्यायालयों में ही हुई बल्कि वह विश्वविद्यालयों से भी बहिष्कृत थी ।<sup>२३</sup> उर्दू लिपि के दोषों को देखकर जब सरकार ने उसे दूर करने का प्रयत्न किया तो हिन्दी भाषियों के सम्मुख एक दूसरा ही संकट आ उपस्थित हुआ । सरकार ने अरबी फ़ारसी लिपि के स्थान पर अंग्रेजी या रोमन अक्षर चालू करने चाहें, परन्तु इससे जनता को कोई लाभ न होने वाला था बल्कि यह कदम और भी दुखदाई था जनता के लिए हितकर तो तब होता जब हिन्दी के साथ नागरी अक्षरों का व्यवहार होता ।

प्रेमघन लिखते हैं— “यद्यपि कोई आश्चर्य का विषय नहीं है क्योंकि किसी राजा का अपने अक्षरों का आदर करना स्वाभाविक है तो भी जब तक उस भाषा का प्रचार इष्ट न हो तब तो और की अरंखी और के अंग में पहनाने का सदृश्य यह भी एक प्रकार की विडम्बना ही है, अर्थात् देशभाषा के संग देश के विशुद्धाकर का प्रचार देना न्यायानुमोदित है और इसी रीति से कार्य की सुगमता और शुद्धता तथा प्रजा की प्रसन्नता एवं बिना कठिनता के उसके कार्य निर्वाह की

<sup>२२</sup> खड़ी बोली का आन्दोलन, वि.सं. २०१३, शितिकंठमिश्र, पृ. ५३

<sup>२३</sup> हमारे देश की भाषा और अक्षर : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-२, पृ. ५३

लोगों ने जब इसे ईजाद की हुई भाषा कहा तो प्रेमघन का उत्तर मिला, 'रहा यह कि ईजाद जदीद अर्थात् नवीन निर्मित है और आज कल के लोगों ही से उसने जन्म पाया है । उत्तर में हमें इतना ही कह देना काफी होगा कि भाषा बनाई नहीं जा सकती किन्तु स्वयं बन जाती है और यदि यह भाषा नवीन है तो क्या आगे के लोगों की बोली फारसी थी या अर्बी ? अगले मनुष्य गूंगे थे या बोलने की आवश्यकता ही न थी । '²⁹ भाषा सम्बन्धी विवाद से उस समय भाषा विषयक जटिल परिस्थिति का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है तथा यही अनुमान लगाना सहज है कि हिन्दी को प्रायः विरोधों का सामना करना पड़ा है ।

प्रेमघन हिन्दी को समस्त प्रान्तीय भाषाओं में प्रधान सबसे प्राचीन मानते थे । वे लिखते हैं— " अस्तु हमारी भाषा और सब प्रान्तीय भाषाओं से प्रधान और प्राचीन है, तथा एक लेखे की यह सबकी जननी है । क्योंकि सामान्यतः संस्कृत और विशेषतः प्रधान वा महाराष्ट्र प्राकृत से इसका अद्यावधि साक्षात् सम्बन्ध वर्तमान है । पीछे से पड़ा इसका 'हिन्दी' नाम भी यही साक्षी देता है अर्थात् वह भाषा कि जो समस्त हिन्द वा हिन्दुस्तान की हो । '³⁰ समस्त देश के व्यवहार की एक भारतीय भाषा (खड़ी बोली) के प्रेमघन ही सदा से नागरी भाषा कहते आये हैं कई लोग इसे आर्य भाषा के नाम से अभिहित करने के पक्ष में थे । परन्तु प्रेमघन की दृष्टि में इसके लिए भारतीय नागरी भाषा ही सर्वाधिक उपयुक्त नाम था ।

प्रेमघन को खड़ी बोली के लेखकों की यह प्रवृत्ति अनुचित प्रतीत होती थी कि वे अपनी कविताओं या लेखों में संस्कृत और उर्दू—फारसी व अंग्रेजी भाषाओं के शब्दों का व्यवहार करने में तो नहीं हिचकते हैं। पर ब्रजभाषा के किसी भी

²⁹ वही

³⁰ तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन : कलकत्ता के सभापति का भाषण, संवत् १९७०, पृ. २३४

सरलता सम्भावित हो सकती है । अस्तु यद्यपि यह आधा तीतर आधा बटेर की कहावत के अनुसार अधूरा न्याय सद्नुष्ठान है ।<sup>२४</sup> जनता के हित को दृष्टि में रखकर प्रेमघन यही उदचित समझते थे कि हिन्दी भाषा के संग हिन्दी अर्थात् नागरी अक्षरों का प्रचार इस देश के राजकीय न्यायालयों में किया जाय ।<sup>२५</sup> उन्होंने पश्चिमोत्तर प्रदेश में होनेवाले इस अन्याय के विरुद्ध बार—बार आवाज उठाई तथा इस सम्बन्ध में उन्होंने हिन्दी पत्रकारों तथा लोगों को संगठित होकर प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया ।

हिन्दी विरोधी लोग यहाँ तक कहते थे कि हिन्दी (खड़ी बोली) कल्पित भाषा है और वह उस देश की भाषा नहीं बल्कि हिन्दी हरफों में लिखी उर्दू जबान ही है । प्रेमघन ने इसका प्रतिवाद किया, उन्होंने अपने सभापति भाषण में हिन्दी की परम्परा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उसे इसी देश की भाषा सिद्ध किया है तथा साथ ही उर्दू को उसी का एक भेद बतलाया है ।<sup>२६</sup> हिन्दी विरोधी लोगों को उत्तर देते हुए वे लिखते हैं— खैर ! अब मैं पूछता हूँ कि यह भाषा यहाँ की नहीं तो यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका के किसी जंगली व पहाड़ी असभ्य जाति की है, वा काबुल के मुगलों की, वा दुनिया की बाहर कहीं के शैतानों की बोली है, वही राय है ।<sup>२७</sup>

आगे वे कहते हैं कि जिस प्रकार बंगाल देश की बोली बंगला, गुजरात की गुजराती ओड़िसा की ओड़िया और तैलंग की तैगलू, महाराष्ट्रों की महाराष्ट्री, अंग्रेजों की अंग्रेजी, जर्मनियों की जर्मनी और अरब देश की अरबी है वैसे ही यह भाषा भी यहाँ हिन्दुओं की सहज भाषा है ।<sup>२८</sup>

<sup>२४</sup> हमारे देश की भाषा और अक्षर : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, पृ. ५३

<sup>२५</sup> वही, पृ. ५५

<sup>२६</sup> वही, ५६—५८

<sup>२७</sup> तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कलकत्ता, कार्यकारिणी, पहला भाग— १९७०, पृ. ३३—३४

<sup>२८</sup> नागरी भाषा या उस देश की बोलचाल की भाषा : प्रेमघन सर्वस्व, पृ. ४

शब्द, पद या मुहावरे के प्रयोग से परहेज करते हैं । समय की दृष्टि लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है । उस काल की भाषा विषय स्थिति के परिचायक हैं ।

अर्थ और राजनीति में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । विशेषतः अंग्रेजों की भारत के प्रति सारी नीति अर्थ आधारित थी । उनके साम्राज्य विस्तार की नीति का मूल भी यही थी । भारत अंग्रेज व्यापारियों के रूप में आये थे । अपना शासन स्थापित कर उन्होंने देश से अर्थ की दृष्टि से पूरा लाभ उठाया था उनकी अर्थनीति पूर्णतः शोषणात्मक थी ।

भारतेन्दु लिखते हैं—

भीतर भीतर सब रस चूसै ।

हँसि—हँसि के तन मन धन मूसै ॥

जाहिर बातन में अति तेज ।

क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज ॥<sup>३१</sup>

प्रेमघन ने कविताओं की भाँति अपने लेखों में भी अंग्रेजी की अर्थ नीति व राजनीति पर प्रकाश डाला है । देश की समसामयिक परिस्थितियों के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया जहा चुका है ।” अंग्रेजों की शोषणात्मक नीति से देश को असहाय बना दिया था । एक तो उन्होंने देशवासियों के लिए अर्थोपार्जन के प्रायः सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये थे । इस प्रकार देश की आर्थिक स्थिति नितांत शोचनीय होती जा रही थी । देश के अर्थोपार्जन के केवल तीन प्रमुख मार्ग रह गये थे । बनिज अथवा व्यापार , कृषि और सेवावृत्ति । अंग्रेजों के आगमन से पहले देशवासी, देशी वस्तु को ही प्रयोग लिया करते थे । विदेशी जहाजों के आने से यहाँ यत्र निर्मित सस्ती वस्तु उपलब्ध होने लगी अतः यहाँ की बनी वस्तुओं का प्रयोग कम होता चला गया । फिर सरकार की फ्रीटेड

<sup>३१</sup> भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग— ब्रजरत्नपाल, पृ. ११



की नीति से देशी व्यवसाय विल्कुल निष्फल हो गया । विलायत के व्यवसायी समाज बद्ध रूप से कार्य करते थे अतएव तुलना में व्यक्तिगत रूप से काम करने वाले कारीगरों का टिकना सम्भव नहीं था ।

देश का कच्चा माल सस्तेदामों पर विलायत को निर्यात होता और वहाँ से वह कई गुने अधिक मूल्य पर यहाँ से वह कई गुने अधिक मूल्य पर यहाँ आकर बिका करता था । इस देश को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ रही थी । प्रेमघन लिखते हैं— “ हम अतिकष्ट से भूमि जोतते, अन्न बोते, सींचते, काटते और दाँओसा ओर स्वच्छ कर राशि मात्र लगाते, परन्तु उसको खाते हैं दूसरे द्वीप के लोग । हम उसे बेच कर क्या पाते हैं ? सीप बटन या सींग की कंधी, कागज के चित्र और मिट्टी के खिलौने । हम सौ सौ दुःख झेलकर कपास बोते, परन्तु रुई निकाल विदेश भेज देते और उसके बदले में विदेशीय कपड़े मोल लेते । उसके सीने को सूई या यंत्र तथा बटे सूत भी वहीं से लेकर सीते, वहीं के सिद्ध रंग से उसे रंगते और वहीं के बने बटन लगा कर पहिनते, उसे हाथ मुँह धोने के लिए साबुन भी वहीं से लेते, लिखने के कागज, कलम, रोशनाई वहीं से मंगायी जाती, पढ़ने की किताबें वे वहीं से आतीं । यदि यहाँ भी छपती तो सब सामान वहीं से आता । यदि लोटा थाली और लोहे की बन्दूकें, हम यहाँ बनाते, तो ताँबे, पीतल और लोहे की चदरें वहीं की लेकर! कहाँ तक गिनायें बहु तेरा कोरा माल प्रायः यहाँ से एक रुपये मूल्य पर वहाँ जाता तो घूमकर पचीस पचास का होकर यहाँ आता, हम जिसे रुपये पर बेचते तो फिर उसी को पचास रुपये पर मोल लेते हैं । चार रुपये का बैल का चमड़ा यहाँ से जाता तो वहाँ से पचास रुपये के जूते और सैकड़ों के बेग बनकर आते । यहाँ से दस रुपये की रुई जाती तो पाँच सौ की आधी बनकर आती । ”<sup>३२</sup>

” स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशी वहिष्कार : प्रेमघन सर्वस्य, भाग-२, पृ. २३६

इस तरह के यहाँ उद्योग धन्धे ठप्प हो गये और देशवासी छोटी से छोटी वस्तु के लिए दूसरों पर निर्भर ही गये थे । जिस देश की ऐसी आर्थिक दशा हो उसकी शोचनीय स्थिति का सहज की अनुमान लगाया जा सकता है ।

उद्योग—धन्धों और व्यापार के ठप्प हो जाने पर लोग जीविकोपार्जन के लिए कृषि की ओर प्रवृत्त हुए किन्तु कृषि की अवस्था पहले से ही शोचनीय थी अतिशय का भार किसानों की कमर टूट चुकी थी । अतः कृषि भी समुचित आय का साधन सिद्ध नहीं हो सकी और खेती का काम छोड़कर चोरी और भिक्षावृत्ति के कार्यों में लगने लगे ।<sup>३३</sup>

देश में एक भयंकर दुर्गण ने घर कर लिया था लोगों में गोरे साहबों के अंधानुकरण की प्रवृत्ति विशेष बल घातक थी । इससे एक तो अर्थ का अपव्यय बहुत होने लगा था और दूसरे उनके उपयोग की वस्तुएँ विदेशी होती थीं पश्चिमी सभ्यता का यह प्रभाव अर्थशोषक और दूसरे उनके उपयोग की वस्तु विदेशी होती थीं । पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अर्थ शोषक था । इसलिए प्रेमघन पश्चिमी सभ्यता को वेश्यावृत्ति धारिणी समझते थे क्योंकि दुनियाँ से अर्थ संग्रह कर श्रीमती बनी रहती थी । प्रेमघन लिखते हैं—“वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अभी बाला और तृतीय नायिका वेश्यावृत्तिधारिणी है, क्योंकि वह संसार के सामान्य जन समुदाय से अपना अर्थ संग्रह कर श्रीमती बन जाती है ।<sup>३४</sup>

ऐसी स्थिति में देश के सम्मुख आर्थिक संकट से छुटकारा पाने के लिए केवल एक ही उपयोग का स्वदेशी ग्रहण और विदेशी परित्याग को लेकर नेशनल कांग्रेस पे विधिवत आन्दोलन छेड़ा । प्रेमघन का स्वर इस सम्बन्ध में कांग्रेस के साथ था । किन्तु ध्यान देने की बात है कि इसका सूत्रपात वस्तुतः कांग्रेस की स्थापना के पूर्व हो चुका था और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पूर्णतः अनुभव कर लिया

<sup>३३</sup> भारतवर्ष की दृष्टि : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, पृ. २६८

<sup>३४</sup> पुणनी का तिरस्कार और नयी का सत्कार : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. २५९

था । डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं — “ कांग्रेस ने अभी स्वदेशी आन्दोलन विधिपूर्वक न आरम्भ किया था न बंगाल में बंग भंग आन्दोलन ने जन्म लिया था । केवल हिन्दी में भारतेन्दु ने स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात बहुत पहले ही किया था । ‘तदीय समाज’ के सदस्यों के लिए स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार उन्होंने अनिवार्य रखा था ।<sup>१५</sup>

प्रेमघन स्वदेशी के उपयोग और विदेशी वस्तु के बहिष्कार के पक्ष में थे । भारतीयों की बदली हुई मनोवृत्ति को देखकर वे बड़े दुखित थे । जैसे— हमारी रुचि और आवश्यकता में बहुत भेद पड़ गया है भारतीय अब भारतीय नहीं रहे, वे अब साहेब लोग बनने की लालसा में मर रहे हैं । इसी से उन्हें भौंति—भौंति की विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं । परन्तु शोक ! वे अपनी दशा को भूलकर भी नहीं सोचते ।

ऐसी स्थिति में स्वदेशी वस्तु का प्रचार उपयोग तभी संभव था जबकि लोगों के हृदय में देशानुराग हो और वे विदेशी का बहिष्कार कर स्वदेशी को अपनाने का संकल्प करें । विदेशियों का अपने देश के प्रति अनुराग स्पृहणीय था । वे सात समुद्र पार से आकर भी प्रायः अपने देश वस्तुओं का ही उपयोग करते थे जबकि हमारे देशवासी अपने देश की वस्तु को छोड़ विदेशी वस्तुओं के प्रति दीवाने रहते थे । आर्थिक स्वार्थ ने देश को बुरी तरह जकड़ लिया था । इसकी प्रतिक्रिया देश में राजनीति चेतना के रूप में अन्याय की अतिशयता ने विदेशी शासन से मुक्ति की कामना को जन्म दिया । उसका प्रथम परिचय सन् १८५७ के विद्रोह के रूप में मिला । विद्रोह दबा दिया गया , किन्तु विद्रोह की भावना पूर्णतः शमित नहीं बल्कि भस्मावृत चिंगारी की भौंति समय—समय पर बंग—भंग व स्वराज्य आन्दोलनों के रूप में परिचय देती रही । अंग्रेजों के राज्य के कुछ पूर्व

<sup>१५</sup> डॉ. रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग, पृ. ११२

और कुछ बाद तक हिन्दू मुसलमानों दोनों जातियों का पूर्ण सहयोग रहा था । अंग्रेजों के राज्य में कुछ समय पहले हिन्दू मुसलमानों में बंधु भाव था हिन्दू मुसलमान की एकता अंग्रेजों के स्वेच्छापूर्ण शासन में बाधक थी । अतः उन्होंने धर्म की आड़ लेकर दोनों जातियों में फूट फैला दी । इस प्रकार उन्होंने फूट फैलाकर निष्कंट राज्य नीति का अनुसरण किया । देशोंद्वार की कामना से स्थापित इंडियन नेशनल कांग्रेस देश के लिए सौभाग्य का चिन्ह थी । इस रूप में, देश के लोगों ने एक साथ बैठकर सर्वप्रथम देशहित की बात सोची थी वैसे राष्ट्रीय भावना का इससे पूर्व ही उदय हो चुका था । जिसका परिचय भारतेन्दु कालीन साहित्य दे रहा है । प्रेमघन जी कांग्रेस के प्रति बड़े आशान्वित थे । उसमें सम्मिलित होने के लिए उन्होंने लोगों के प्रति प्रेरित किया, तथा वे स्वयं भाग लिया करते थे । जब तक उसमें किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न होने पर वे बड़े दुःखी होते थे सूरत में उसके टुकड़े होने पर उन्हें बड़ा परिताप हुआ “ निदान कांग्रेस टूट गयी इसके लिखते लेखनी कम्पित होती है सुनने के अर्थ श्रवण सन्नद्ध नहीं होते । सुनकर, वरंच वास्तव में टूट जाने पर थी जिसे चित्त विश्वास करने पर तत्पर नहीं होता किन्तु हाय भारत के भाग्यहीन सन्तानों ने इस परम अनिष्ट कृत्य को करी डाला जिस कारण आज समस्त भारत लज्जित और मूर्छित हुआ ।<sup>३६</sup> ” सामान्यतः प्रेमघन की नीति कांग्रेस के नरम दल में ‘मेल’ खाती थी । इसलिए उनमें उग्र दल वालों से हमारे देश की भाषा और अक्षर : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, पृ. ५३

की सी उग्रता प्रायः देखने को नहीं मिलती ।

अंग्रेजी सभ्यता शिक्षा व विचार धारा से हिन्दू समाज और उसके व्यवहारों पर भारी प्रभाव पड़ा । इससे हिन्दू समाज के परम्परागत रूप में असंतुलन और

<sup>३६</sup> कांग्रेस की दशा : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. ३२४

विषमता उत्पन्न हो गयी । स्थिति यह थी पुराने और बुढ़े लोग अधिकांशतः मूर्ख और दुराग्रही थे तथा अनेक मिथ्या विश्वासों के पीछे में पड़े थे तो पाश्चात्य शिक्षा सम्पन्न नयी पीढ़ी के लोग अकर्मण्य, प्रमादी, विपरीत बुद्धि और दुष्टाचरण थे । इससे समाज की स्थिति बड़ी विषम हो गयी थी तथा उसके उद्धार की कोई राह दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी । इस स्थिति के सम्बन्ध में प्रेमघन लिखते हैं—

“आजकल तो मानों गोधूली का समय है जिसे हम दुःख की रात वा सुख दिन कह सकते अथवा न जिसे यथार्थ उन्नति वा अवनति का काल मान सकते हैं क्योंकि दो चार विषय में जो इधर देश उन्नति भी कर रहा है, तो उधर बीसों बातों में सीमाबाह्य अवनति का सर्वस्वाहा हुआ जाता है । यदि सोचते हैं कि वर्तमान समय के बचे बचाये बुढ़े लोग अधिकांश मूर्ख, दुराग्रही और अनेक मिथ्या विश्वास के फंदे में पड़े बहुत कुछ देश के अवनति के कारण है, तो साथ ही पाश्चात्य शिक्षा सम्पन्न नवीन ज्योतिषारी युवक उनसे अधिक अकर्मण्य, प्रमादी और विपरीत बुद्धि और दुष्टाचरण वाले दिखाई पड़ते हैं यदि अनेक प्रचलित प्रणाली दूषणीय दिखलाती, तो जिस प्रकार उसका संशोधन विचार जाता वह उसमें के रहे सहे गुण को भी समूल नाश करने में समर्थ सा समझ पड़ता ! और इस भाँति यथार्थ कल्याणप्रद और श्रेयस्कर यत्न किसी ओर दृष्टिगोचर नहीं होता !!!”<sup>३७</sup>

उस समय हिन्दू धर्म और समाज विपत्तियों से घिरे हुए थे । विधर्मी और विजातीय लोग उसकी परम्परा और मान्यताओं को छिन्न—भिन्न कर डालना चाहते थे । सुधार के नाम पर नवोदित समाज भी कुछ ऐसा ही कर रहे थे । इसलिए प्रेमघन ने ईसाई, मुसाई, म्लेच्छादि को हिन्दू धर्म—कर्म और आचार—विचार का पूरा शत्रु माना है तथा ब्राह्म समाजी, आर्य समाजी, और अंग्रेजी का पूरा शत्रु माना है तथा ब्राह्म समाजी, आर्य समाजी, और अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव से

<sup>३७</sup> हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. २१

विकृत मस्तिष्क वाले साहबों को भी नकली अंग्रेज और आधा शत्रु मानते थे क्योंकि विधर्मी एवं विजातीय लोग तो केवल धर्म पर ही आघात करते थे परन्तु ब्राह्मसमाजी और आर्य समाजी हिन्दू समाज के आचार, विचार व्यवहार व जातीय संस्कार आदि को समूल ही नष्ट किये जा रहे थे ।<sup>३८</sup> इसके अतिरिक्त समाज में ही उसकी दुर्दशा के अनेक कारण विद्यमान थे । धर्म गुरुओं, जातियों और घर-घर में फूट फैली हुई थी तथा समाज को एक सूत्रबद्ध बनाये रखने का कोई उपाय नहीं था सुधार के प्रयोजनों से बने नये समाज (ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज व सुधार सामज आदि ) भी अपनी ही सीमाओं में परिमित थे उनका सामान्य धारा से कोई सम्बन्ध नहीं था अतः उन्होंने जो भी सामाजिक संशोधन किये उनका उन्हीं तक सम्बन्ध रहा उनसे केवल इतना लाभ अवश्य हुआ कि उनके प्रयत्नों से बहुत से लोग क्रिस्तान होने से बच गये ।<sup>३९</sup>

प्रेमघन ने अपने निबन्धों में सती प्रथा, कन्या वध, नारी सम्बन्धी अन्य समस्याओं उनकी स्वच्छता, विधवा विवाह, बालविवाह आदि पर भी विचार किया । ये ऐसे विषय थे कि जिन पर तत्कालीन प्रायः सभी प्रमुख लेखकों ने थोड़ा बहुत लिखा है । प्रेमघन स्वेच्छा से सती होना बुरा नहीं मानते थे । पर बलवती किसी को करना एक निन्दनीय कार्य समझते थे । इसी प्रकार कन्या—वध जैसी निन्दनीय परम्परा की भी उन्होंने भर्त्सना की । “ जन्मते ही लड़कियों को मार डाला तो एक और बात थी । परन्तु एक जाति में निष्प्रयोजन भी इस प्रकार की प्रथा प्रचारित हो जानी कैसी विलक्षण पशुता थी । ”<sup>४०</sup>

समाज के अधःतपन और उसमें कुरीतियों के प्रचार के कारणों के सम्बन्ध में प्रेमघन जी धर्म गुरुओं और अगुआ ब्राह्मणों की योग्यता तथा दुर्व्यसनग्रस्तता को उत्तरदायी ठहराते हुए लिखते हैं, “ कितने अपने—अपने ब्राह्मणोचित धर्म का

<sup>३८</sup> हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. २१२

<sup>३९</sup> वही, पृ. २१२

<sup>४०</sup> हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. २१२

पालन करते कितने पुरोहित के वेष में रहते वा स्वधर्म रक्षा का कुछ भी यत्न सोचते ? विरुद्ध इसके कि नाना प्रकार के नीच व्यसन दुराचार और कुत्सित कृत्य में लीन रहते जिनके दर्शन मात्र से कठिन अश्रद्धा का उद्रेक होता ! फिर जहाँ वे धर्माधिकारी ऐसे हैं वहाँ उनके यजमानों की उनसे धर्म विषय में क्या सहायता मिल सकती है का श्रद्धा की वृद्धि हो सकती है, समझना सहज है ।<sup>१९</sup> प्रेमघन के समय में वैवाहिक समस्याएँ प्रमुख थीं और आज भी उनमें से अनेक उसी रूप में विद्यमान हैं उनमें से जिन समस्याओं का संस्पर्श उन्होंने अपने निबन्धों में किया है वे हैं बाल विवाह, वर की योग्यता, कुण्डली—मेल के सम्बन्ध में अंध विश्वास, विवाह में जाति व खानदान का महत्त्व तथा अनमेल विवाहादि । प्रेमघन की समाज—प्रचलित इन कुरीतियों के सुधार के पक्ष में थे । विवाह में कुण्डली मेल व जाति व खानदान का महत्त्व देनेवाले अंधविश्वासों के प्रति करारा व्यंग्य करते हुए प्रेमघन लिखते हैं— “ परन्तु चाहे जिस तरह का व्याह हो, ख्याल प्रायः दो ही बातों का रहता है एक तो पंडित जी, की कुण्डली के विधि में मिलने का अर्थात् चाहे अंधा, काना, कुबड़ा, लूला, लंगड़ा काला कुरूप मूर्ख दुष्ट क्या सर्वदोषयुक्त क्यों नहीं कुण्डली भी विधि मिलने से लक्ष्मी समान रूप गुण सम्पन्न कन्या का व्याह करी देवेंगे । जाति खानदान अच्छा हो चाहे वह भूख से करता हो वा कैसा ही फाके मस्त हो इस पर कुछ न ध्यान देवेंगे । निदान नीच से नीच वा संसार भर की दुष्टता क्यों न करता हो या विद्या के नाम काला अक्षर भी न जानता हो, पर तो भी सरस्वती सी पंडिता और बड़े बाप की बेटी उसे व्याह देंगे, परन्तु गणना का बैठ जाना उसमें भी आवश्यक है ।<sup>२०</sup>

प्रेमघन विधवा विवाह के पक्ष में थे और किन्हीं परिस्थितियों में इसे उन्होंने शास्त्र सम्मत भी सिद्ध किया था । समाज सुधारकों में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का

<sup>१९</sup> वही,

<sup>२०</sup> विधवा विपत्ति : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—दो, पृ. १८६—८७

नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । प्रेमघन के समय समाज इतना रूढ़िग्रस्त था कि सामान्यतः लोग इस पक्ष में नहीं थे ।

प्रेमघन की सामाजिक दृष्टि व्यापक रूप से हिन्दू समाज से सम्बन्धित तथा प्रगतिशील थी । उन्होंने अपने धार्मिक सामाजिक विषय के निबन्धों में अपने समय की सामाजिक स्थिति का सविवेक अवलोकन किया । उसकी विविध समस्याओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये ।

काव्य :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ कवि रूप में किया था । बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने आधुनिक युग के द्वार पर खड़े होकर भी अपना सम्बन्ध काव्य रचना की इस पुरानी परिपाटी से बनाये रखा । समस्या—पूर्ति के कौशल में ये बहुत निपुण थे इस दृष्टि से उनकी अति—प्रसिद्ध रचना उल्लेख्य है ।<sup>४३</sup>

भारतेन्दु युग में प्रबन्ध काव्यों की सृष्टि नहीं के बराबर हुई किन्तु बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये थे इनकी 'जीर्ण जनपद' नामक रचना प्रबन्ध काव्यात्मक है । इस तत्कालीन ग्रामीण जीवन के वास्तविक चित्र अंकित किये गये हैं, और ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्ग के प्रतिनिधि —पात्रों की कमजोरियाँ दिखाई गयी है जिन्होंने ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली में भी काव्य—रचना करने की चेष्टा की थी। इनकी खड़ी बोली की अधिकांश रचनाएँ समसामयिक सामाजिक—राजनीतिक चेतना के ओत—प्रोत हैं ।<sup>४४</sup>

पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु भाँति देश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का निरूपण किया । 'हार्दिक—हर्षादर्श' या महारानी

<sup>४३</sup> डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग—२, पृ. ३६७, द्वि.सं. २०४३, ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी—१

<sup>४४</sup> डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग—२, पृ. ३६७, द्वि.सं. २०४३, ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी—१



विक्टोरिया— की 'हीरक जुबली' के अवसर पर लिखी गयी कविता में भारत की बिगड़ी हुई दशा का चित्र इन पंक्तियों में मिलता है—

भयो भूमि भारत में महा भयंकर भारत ।  
 भये बीरबल सकट सुभट एकहि संग गारत । ।  
 बिगरो जन समुदाय बिना पथ दर्शक पण्डित ।  
 नये नये मत चले नये झगर नित बाढ़े ।  
 नये नये दुख परे सीस भारत पे गाढ़े ॥<sup>५५</sup>

'होली की नकल' कविता में प्रेमघन ने देश दुर्दशा के प्रति दुःख प्रकट किया है—

रोओ ! सब मुँह बाय बाय । हये हय टिक्कस हाय ।  
 रोज कचहरी धाय—धाय । अमलन के ढिंग जाय जाय ।  
 रोओ सब मुँह बाय —बाय । हय हय टिक्कस हाय हाय ।  
 रोकड़ जाकड़ ल्याय ल्याय । लेख वही मिलाय आय ।  
 घर घंटा दिखलाय हाय उजुर माजरा गाय गाय ॥<sup>५६</sup>

अतीत के गौरवमय चित्रों की सुन्दर झांकियाँ देश के जन सामान्य को उत्साहित करती हैं तथा देश की समृद्धि और खुशहाल बनाने की प्रेरणा दी है अतीत केवल वर्तमान के दुःख को भुलाने के लिए सुखद स्वप्न की तरह चित्रित नहीं किया गया बल्कि भविष्य की प्रेरणा बनकर भी सक्षम उपस्थित होता है । जन्मभूमि के प्रति भी स्वाभाविक है माता के समान ही मातृभूमि वंदना भी प्रत्येक स्वाभिमानी देश—प्रेमी के हृदय में व्याप्त रहती है । बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन 'स्वदेश बिन्दु' कविता में देशभक्तिपूर्ण गीतों की सुन्दर रचना हुई जिसमें देश की वन्दना की गयी है—

<sup>५५</sup> डॉ. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : दिनेशनारायण उपाध्याय, साहित्य रत्न : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २६८

<sup>५६</sup> डॉ. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय : होली की नकल, वही, पृ. १८५

जय जय भारत भूमि भवानी

जाकी सुयश पताका जग के दसैंहु दिसि फहरानी

सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ॥<sup>४७</sup>

‘हार्दिक हर्षादर्श’ रचना में देश—भक्ति का मिश्रण है १८५७ ई. के स्वातंत्र्य संग्राम की निन्दा करते हुए प्रेमघन लिखते हैं—

देसी मूढ़ सिपाहकलुक लै कुटिल प्रजा संग

कियो अमित उत्पात रच्यो निज मासन को ढँग

बढ़्यो देस में दुख बनि गई प्रजा अति कातर ॥<sup>४८</sup>

‘आनन्द अरुणोदय’ कविता में प्रेमघन ने अंग्रेज राजाओं के झूठे आश्वासनों और धोखेवाजियों के प्रति शंकनाद प्रतिध्वनित किया । इस कविता में स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिये कहा है—

उठो आर्य्य सन्तान सकल मिलि बस न बिलम्ब लगाओ ।

बृटिराज स्वतन्त्र्यमय समय व्यर्थ न बैठ बिताओं ॥<sup>४९</sup>

कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है—

आर्य्य जाति का हो अभ्युदय भूमि भारत पर ।

सत्य सनातन धर्म अटल हो उन्नत होकर ।

सुख समृद्धि धन अन्न शिल्प विज्ञान ज्ञान वर ।

बसो यहाँ सब विद्या कला कलाप निरन्तर ॥

एकता धीरता प्रेमघन देशभक्ति स्वाधीनता ।

हरि वर फूट अन्याय संग हरै दोष दुखदीनता ॥<sup>५०</sup>

<sup>४७</sup> डॉ. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, दिनेशानारायण उपाध्याय, स्वदेश बिन्दु, भाग—एक, पृ. १८५

<sup>४८</sup> डॉ. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, दिनेशानारायण उपाध्याय, हार्दिक हर्षादर्श, भाग—एक, पृ. २७३

<sup>४९</sup> आनन्द अरुणोदय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग—१, पृ. ३६४

<sup>५०</sup> आनन्द अरुणोदय : प्रेमघन सर्वस्व : भाग—१, पृ. ३६७

प्रेमघन की सुप्रसिद्ध काव्य कृति 'जीर्ण जनपद' का हिन्दी में वही स्थान है जो अंग्रेजी में 'गोल्डस्मिथ के डेजर्टेड विलेज' (Gold Smith Deserted village) थे। नारी का है इसमें दत्तापुर नामक गाँव को केन्द्र में रखकर भारत के समस्त गावों की दुर्दशा का नग्न चित्रण किया गया है ?<sup>५१</sup> महारानी विक्टोरिया के शासन काल में देश की जनता का क्या हाल था उसका हवाला प्रेमघन ने इस प्रकार दिया है—

सूखे वे मुख कमल, केश रुखे जिन करे ।

वेश मलीन, छीन, तन छवि—इत—जात न हेरे ।

दुर्बल, रोगी, नंग धिङगे जिनके शिशु गन ।

दीन दृश्य दिखराय हृदय पिघलावत पाहन ॥<sup>५२</sup>

पत्थर दिल को भी पिघलाने वाले मार्मिक दृश्यों में एक दृश्य तत्कालीन पढ़े—लिखे लोगों की दुर्दशा का भी है जो प्रकार है—

ढूँढत फिरत नौकरी जो नहिं कोउ विधि पावत ।

खेती हू करि सकतन न दःख सों जनम बितावत ॥

इन सबका कारण अंग्रेजों द्वारा देश का आर्थिक शोषण था । भारत के धन पर विलायत खुशहाल था मजे उड़ा रहा था । प्रेमघन लिखते हैं—

रहै विलायत जो हरखाय, भारत सो धन रोज कमाय ।

चैन करै जो मजे उड़ाय, तिसका हिक्कस भी छुट जात ॥

यह अचरज देखो तो अन्य सोचत बुद्धि विकल हो जाय ॥<sup>५३</sup>

हिन्दू समाज में नारी दशा से प्रेमघन भलीभाँति परिचित थी । समाज में नारियों के अपमान को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे । नारी गौरव के लिए ही उन्होंने, “स्त्रियों की कीर्ति” नामक गीत की रचना की थी जिसमें भारत की ऐसी प्रसिद्ध गौरवशाली नारियों का उल्लेख हुआ है जो अपने अपने क्षेत्र में आदर्श रह

<sup>५१</sup> डॉ. बीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, खण्ड—३, पृ. १३४ ( भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग)

<sup>५२</sup> प्रेमघन सर्वस्व : भाग—१, पृ. ४८

<sup>५३</sup> होली की नकल : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. १८७

चुकी थीं । इस गीत में कवि ऐसी गौरवशालिनी नारियों के समृद्ध नतमस्तक होता है —

लज्जा, दया, धर्म, पति सेवा रत सब सहज सुभाय ।

वन्दनीय ते सुमुख प्रेमघन सब को सीस नवाय ॥<sup>५४</sup>

चरखे की चमत्कारी व 'होली राग काफी' एवं संगीत रचनाओं में प्रेमघन जनता द्वारा किये गये स्वदेशी व स्वराज विषयक आन्दोलनों का स्वागत किया है ऐसा प्रायः सभी राजभक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ज्यों ज्यों तू चलता त्यों त्यों आता स्वराज्य नियरात ।

परतंत्रता की दीनता भागी जाती खाती लात ॥<sup>५५</sup>

प्रेमघन ने अधिकारी वर्ग के अनाचार और गाँधी प्रवर्तित असहयोग व स्वराज्य आन्दोलनों के प्रति अपनी भावना को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है—

मची है भारत में केसी होली सब अनीति गति होली ।

पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब घोली ॥<sup>५६</sup>

'प्रेमघन' ने देश की परिस्थिति को सुधारने के लिए धार्मिक व राजनीतिक आन्दोलनों पर विचार प्रकट करते थे तथा यथासाध्य अधिवेशनों में जागकर सहयोग देते थे ।

दादा भाई नौरोजी जब पार्लियामेंट के सदस्य बने तब 'मंगलाशा' कविता द्वारा काले जाने पर विचार प्रकट किये —

अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे,

तासो कारे 'कारे' शब्दहु पर है वारे ।

कारे काम, राम, जलधर जल बरसावन वारे ।

कारे लागत ताही सो कारन को प्यारे ।

<sup>५४</sup> स्त्रियों की कीर्ति : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, ६४६

<sup>५५</sup> चरखे की चमत्कारी : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ ६४८

<sup>५६</sup> होली राग काफी : प्रेमघन सर्वस्व, पृ. ६४९

याते नीको है तुम कारे जाहु पुकारे ॥<sup>५७</sup>

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन का विगत बलिदानी वीरों का स्मरण हो जाता है और मातृभूमि की वर्तमान दुर्दशा पर उन्हें अत्यन्त दुःख होता है—

पाटलि पुत्र गयो कहाँ तेरा गजब गरुर ।

नहिं चितौर वह जहाँ रहे एक एक से वीर ।

रह्यो न वह पंजाब अब रह्यो न वह कश्मीर ।

पूजा करि सूना गयो किते शिवाजी वीर ॥

‘राजराजेश्वरी जयति’ इसमें कवि ने विक्टोरिया की भारतीय राज्याभिषेक के अवसर पर सराहना की है तथा उनके प्रति शुभ कामनायें प्रकट की हैं । भारत विगत कालीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए कवि ने वर्तमान की दुःख दैन्यपूर्ण अवस्था का भी चित्रण किया है । कवि को विक्टोरिया के भारतीय राज्याभिषेक के साथ ही देश में सुदिन के आरम्भ विश्वास हो गया है । वह कहता है—

“ सुनि अभिषेक राज राजेश्वरी चित्तमुद मंगल सानहु ।

भारत सुदिन बीज या छन सों जामों यह मन आनहु ॥”<sup>५८</sup>

कलिकाल—तर्पण कविता में प्रेमघन ने राष्ट्रीयता का स्वर मुख्य है इसमें हिन्दुओं के गौरवपूर्ण अतीत और दुखद वर्तमान का चित्रण किया है।

दौरि ग्राह को मारयो प्रान प्रह्लादहु के हित सुखदान ।

खम्भ फारि प्रगटयो भगवान्, मारयो हिरन कशिप बलवान ॥

मारि मौन गाह्यो भगवान, नाहिं तो कारन कहियै आन ।

नतरु होय का वृद्ध महान, अति बलहीन भयो भगवान् ॥<sup>५९</sup>

<sup>५७</sup> मंगलाशा : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. २५०-२५१

<sup>५८</sup> राजराजेश्वरी जयति : बली, पृ. सं. १२६

<sup>५९</sup> कलिकाल—कल तर्पण : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. १४५-१५०

प्रेमघन ने समय में समाज फैली कुरीतियों को अपनी कविता का विषय बनाया । प्रेमघन के समय में समाज में फैली समस्याएँ निम्न हैं जैसे अनमेल विवाह, बाल विवाह और बालावृद्धा विवाह आदि पर विस्तारपूर्वक लिखा है—<sup>६०</sup>

यह असीस देत तुम को मिलि हम सब कारे ।

सकल होहिं मन के सबही संकल्प तुम्हारे ॥

जातीय गीत 'चेतावनी' कविता में प्रेमघन जागृति भाव स्पष्ट लक्षित होता है—

ताके वंस जनम लैके तुम , निज कुल रहे लजाय ।

हाय ! लोक परलोक सोक सब, जनु पी गये उठाय ॥<sup>६१</sup>

इसी तरह प्रेमघन ने 'जातीय गीत' संदेश दशा के 'उत्साह' कविता में राष्ट्र के प्रति जागृति भावना स्पष्ट झलकती है—

साफ करो बन्दूकें, टोटा टोआ ढाल सुधारो रामा ।

हरि—हरि धरो सान तरवान लै कर भाला रे हरी ॥

मार ! मार ! हुंकार सोर सुर सांचे सब ललकारों ।

उठो बढ़ो धाओं मारो बेगि न विलम्ब लगाओ रामा ॥<sup>६२</sup>

'आवश्यक निवेदन' कविता में प्रेमघन ने कायरों को धिक्कारा है—

सो तुमरी माता निरदोषी के गर फिरत कटार ।

देखत तुम पै तनिक न लाज जिय मैं हा ! धिक्कार ॥

'आशीर्वाद' नामक कविता में प्रेमघन ने कि आलस, निद्रा, अमंगल आदि जैसी बुराईयों को दूर करते हुए कहते हैं—

मंगल करै ईस भारत को सकल अमंगल बेगि बहाय ।

<sup>६०</sup> सामाजिक संगीत : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, ५३१-५३६

<sup>६१</sup> जातीय गीत : चेतावनी : प्रेमघन सर्वस्व, भाग- एक, पृ. ५३९

<sup>६२</sup> उत्साह : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ५४०

आलस निद्रा, सों उठि जागै भारतवासी धाय ॥

दुःख कलंक धोय देवै फिरि वही दिन दिखलाय ॥

कांग्रेस अधिवेशनों में आने वाले कर्मठ प्रतिनिधियों के स्वागत के समय देश की उन्नति की आशा को व्यक्त करनेवाली पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

सब द्वीप की विद्या कला विज्ञान इत चलि आवई ।

उद्यम निरत अराज प्रजा रहि सुख समृद्धि बढ़ावई ।

दुष्काल रोग नीति नसि सन्दर्भ, उन्नति पावई ॥

भट विवुध अन्न सुरन्न भारत भूमि नित उपजावई ।

नीके भारत कै आय नेशनल कांग्रेस सब होय ।

जागे भारत राजऋषि आए लाट रिपन खोय ॥<sup>६३</sup>

राष्ट्रीय चेतना में देश की भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है । मातृभूमि के समान ही मातृभाषा का प्रेम प्रत्येक देश भक्त के हृदय में हिलोरे लेता है और उसका निराधार करने वाले के प्रति रोष जागृत होता है । 'प्रेमघन' के समय के सभी कवियों को देखते हैं कि अधिकांश ब्रजभाषा के कवि हैं किन्तु सभी का राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति प्रसार एवं प्रचार की ओर लक्ष्य रहा है । अंग्रेजों की पाश्चात्य साहित्य संस्कृति व भाषा के व्यापक की नीति ने इस भावना को और भी उकसाया । स्वतंत्रता की भावना हर दिशा में आई तथा भाषा, साहित्य, समाज, कला, धर्म, संस्कृति आदि सभी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का नारा बुलन्द किया । अरबी, फारसी उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषा से घृणा नहीं थी । प्रेमघन आदि कवियों ने नए ज्ञान, नई बातों को ग्रहण किया । उर्दू और अंग्रेजी जब भारत की राष्ट्रभाषा का अनादर करके उसके स्वाभिमान को आघात पहुँचाने लगी तो नागरी और हिन्दी भाषा के प्रचार को बल मिला ।

<sup>६३</sup> मयंक महिमा : प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१, पृ. ३८७

इसीलिए इस युग के प्रत्येक कवि ने तथा पत्रकार ने हिन्दी की महिमा और अंग्रेजी, उर्दू—फारसी का मजाक उठाया ।

प्रेमघन को राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अपना प्रेम और उद्गार प्रकट किया । उर्दू भाषा पर इस युग के कवियों ने व्यंग्य भरे उद्गार प्रकट किये हैं । पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन को कचहरी में उर्दू बीबी का हिन्दी उन्नति पर अधीर होते देखा गया —

पुरबवत सो बीच कचहरी उर्दू बीबी ।  
 बैठी ऐंठी करत अजहुँ सौ सौ विधि सीबी ।  
 लिखित आवत नागरी बरन बरन तकि  
 नाक सिकोरत, भौह मरोरति औचकहि चकि ।<sup>६४</sup>  
 उर्दू भाषा की हंसी उड़ाते हुए समय प्रेमघन ने लिखा है—  
 जिन भाषा को सब्द लिखा पढ़ि जात न जामै ।  
 पर भाषा का कहो पढ़ै कैसे कोऊ तामै ।  
 लिख्यों हकीम औषधी मैं आलू बोखारा ।  
 उल्लू बनो मोलवी यदि उल्लू बेचारा ॥  
 साहिब 'किस्ती' चही उठाई मुनसी कसबीव  
 'नमक' पठायो भई 'तमसुक' की जब तलबी ॥  
 पढ़ते सुनार 'सितार' 'किताब' कबाब' बनावत ।  
 दुआ देत हूँ 'दगा' देन को दो । लगावत ।  
 मेम साहिबा बड़े — बड़े मोती चाह्यो जब ।  
 बड़ी—बड़ी मूली, पठवासी तसिल्दार तब ॥<sup>६५</sup>

प्रेमघन ने अपनी निज भाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना है—

<sup>६४</sup> आनन्द बघाई: प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, पृ. २१४

<sup>६५</sup> आनन्द बघाई : प्रे. सर्व., भाग—एक, पृ. ३०५



### आलोचना :

आधुनिक हिन्दी आलोचना का आरम्भ भारतेन्दु युग से हुआ है । कहा जाता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'कविवचन सुधा' और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में कुछ नोट समालोचना के रूप में निकाला करते थे ।<sup>६६</sup>

आधुनिक आलोचना का सूत्रपात भी इसी युग में हुआ था और इसका श्रेय इस काल के दो लेखकों को दिया जाता है , एक तो पंडित बालकृष्ण भट्ट को और दूसरा पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर की आलोचना' और गदाधरसिंह कृत 'बंगविजेता के अनुवाद की आलोचना 'आनन्द कादम्बिनी' के कई पृष्ठों में विस्तार पूर्वक की थी । उनकी ये आलोचनाएँ उनकी व्यक्तिगत रुचि—अनुकूल आलोच्य पुस्तकों के गुण—दोष उद्घाटन तक ही सीमित है कहीं—कहीं भाषा सम्बन्धी भूलों पर व्यापक रूप से विचार किया गया है।<sup>६७</sup>

आलोचना का सूत्रपात हिन्दी में एक प्रकार से भट्टजी और चौधरी साहब ने ही किया । समालोच्य पुस्तक के विषयों का अच्छी तरह विवेचन करके उसके गुण दोष के विस्तृत निरूपण की चाल उन्होंने चलाई । बाबू गदाधर सिंह ने 'बंग विजेता' का जो अनुवाद किया था उसकी आलोचना कादम्बिनी में पाँच पृष्ठों में हुई थी । लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की बड़ी विस्तृत और कठोर समालोचना चौधरी ने कादम्बिनी के २१ पृष्ठों में निकाली थी । उसका नमूने प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

यद्यपि इस पुस्तक की समालोचना करने से पूर्व इसके समालोचकों की समालोचनाओं की समालोचना करने की जान पड़ती है, क्योंकि जब हम इस

<sup>६६</sup> डॉ. लक्ष्मी सागर वाण्योय : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. १५६

<sup>६७</sup> डा. धीरन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : भाग—२ पृ. ३६८, (ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी—४)

नाटक की समालोचना अपने बहुतेरे सहयोगी ओर मित्रों को करते देखते हैं तो अपनी ओर से जहाँ तक खुशामद और चापलूसी का कोई दरजा पाते हैं, शेष छोड़ते नहीं दिखाते ।<sup>१६८</sup>

नाट्य रचना के बहुतेरे दोष “ हिन्दी प्रदीप ’ ने अपनी सच्ची आलोचना में दिखलाए हैं । अतएव उनमें हम विस्तार नहीं देते , हम केवल यहाँ अलग अलग उन दोषों को दिखलाना चाहते हैं जो प्रधान और विशेष है। तो जानना चाहिए कि यदि ‘संयोगिता स्वयंवर’ पर नाटक लिखा गया तो इसमें कोई दृश्य स्वयंवर का न रखना मानो इस कविता का नाश कर डालना है, क्योंकि यही इसमें वर्णनीय विषय है ।<sup>१६९</sup>

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने आलोचना का श्रीगणेश ‘आनन्द—कादम्बिनी’ से किया था । उनकी पहली आलोचना के सम्बन्ध में आलोचकों के भिन्न—भिन्न मत रहे हैं । कोई उनके बाणभट्ट विषय लेख को (?) उनकी प्रथम आलोचना मानते हैं तो कोई उसका सूत्रपात ‘दृश्यरूपक या नाटक नामक लेख से मानते हैं । वैसे तो उनकी सर्वप्रथम आलोचना ‘आनंद कादम्बिनी’ में प्रकाशित ‘हुस्ना’ नामक वेश्या कृत मधु—तरंग पुस्तक की आलोचना है—

पुस्तक ‘मधुतरंग’ नाम की जिसे बनारस निवासिनी वेश्या ‘हुस्ना’ ने बनाया है, एक बुद्धि वैरी मित्र द्वारा हमें मिली । इस पुस्तक के विषय में हम क्या लिखे नाम ही से काम प्रकट है । ‘मधु’ अर्थात् सुन्दर स्वच्छ श्वेत शहद फिर—

मधु वसंत मधु चैत्र द्रुम मधु मदिरा मकरंद ।

मधु मधुकर पय ‘मधु’सुधा मधुसूदन गोविन्द ॥

<sup>१६८</sup> रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बीसवां संस्करण, पृ. २५७

<sup>१६९</sup> वही,

पस कोई अर्थ तरंग के खिलाफ नहीं, निःसन्देह इसके देखने से कई प्रकार से हमें बड़ा शोच हुआ । परन्तु विशेषकर कवियों के लिए, भला अब रंडियों का भी सम्बन्ध पाकर रसिया रसिकजन काहे को किसी पुरुष कवि के काव्य का सत्कार करेंगे, रंडियों की भी जो इन गीतों के सीखने और गाने के लिए आवश्यकता हुआ करती थी, अब काहे को होगी, फिर जो लोग दिल के बुखार इस बहाने निकाल नुकूल लिया करते, गजल और लावनियों की ओट में इश्क की चोट चलाते या कि तुमकी, खिमटो बहाने हाल दिल का इजहार कर उसमें अर्जदाश्त का काम निकाल लेते थे गये विचारे धारोधार ! परन्तु जो कवि वा आशिके सादिक है कभी पीछा छोड़ने वाले—

दफनवामी में हुआ है मैं नातवाँ मरने के बाद ।

कुशतये काकुल जो था पीछा न छोड़ा सांप का ॥

देखिये आगे पीछे स्थान पर केदार का नाम विराजमान फिर भला—

मरने के बाद रुह फिरैगी तलाश में,

देखूँ तो आप मुझसे कहाँ बच के जायेंगे ।”

नमूने की तरह उसमें एक गीत भी लिखते हैं—

“ दै दे मछलिया तू छलिया हमारी । टेक

न तो बुलाय सिपाही पुलिस को भेजदेव फौजदारी

तब तोहि जानि फरैगी हुस्ना चोरी मैं हो लै खुबारी ।

हम खोदा मियाँ के दर्गाह में शुक्र अदा करते हैं,

कि भला लखनऊ की जोहरा, मुशतरी हैदर,

तीन में इन्हें भी लीन कर नम्बर चार तो कराया ॥”

‘प्रेमघन’ ने दो प्रकार की आलोचना की है । एक सैद्धान्तिक आलोचना दूसरी व्यवहारिक आलोचना । प्रेमघन का सैद्धान्तिक आलोचना की ओर कम और व्यवहारिक आलोचना की ओर अधिक था । रीतिकाल में व्यवहारिक

आलोचना की परम्परा नहीं के बराबर थी । हिन्दी में इस प्रकार की आलोचना नितान्त आधुनिक काल की देन थी । पहले यह यूरोप की वस्तु थी और भारत ने इसकी प्रेरणा वहीं से ली थी । मुद्रण सम्बन्धी वैज्ञानिक साधनों के सुलभ होने से हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन प्रचुरता से होने लगा था । उन्हें जनता तक पहुँचाने के लिए विज्ञान की आवश्यकता का अनुभव हुआ । समाचार पत्र इसके लिए सर्वोत्तम साधन थे । उनमें विज्ञापन निकलने लगे । भलीबुरी पुस्तकों के अन्तर के लिए उनमें आलोचना तत्त्व का समावेश होने लगा और उन्होंने अंग्रेजी व 'बुक रिव्यू' का रूप ले लिया यही व्यवहारिक आलोचना का आरम्भिक स्वरूप था । संवत् १९४२ के पश्चात् इनकी आलोचनाएँ निकल रही थी उल्लेख करना सम्भव नहीं, इनमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की आलोचनाएँ निकल रही थी उल्लेख करना सम्भव नहीं, इनमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की आलोचनाएँ सम्मिलित थी ।

प्रेमघन की सभी आलोचनाएँ 'आनन्द कादम्बिनी' में प्रकाशित होती रही थी । आलोचना का उल्लेख दिया जा रहा है— मधुतरंग, (आ.का.ख. १,सं.२) नीलदेवी, ख-१ पृ.सं. ६-७-८) संयोगिता स्वयंवर और आलोचना (आ.का.मा.२ मेघ १०-११-१२) बंग विजेता की आलोचना (प्रेमघन सर्वस्व भाग-२, पृ. ४४१-४४५) श्री गोपिका गीतम् और प्रेम पुष्पहार या ६ मेघ ५-६ , सौ अजान और एक सुजान (आ.का.मा.६ में ११-१२) महाविद्या तथा नवीन भारत (आ.का. भा.७ में ३-९) आदि ।<sup>७०</sup>

संयोगिता स्वयंवर और उसकी आलोचना एवं बंग विजेता की आलोचना' बहुचर्चित और बड़ी आलोचनाएँ हैं उनका संक्षिप्त आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

<sup>७०</sup> आनन्द कादम्बिनी : भा.२, वि.सं. १९४३.

## संयोगिता—स्वयंवर और उसकी आलोचना

यह ऐतिहासिक नाटक लाला श्री निवासदास जी कृत 'सार सुधानिधि' यन्त्र में मुद्रित पंडित सदानन्द मिश्र द्वारा प्रकाशित जिसका मूल्य = है भारतेन्दु द्वारा मुझे समालोचनार्थ मिला ।<sup>१</sup> समानलोचना आरम्भ करने से पूर्व उन मिथ्या प्रशंसकों को लताड़ा है जिन्होंने चाटुकारितावश नाटककार को वाल्मीकि और कालिदास के समक्ष ला बिठाने में भी संकोच नहीं किया । तदनन्तर प्रेमघन ने खरी, यथार्थ सम्मति प्रस्तुत की है पहले यह आलोचना प्रायः प्रति पृष्ठक्रम से और फिर अंक गर्भाग—क्रम से की गयी है । इसके आधार प्रबन्ध—योजना, कथानक रस भाषा पात्र एवं मनोदशा और कथोपकथन आदि रहे हैं । अंत में आलोचकों से निष्पक्ष आलोचना सम्बन्धी अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ रहने का आग्रह किया गया है । प्रेमघन की यह सबसे बड़ी आलोचना है । यह 'आनंदकादम्बिनी' के २१ पृष्ठों और प्रेमघन सर्वस्व के १८ पृष्ठों में प्रकाशित हुई ।

### बंग विजयता की आलोचना :

यह प्रेमघन की अन्य बड़ी आलोचना है तथा प्रेमघन सर्वस्व के लगभग ४११ पृष्ठों में प्रकाशित है । विज्ञापन—रूप में इसका परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है । "मान्यवर श्रीयुत बाबू रमेशचन्द्र दत्त जी.सी.एस. प्रणीत हमारे मित्र श्री बाबू गदाधर सिंह शिरिशतेदार कलकत्ती मिरजापुर ने बंग भाषा से हिन्दी नागरी भाषा में अनुवाद किया है, मूल्य १ ) मात्र उत्तम कागज पर टाइप के सुन्दर अक्षरों में बारह पेजी फार्म के आकार में २७८ पृष्ठों का ग्रन्थ है । आवश्यक हिन्दी रसिकों को ग्रन्थकर्ता से मंगाकर देखना चाहिए ।" इसके अनुवाद एवं मूल

<sup>१</sup> प्रेमघन सर्वस्व : भाग—२, पृ. ४४३—४४०

के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् विचार किया गया है । अनुवाद सम्बन्धी दो-एक दोष दिखाने के उपरान्त पुस्तक के कथोपकथन और चरित्रादि के सम्बन्ध में विचार किया गया है । घटना योजना एवं चरित्र की स्वाभाविकता के सम्बन्ध में कतिपय सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं । इस आलोचना का प्रति परिच्छेद — क्रम रहा है । ‘संयोगिता स्वयंवर’ की कथावस्तु की समीक्षा प्रेमघन ने इन शब्दों में है, “ यदि संयोगिता स्वयंवर पर नाटक लिखा गया तो इसमें कोई दृश्य स्वयंवर का न रखना मानों इस कविता का नाश कर डालना है, क्योंकि यही इसमें वर्णनीय विषय है, और अभिनय का मुख्य आनन्ददायी एवं कवि के कविता दिखाने का मौका है न एतबार हो तो रघुवंश, अनेक रामायण, सीता स्वयंवर आदि में देख लीजिए । फिर इसमें कथा की दो प्रणाली थी अर्थात् मुख्य द्वेष दूसरी प्रीति से प्रथम तो कवि ने निःशेष ही कर डाला और दूसरी का उचित रीति से निर्वाह न कर सका, पूर्वानुराग का तो नाम ही नहीं लिया, नायिका की प्रीति की कहीं झलक ही नहीं दिखाई, दिखाई भी तो बेहूदे तरह, कर नाटकी का प्रवेश किया परन्तु आशय और उद्योग ऐसा गुप्त रहा कि नहीं के बराबर हुआ । रस के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है सच तो यह है “ रस इसमें प्रधान दो थे, वीर और शृंगार, अंगी कौन है, यह कौन कहे ? सच तो यह है कि कोई रस कहीं पर उत्तमता से उदय नहीं हुआ , चित्त का चित्र किसी का ठीक नहीं उतारा गया और जहाँ उसका उद्योग भी किया । वीर को हिजड़े की पोशाक पहनाई और सती वा स्वकीया को वेश्याओं के शृंगार कर दिये, जहाँ वीर मौका आया , वीभत्स किया ।” नायक और नायिका के चरित्र-चित्रण पर प्रेमघन ने अलग से विचार नहीं किया । पर कथोपकथनों के जो उद्धरण दिये हैं उससे यह उम्मीद की है कि, “ नायक नायिका के स्वभाव का परिचय मिल ही गया होगा । ” उनका ध्यान नाटक के दृश्य-विधान पर भी गया है और इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है—नाटक के प्रबन्ध का कुछ कहना ही नहीं एक गवार भी जानता होगा कि स्थान

परिवर्तन के कारण गर्भाग की आवश्यकता होती है अर्थात् स्थान के बदलने में परदा बदलता जाता है और इसी परदे के बदलने को दूसरा गर्भाग मानते हैं, सो आपने एक ही गर्भाग में तीन स्थान बदल डाले अर्थात् महल जहाँ नायिका है, और दूसरा गंगा तट जहाँ नायक है, और फिर महल कथावस्तु रस और दृश्य विधान की इस आलोचना में यह स्पष्ट है भट्ट जी की तरह ही 'प्रेमघन' ने भी केवल नाटक के अंशों पर विचार नहीं किया बल्कि उन्होंने बहुत कुछ उसके सम्पूर्ण स्वरूप को भी ध्यान में रखा है।<sup>१०२</sup>

प्रेमघन की समीक्षा का अधिकांश भाग 'संयोगिता स्वयंवर' के त्रुटि निर्देश को समर्पित है। उन्होंने नाटक के दूसरे छन्द की पंक्ति " कर करुना ताको हरो पदनख चन्द्र देखाय में 'कर' प्रयोग को अशुद्ध बतलाया है और ब्रजभाषा में उसकी जगह 'करि' लिखने का परामर्श दिया है। पृष्ठ ५ पर आयी पंक्ति "कामिन नैनन अँसुआ वरसैं धरक धरक हियरा अकुलाय" में भी उनके अनुसार 'कामिन' के बदले 'विरहिन' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था। पृष्ठ ९ पर एक संवाद है जिसमें वर्षा काल का वायु को शीतल मंद सुगंधित' कहा गया है। प्रेमघन ने इसे वसन्त ऋतु की वायु का वर्णन कहा है। पृ. ८९ पर पृथ्वीराजचन्द से कहता है— " क्या तुम जयचन्द अथवा मृत्यु से हमको डराते हो हम मरने से जरा भी नहीं डरते।" इस पर चन्द कहता है : " यह तो पशु धर्म है ..... भला दीपक पर पतंग के भाँति मरने से क्या लाभ होगा ? क्रोध में बहुधा मनुष्य बृथा प्रलाप किया करते हैं।" इस पर 'प्रेमघन' में टिप्पणी की है— " क्या सेवक और स्वामी की बातचीत है।" कदाचित 'संयोगिता स्वयंवर' के ऐसे ही त्रुटि निर्देश को देखकर शुक्लजी ने अपने इतिहास में लिखा है कि उसमें " दोषों का उद्घाटन बड़ी बांरीकी से किया गया था" (पृष्ठ ४५८)। इस समीक्षा की विशेषता यह भी है कि इसमें नाटक के संवादों और छन्दों पर कालिदास भारतेन्दु

<sup>१०२</sup> नन्द किशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास : पृ. ३३-३४

और शेक्सपीयर का जो प्रभाव है उसे भी सप्रभाव बतलाया गया है । आलोचना की शैली में व्यंग्य का वैसा ही पुट है, जैसाकि अटूट की शैली में ४१ पर जब पृथ्वीराज काम भावना के आवेश में मूर्छित होकर गिरने लगता है, प्रेमघन कहते हैं — “ क्या मिरगी आती थी ? ” इस समीक्षा में उन्होंने नाटक के रस पर विचार किया है, एक स्थान पर रंगमंच पर युद्ध का दृश्य प्रस्तुत करने को शास्त्रीय नियम के विरुद्ध कहा है, और नाटक की समाप्ति के निर्वहण संधि की अनुपस्थिति बतलायी है लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि उन्होंने यह समीक्षा संस्कृत नाट्यशास्त्र की कसौटी बनाकर लिखी है । वस्तुतः ‘ हिन्दी प्रदीप ’ और ‘ आनन्द कादम्बिनी ’ दोनों की समीक्षाएँ उस व्यवहारिक और नवीन दृष्टि से लिखी गयी है ।

#### नील देवी की समालोचना :

नीलदेवी की हमारे प्रियवर श्रीयुत् बाबू हरिश्चन्द्र जी रचित ऐतिहासिक दुखान्त गीत रूपक ! यह रूपक के राजा सूरजदेव की रानी नील देवी का अपने पति के प्राण के बदले में स्वयं गायकी भेष में दिल्ली के बादशाह के सेनापति अब्दुल शरीफ खाँ शूर सभा में जाकर उक्त पति प्राण हारक शत्रु का वध कर डालने के बीज पर लिखा गया है । यद्यपि इस रूपक के प्रबन्ध रचना में कुछ दोष भी क्यों न आ गये हों, इसमें सातवां दृश्य (विशेष लावनी) आठवाँ (इसके पागल का पाठ बहुत ही उत्तम है ) अच्छे हैं और दसवां में तीनों दृश्य अच्छे हैं । हम इसके नववें दृश्य से उद्धृत कर कुमार सोमदेव के वीर रस भरे उत्साह पूरित वाक्य अपने रसिकों को इसके कविता को परिचय दिलाने का अर्थ यहाँ लिखते हैं—

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओं ।

लेहु म्यान सो खड्ग खींच रण रंग जमाओ ॥

परिकर कसि कहि उठो धनुष पै धरि सर साधो ।



केसरिया बानो 'सजि सजि रन कंगन बाँधो ।

बहु सवै भारत जय भारत जय भारत जय ॥

भारतेन्दु युग के दोनों आलोचक पं. बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन—मुख्य रूप से रचनाकार ही थे, अतः उनकी आलोचना के रचनात्मक भावधारा से सम्बद्ध होने की संभावना और अधिक है । इस युग का साहित्य आधुनिक चेतना का साहित्य है ।<sup>७३</sup>

पत्रिका :

पं. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने विचारों को जनता में फैलाने के लिए सर्वाधिक सहायता पत्र—पत्रिकाओं से । प्रेमघन जी ने जनता को लगाने के लिए आनन्द कादम्बिनी और 'नागरी नीरद' पत्र प्रकाशित किये । विचारों को देश के सम्पूर्ण भाग में फैलाने में सहायता प्राप्त की । पत्र—पत्रिकाओं की विशेषताओं का भी सफल उद्घाटन हुआ है— “ जिस देश में उसी समाज की भाषा में जब तक समाचार पत्रों का प्रचार नहीं होता तब तक उस देश और समाज की उन्नति नहीं हो सकती । समाचार पत्र राजा और प्रजा के बीच वकील है दोनों की खबर दोनों को पहुँचा सकता है । जहाँ सभ्यता है वहीं स्वाधीन समाचार पत्र है ?<sup>७४</sup>

भारतीय साहित्यकार विभिन्न पत्र—पत्रिकाओं के माध्यम से देश के स्वतंत्रता आन्दोलन को आगे बढ़ा रहे थे । अंग्रेजी सरकार भारतवासियों के उस कार्य से क्रुद्ध थी । १४ अप्रैल, १८७८ ई. को तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन ने कलकत्ता में अपनी व्यवस्थापिका सभा में एक वक्तव्य दिया था । उन्होंने कलकत्ता में बंगला सुलभ समाचार और हिन्दी के आर्यावर्त तथा बम्बई के किरण

<sup>७३</sup> नन्दकिशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास, पृ. ३८ (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. १९८१)

<sup>७४</sup> बाल मुकुन्द गुप्त : निबन्धावली (सं.) झावरमल शर्मा, प्र०भाग, पृ.३२६

और शिवाजी नामक पत्रों पर विशेषतः रोष प्रकट किया था । वाइसराय मालवा अखबार से मुख्यतः नाराज थे । वक्तव्य के अन्त में उन्होंने कहा था—

‘देशी भाषा का प्रेस वर्तमान काल में दुष्कर्म को प्रोत्साहन देने की राजद्रोही कला निष्णात है, चाहे वह राय के द्वारा हो या तथ्य को प्रकट करने के द्वारा मुझे विश्वास है कि संसार में कोई सरकार नहीं है जो इसे बर्दाश्त कर लें यदि कोई सरकार इसे बर्दाश्त करेगी तो न्यायोचित नहीं होगा ।’<sup>७५</sup> ‘प्रेमघन’ हिन्दी के युगचेता श्रेष्ठ लेखक थे, अतः उनके पत्र ‘आनन्द कादम्बिनी’ और ‘नागरी नीरद’ इस युग-धर्म से प्रेरित होना स्वाभाविक था । इन पत्रों के मुख्य उद्देश्य दो थे । (१) हिन्दी भाषा—साहित्य की उन्नति व प्रचार (२) राष्ट्र जागरण या देशोन्नति । कादम्बिनी और नीरद में प्रकार भेद था परन्तु उद्देश्य में दोनों एक थे ।

सरकारी पक्षपात को महत्व दिये जाने के कारण तथा उसे अदालतों में स्थान मिलने से हिन्दी की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो रहा था । सरकार को इस अनीति का देश भक्तों ने विरोध किया और हिन्दी के प्रायः सभी साहित्यकार उसकी उन्नति व प्रचार के लिए कटिबद्ध हो गये । भारतेन्दु के नेतृत्व में हिन्दी-भाषा का आन्दोलन सफलता से चला और उसकी गूँज उस युग के साहित्य में प्रचुरतः मुखरित हुई । प्रेमघन ने ‘आनन्द कादम्बिनी’ के ‘परिचय—पत्र’ में जो लिखा है उससे यह भलीभाँति स्पष्ट होता है । वे लिखते हैं—“ समस्त संस्कार की एक मात्र राजराजेश्वरी श्रीमती महारानी संस्कृत देवी की चिरजीवी बालिका श्रीमती नागरी कुमारी के नवीन बनक और हावभाव कटाक्ष की चोखी छुरियों से बीबी उर्दू की, जो सदैव अपनी छल छुद्रता के कारण सम्मान के अभिमान से नाक भी चढ़ाया करती है बायें हाथ से नाक पकड़ दाहिनी की मदद

<sup>७५</sup> धर्मयुग : १४८८, पृ ४५, साप्ताहिक उद्धृत

से काटकर चिहरा सफाचट्ट करके तब छोड़ूँ और तब अधिक कहाँ तक कहूँ भगवान् ने चाहा तो कर दिखलाता हूँ ।'<sup>७६</sup>

राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय राष्ट्र सर्वांगीण जागरण से है । उस युग के लेखकों की दृष्टि देश के केवल राजनीतिक पक्ष पर ही नहीं थी बल्कि वे देश के समाज, संस्कृति और आर्थिक आदि सभी पक्षों के उन्नयन के लिए कृत संकल्प थे । कादम्बिनी के हिन्दी भाषा—साहित्य की उन्नति तथा राष्ट्र जागरण विषयक — उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए प्रेमघन उसके एक अंक में लिखते हैं—

“ यदि हम लोगों के उद्योग से हमारी भाषा का कुछ भी सच्चा उपकार हो सके, अथवा हम लोग अपने देश—बान्धवों का ध्यान उनकी मातृभाषा की ओर कुछ विशेष आकर्षित कर सके, या साहित्य की प्रचलित प्रणाली से निराली सजधज दिखाकर उनका मन मोहित कर सकें ..... देश और समाज की नित्यप्रति नवीन अवनति का मर्म सुझाकर नतग्रीव कर उनकी नासिकाओं से अस्वाभाविक शोकोच्छवास प्रवाहित करा सकें और उसके सुधार के लिए कुछ लोगों के भी हृदय में विचार और उसके विरुद्ध बढ़ती बाढ़सी कुरीतियों के रोकने के अर्थ उन्हें तत्पर और बद्धपरिकर कर सकें, तो अवश्य ही हम अपने को सचमुच लाभवान समझ सकें । ”<sup>७७</sup>

‘नागरी नीरद’ — के उद्देश्य को व्यक्त किया है यह भी ‘आनन्द कादम्बिनी’ के ही समान था—“ इसका मन्तव्य तो यह है कि समाज के दोष और कुरीतियाँ जिससे भारत आरत हो रहा है, सच्छिन्नामय लेख द्वारा यथा शक्ति उसके संशोधन निज देश बान्धवों का जो आलस्य और उपेक्षा की निद्रा में अचेत सोते हैं, उत्साह सलित मार्जन पूर्वक उद्योग के अर्थ उठाना है..... और यथासाध्य इस रीति स्वदेश

<sup>७६</sup> आनन्द कादम्बिनी : खण्ड—१, संख्या १

<sup>७७</sup> नागरी नीरद : वर्षा १, बिन्दु , पृ. २

भाषा का भण्डार भरा जाय ...एवं समयानुसार आवश्यक सामाजिक राजनैतिक आदि विषय पर भी स्वच्छन्द भाव से अपनी उचित सम्मति प्रदान कर स्वदेश तथा राजा को चैतन्य करना और विविध रसरसिक पाठकों को उनके इच्छानुरूप स्वादास्वान करा के तृप्त कर देना है।

प्रेमघन के राष्ट्रीय भावना पर आधारित विचार 'नागरी नीरद' के माध्यम से घर-घर पहुँचने लगे । इससे देश की जनता अत्यन्त प्रभावित हुई तथा देश में राष्ट्रीय चेतना की लहर फैलने लगी । ऐसी स्थिति में कुछ देशद्रोही राजभक्त भड़क उठे तथा उन्होंने अंग्रेज सरकार को इस पत्रिका के विरोध में भड़काना शुरू कर दिया । इस सम्बन्ध में राधाकृष्णदास जी का कथन द्रष्टव्य है—

“चुगली की बाजार गर्म हुई । जो निष्पक्षपात लेख इसमें गवर्नमेंट के हित के वास्ते लिखे जाते थे । वे राजद्रोही ठहराए जाने लगे । जो कविता का पंच हास्य का श्लेष के छपते थे वे अपमान सूचक ठहराए जाने लगे । इसका फल यह हुआ कि “मर्सिया” शीर्षक एक लेख ज्यों ही छपा ‘ सर विलियममयोर’ लेफ्टीनेंट गवर्नर को समझाया गया, कि यह लेख आपके अपमान और उपहास की नीयत से छपा है बस झटपट सरकार की सहायता बन्द की गयी और कैप्टन साहब, डारेक्टर विद्या विभाग ने क्रोध प्रकाशन एक पत्र भेजा यद्यपि उसके पीछे बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई परन्तु वहाँ तो ऐसा रंग जमाया गया था कि वह काहे का उतरना था ।<sup>५८</sup> नागरी नीरद ने देश की आर्थिक दशा सुधारने और विपत्ति से बचाने के लिए अपने ही देश में आवश्यक उपभोक्ता, “ यह बात अब किसी से छिपी नहीं कि जब तक देश की आवश्यक सामग्री देश ही में नहीं बनती और देश के अभाव को स्वयं वही देश नहीं पूर्ण करता तब उस देश की दशा कभी संतोषजनक नहीं हो सकती । बल्कि नित्य के कार्य की आवश्यक सामग्री रूपया

<sup>५८</sup> राधाकृष्ण दास : हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास,

देकर विदेश से मंगाने से देश का धन और सत्त निकलता चला जाता है और इस विपत्ति से बचने का उपाय यही है कि अपने देश की आवश्यक वस्तुओं के बनाने का प्रबन्ध भी देश में ही किया जाय ।

कादम्बिनी के दो रूप प्रचलित थे—खड़ी बोली और ब्रजभाषा । गद्य में खड़ी बोली का प्रचलन था किन्तु पद्य में बहुधा ब्रजभाषा व्यवहृत हो रही थी । उस समय आवश्यक थी कि हिन्दी—पत्रों में बढ़ते हुए दूषणों के संक्रामक रोग के प्रति हिन्दी पत्र सम्पादकों को सचेत किया जाय तथा उन्हें अपने कर्तव्य एवं लक्ष्य के प्रति सजग एवं सचेत कर उनका मार्ग प्रदर्शन किया जाय ।

प्रेमघन ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी' हिन्दी को होली के अवसर पर हास्य विनोदात्मक अंकों के निकालने की परम्परावादी इसे पूर्व कलकत्ते के पत्रों में प्रायः दुर्गापूजन के अवसर पर परिहासात्मक पत्रों के प्रकाशन की परम्परा थी । प्रेमघन के शब्दों में "होली में 'पारिहासिक नम्बर निकालने की प्रथा इधर 'नागरी नीरद' ने निकाली थी जिसके पीछे अनेक हिन्दी पत्र उसका अनुकरण कर चले जो एक बहुत उत्तम चाल है, नहीं तो कलकत्तिये हिन्दी पत्र दुर्गापूजा ही से प्रायः परिहासपूर्ण पत्र प्रकाशित करते रहे ।"<sup>१९</sup>

प्रेमघन का अन्य महत्वपूर्ण योग काम की दिशा में था । सामग्री—संयोजन की जैसी सुव्यवस्था विविध स्तम्भों की योजना सामग्री संतुलन तथा पत्रों के आवरण पृष्ठों को अधिकाधिक आकर्षक बनाने जैसी प्रवृत्ति उनके पत्रों में परिलक्षित हुई वह उस समय अन्यत्र दुर्लभ थी । इस दृष्टि से कादम्बिनी निःसंदेह अग्रगण्य थी । प्रेमघन के पत्रों में प्रायः नियमित रूप से सम्पादकीय लेख भी निकाला करते थे जिनमें वर्षात् में वर्ष भर की महत्वपूर्ण सामग्री का सिंहावलोकन किया जाता था ।

<sup>१९</sup> आनन्द कादम्बिनी : माला ६ में से ५६, पृ. ८८

### प्रेमघन के सम्पूर्ण साहित्य का नवीन परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन द्वारा लिखित साहित्य राष्ट्रीय साहित्य चेतना के नवीन परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वह साहित्य को जन-हित एवं जन कल्याण का साधन मानते थे । उन्होंने अपने साहित्य में देश की तात्कालिक दुर्दशा का चित्रण करके, देशवासियों को प्राचीन गौरव का स्मरण कराया और उनकी कुप्रवृत्तियों और बुराइयों के प्रति उन्हें सजग करके देशोद्धार की ओर प्रेरित किया । हार्दिक हर्षादर्श कविता में देश की तत्कालीन दुरवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है तथा अंग्रेजी शासन की नीति पर विस्तार से विवेचन किया गया है । देश में हुए विविध सुधारों के सम्बन्ध में प्रेमघन ने विक्टोरिया-शासन की अत्यधिक प्रशंसा की है, साथ ही देश की दुर्दशा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

देश की कल्याण कामना करते हुए लिखा है—

करहु आज सों राज आप केवल भारत हित ।

केवल भारत के हित—साधन मैं दीनै चित ॥

X X X

उमड़ै भारत में सुख, सम्पत्ति, उछाह व्यापार ज्ञान भल ।

तेरे सुखद राज की कीर्त रहै अटल इत ।

धर्म राज रघु राम प्रजा हिय मैं जिमि अंकित ॥

अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों पर थोपे जा रहे विभिन्न प्रकार के टैक्स, का विरोध करते हुए प्रेमघन ने 'होली की नकल' नामक कविता में लिखा है—

रोओ ! सब मुँह बाय बाय,

हय हय टिककस हाय हाय,

रोज कचहरी धाय धाय

अमलन के ढिग जाय जाय ॥

प्रेमघन के समय में असहयोग आन्दोलन में विदेशी वस्तुओं के बहि कार की घोषणा ने, हाथ के कते बुने कपड़ों के प्रचलन को विशेष अवसर दिया । परिणामतः भारतीय कुटीर उद्योगों का पुनः विकास हुआ । भारतीय अर्थव्यवस्था के सुधार की दिशा में यह प्रथम देशीय प्रयास था । चरखा और खहर के प्रचार ने विदेशी कपड़े की खपत कम कर दी, और भूखे देश की जनता को पेट भरने व तन ढँकने का आधार प्राप्त हुआ । प्रेमघन इस आन्दोलन से प्रभावित थे । यह बात उनके 'चरखे की चमत्कारी' व 'होली राग काफी' जैसे गीतों तथा 'स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार' जैसे निबन्ध से भलीभाँति हो जाती है— 'चरखे की चमत्कारी' में वे लिखते हैं—

चल तू जिससे खायें दुखी भर पेट दाल और भात ।

सस्ता सुद्ध स्वदेशी खहर पहिन छिपावें गात ॥

तथा

ज्यों ज्यों चपल चरखा चलत ।

बसन व्यापारी विदेसी लखि विलख कर मलत ॥

कहत गुन—गुन देर गुन—गुन दीन गन ज्यों पलत ।

बहुरि भारत में सकल सम्पति साहस हलत ॥

ज्यों ज्यों चपल ॥

भारतेन्दु के भारत दुर्दशा नाटक के स्थान पर प्रेमघन ने 'भारत सौभाग्य' नाटक लिखा । इसमें प्रेमघन ने देश के भवि य के सम्बन्ध में सौभाग्य की आशा व्यक्त की है । 'भारत सौभाग्य' १८५७ के विद्रोह और उससे कुछ पूर्व की घटनाओं ओर उनके परिणामों को नाटकीय रूप दिया गया है । इनमें देश की बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में प्रेमघन का दृष्टि कोण भलीभाँति प्रकट हो सका है आरम्भ में अंग्रेजी राज्य के प्रति आशा और उसकी प्रशंसा

तदनन्तर इसके प्रति निराशा और फिर इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से देश के उद्धार की आशा व्यक्त की गई है । ' भारत सौभाग्य ' नाटक के सूत्राधार एवं नटी के समवेत गान से उनके देश हित की कामना प्रकट होती है —

मंगल करै ईस भारत को सकल अमंगल बेगि बहाय ॥

आलस निद्रा सों उठि जागै भारतवासी धाय ।

एका सुमति कलत्र विद्या बल तेज स्वत्व निसपाय ॥

उद्यम पगे धरम रत उन्नति देश करै चित चाय ।

दुःख कलंग धोय देवै फिर वे ही दिन दिखलाय ॥

प्रेमघन ने एक ओर तो भारतवासियों को उनकी अवनति का कारण बताया तथा उन्नति का मार्ग दिखाकर देश भक्ति का परिचय दिया, दूसरी ओर शासक या उसके कर्मचारियों द्वारा प्रजा को जिस कार्य से कष्ट पहुँचा हो उसे बताकर उनका ध्यान आकर्षित किया—

“स्वागत स्वागत तुम कहँ बारम्बारा, आगत के हित स्वागत सुभ सतकार ।

तासों स्वागत सादर देत सुवेस, नम्र भाव सो पश्चिम उत्तर देस ॥

मिलि सबस दुख अपने की पुकारै पुकार, महारानी माता सो बारम्बार ॥

उन्होंने अपनी कविताओं निबन्धों प्रवचनों और नाटकों द्वारा साधारण जनता को अंग्रेजी राज्य के शोषण और अन्याय के प्रति सचेत किया ।

प्रेमघन ने अनेक यात्रायें करके देश की दयनीय दशा का अवलोकन किया । उस समय देश की दुर्दशा से पीड़ित था । देश के उद्योग धन्धे नष्ट हो रहे थे । सस्ते विदेशी माल के प्रचार से भारतीय व्यापार समाप्त हो रहा था । लोग कौड़ी — कौड़ी को मुहताज थे । अंग्रेजों से भयाक्रान्त जनता त्राहि—त्राहि पुकार रही थी । इस दशा को देखकर प्रेमघन का हृदय पीड़ित हो उठा । उन्होंने देश को यह दुर्दिन दिखाने के कारण अंग्रेजी शासन को माना और अपने साहित्य



में सीधे तथा रूपकों, प्रतीकों और व्यंग्यचित्रों के द्वारा उसकी निन्दा करके उसके विरुद्ध साधारण जनता को उद्बोधित करने की चेष्टा की—

‘भची है भारत में कैसी होली सब अनीति गति होली ।

पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब धोली ।

X X X

चले स्वराज राह तकि तजि भय, सकल विघ्न तृण होली ।

विजय पताका लै महातमा गांधी घर घर डोली ॥

प्रेमघन जानते थे कि साहित्य का पठन—पाठन करनेवाले मनुष्य संख्या बहुत अधिक नहीं होती । काव्य और निबन्धों द्वारा अपना विचार सामान्य जनता तक पहुँचाना कठिन था । अतः सामान्य जनता को प्रभावित करने के लिए उन्होंने नाटक लिखे और उनका अभिनय भी किया जिससे जनमानस प्रभावित हो उठा । ‘भारत सौभाग्य’ और उनके प्रहसन—आर्य्या किसकी भार्य्या जुबिली जमघट या कि यारों का ठठ ‘पशुप्रपंच’ कुट्टी और जुट्टी तथा पंडित मुंशी और महाजन’ आदि लिखे । इन सभी नाटकों के नायको को अंग्रेजी राज्य का प्रतीक माना है ।

‘आर्य्या किसी भार्य्या’ प्रतीकात्मक प्रहसन है । राजनीतिक ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध है । उस समय देश पर रूसी आक्रमण के भय के बादल मंडरा रहे थे और भारत भयग्रस्त था इसमें भारत को आर्य्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके सभी पात्र विभिन्न देशों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं ।

‘जुबिली जमघट’ या कि ‘यारों के ठठ’ का सम्बन्ध विक्टोरिया की इअंगलैण्ड में मानायी जानेवाली जुबिली जिसमें भारतीय राजाओं के प्रति समुचित सम्मान का व्यवहार नहीं हुआ था । इसमें भारत के प्रति अंग्रेजी शासन नीति के रुख पर व्यंग्य किया गया है ।

‘पशुप्रपंच’ भी प्रतीकात्मक प्रहसन है । इसके पात्र पशु हैं और वे विविध देशों या स्थानों के प्रतीक हैं इसका विषय ऐतिहासिक—राजनीतिक है सन् १९०४ के भारत तिब्बत के झगड़े को लेकर यह प्रहसन लिखा गया है ।

प्रेमघन ने अपने समय में अंग्रेजी शासन द्वारा जनता पर थोपे जा रहे कर (Text) वृद्धि की स्थिति का वर्णन करते हुए अपनी कविता ‘होली की नकल मोहरम की शकल में किया है ।

रोओ ! सब मुँह बाय बाय । है है टिक्कस हाय ।

आमला सब हर खाय हाय दूना टिक्कस बताय हाय ॥

स्वान सरिस मुँह बाय बाय । घूस भली विधि खाय हाय ।

पीछे धता बताय हाय टिक्कस ले धरि धाय—धाय ॥

प्रेमघन के समय से पहले के समाजों का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । जिस प्रकार धार्मिक दृष्टि से उन्होंने सुधारात्मक कदम उठाये उसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से भी हिन्दुओं की रूढ़िप्रियता तथा समाज के प्रति उनके दायित्वहीन होने की बात को लक्ष्य करते हुए वे लिखते हैं—

“साधू लोगों की व्यवस्था वेद की नाई प्रमाणित होती है परन्तु शोच की बात है कि हमारे देश के मनु य तो लकीर के फकीर रहे हैं, इन्हें क्या मतलब कि किसी बात का विचार करें वा सोचें समझें या खोज करें, और सत् तथा असत् तथा भले बुरे का विवेक करें । इन्हें केवल पशुओं की रीति खाना, सोना और मर जाना मात्र आता है ।

प्रेमघन ने अपने विचारों को जनता में फैलाने के लिए सर्वाधिक सहायता पत्र पत्रिकाओं से प्रेमघन सहायता ली । प्रेमघन ने जनता को जगाने के लिए ‘आनन्द कादम्बिनी सन् ई. १८८१ का प्रथम अंक निकाला । यह पत्रिका निरन्तर ११ वर्ष तक निकलती रही, इसके बाद इन्होंने दूसरी पत्रिका ‘नागरी नीरद’ सन्

१८९२ ई. में निकाली थी । इनका उद्देश्य तत्कालीन समाज में फैले अनाचार व अत्याचार को दूर कर जनता को जागृत करने का था ।

स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार में प्रेमघन ने सर्व प्रथम हमें अपनी रुचि में परिवर्तन करना और आवश्यक नवीनता के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए । हम लोगों को इतना विचार नहीं कि विदेशी लोग तो स्वदेशानुराग के कारण सात समुद्र पार से भी आकर यहाँ अपने देश के पदार्थ को कार्य में लाते और हम अपने देश की बनी वस्तुओं को छोड़ विदेशी पदार्थ को ले लेकर भकुआ बनने के प्रत्यक्ष प्रमाण बनते हुए अपने देश के उद्यम का सर्वनाश कर रहे हैं ।

स्वदेशी वस्तुओं को व्यवहार करने के लिए प्रेमघन के मित्र भारतेन्दु का प्रतिज्ञा पत्र की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—‘ परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहनेंगे—हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा स्वीकार करेंगे ।

इस समय की पत्र पत्रिकाओं में काव्य, नाटक, लेख समालोचना आदि के प्रकाशित होते रहे हैं । प्रेमघन का प्रयास था कि देश के निवासी अपनी दीन हीन दशा को पहचान कर अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करें । उन्होंने अपने विभिन्न विषयों से सम्बद्ध लेखन कार्य के द्वारा जनता को उसकी वास्तविक दशा का ज्ञान कराने का प्रयत्न किया । सम्पादक, नाटक, व्यंग्य हास्य लेख आदि सभी साधनों से प्रेमघन ने नव जागरण को जगाने में प्रयत्न किया ।

उस समय के कवियों ने लार्ड रिपन के सम्बन्ध में प्रशस्तियाँ लिखी । स्वयं भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र ने उनके सम्बन्ध में रिपनाष्टक से आठ छन्दों की एक कविता लिखी थी । उनके पद त्याग कर चले जाने पर भारतीयों को बड़ा दुःख हुआ । इसी भारतीय भावना का प्रेमघन ने अपने नाटक ‘ भारत सौभाग्य ’ में इस प्रकार व्यक्त किया है—

भारत— हाय ! न जाने वह तीन अक्षर के नाम वाला साधु स्वभाव मनुष्य देश का होकर भी देवताओं की भाँति दया सागर, समस्त विशुद्ध गुण—आगङ्ग?, नीति नागर, हमारे दुःखाग्नि से उत्पन्न कलेजे के फफोलों पर अव्यर्थ मोद का मर्म लगा देने वाला कहाँ से आ गया था ? कि जिसने हा—हाकार शब्दपूरित देश में मंगलमय कोलाहल मचा दिया ।

(प्रवेश चिन्ता का)

हाय ! हाय ! क्या वह चला गया ? तब क्या होगा ? मैं कैसे जीऊँगा ? हाय विधाता ! क्या यह आनन्द तुमने किसी विशेष दुस्सह दुःख के देखने को तो नहीं दिखाया था ? हाय ! हाय ! अब क्या करूँ और जीऊँ ?

(मूर्च्छा नाट्य )

प्रेमघन ने अपने तन, मन, धन से हिन्दी की सेवा की । उन्होंने अपने निबन्ध, गद्य और सरस काव्य लेखन द्वारा हिन्दी भाषा का श्रृंगार किया है वे हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान रहा है—

हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।

लै पैठारे बीच कचहरी बिना विचारहिं ॥

प्रेमघन ने हिन्दी की उन्नति पर अधीर होते हैं और उर्दू भाषा कचहरी में बोले जाने वाली भाषा पर व्यंग्य प्रकट किया है—

पुरबवत सो बीच कचहरी उर्दू बीबी ।

बैठी ऐंठी करत अजहुँ सौ सौ विधि सीसी

लखि आवत नागरी बरन बरन तकि,

नाक सिकोरत, भौह मरोरति औचकहि चारि ।

प्रेमघन ने उर्दू भाषा की मजाक बनाते हुए उन्होंने लिखा है—

निजभाषा को सबद लिखा पढ़ि जात न जामै,

पर भाषा का कहो पढ़ै कैसे कोइ तामै ।

लिख्यौ हकीम औषधि में 'आलू बोखारा ।

उल्लू बनो मौलवी पढ़ि मौलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा,'

प्रेमघन ने समाज की कुरीतियों जैसे बाल—विवाह, अंधविश्वास, विधवाओं की दुर्दशा आदि की निन्दा की, स्त्री—शिक्षा, स्त्री स्वावलंबन, शिक्षा प्रचार, स्वदेश प्रेम, स्वभाषा प्रेम आदि नवीन विषयों को भी उन्होंने अपने लेखन का विषय बनाया । उन्होंने जीवन भर परेशानियों का सामना कर राष्ट्रीय चेतना का प्रचार—प्रसार किया ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

### उपसंहार

विगत अध्यायों में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना' के विविध पक्षों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में वाणी के जिन साधकों ने राष्ट्रीय चेतना' को प्राणदान दिया है उनमें बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन का अन्यतम स्थान है, वे हिन्दी के उन उन्नायकों में से है, जिन्होंने स्वान्तः सुखाय ही हिन्दी सेवा द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमिट स्थान प्राप्त किया ।

'प्रेमघन' साहित्य को जनहित का साधन मानते थे । साहित्य में उन्होंने देश की तात्कालिक दुर्दशा का चित्रण करके देशवासियों को प्राचीन गौरव का स्मरण कराया और उनकी कुप्रवृत्तियों एवं बुराइयों के प्रति उन्हें सजग करके देशोद्धार का शंखनाद किया । उन्होंने भारतवासियों की निष्क्रियता पेट भरने मात्र की प्रवृत्ति तथा विदेशी वस्तुओं के मोह पर बहुत दुःख प्रकट किया ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपनी कविताओं, लेखों प्रवचनों और नाटकों आदि द्वारा भारतीय जनता को अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण और अन्याय के प्रति सेवत किया । उन्होंने अनेक यात्राएँ करके सम्पूर्ण देश की दयनीय दशा का अवलोकन किया । उस समय देश की हालत खराब थी । देश के उद्योग धन्धे नष्ट हो रहे थे । विदेशी माल के प्रचार से भारतीय व्यापार समाप्त हो रहा था । खाद्य पदार्थों के भाव बढ़ रहे थे । करों का भार बढ़ रहा था । लोग ज़रा-ज़रा सी चीजों के लिए मुहताज थे । प्रेमघन ने देश को यह दुर्दिन दिखाने का कारण अंग्रेजी शासन को माना । प्रेमघन ने साहित्य द्वारा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीय जनता को उद्वेलित करने की चेष्टा की । साधारण जनता को अधिक प्रभावित करने के लिए उन्होंने प्रहसनों व रूपकों का

सहारा लिया । उन्होंने स्वयं नाटक लिखे और उनका अभिनय भी किया जिससे जन-मन बड़ा प्रभावित हुआ ।

प्रेमघन ने अपने विचारों को जनता में फैलाने के लिए सर्वाधिक सहायता अपनी पत्र-पत्रिकाओं से ली । जनता को जगाने के लिए उन्होंने आनन्द कादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित किये । इन लेखों में अंग्रेजी राज्य द्वारा जनता के शोषण के विरुद्ध लेख प्रकाशित हुए, और इस नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा शीर्षक में प्रेमघन जी कांग्रेस की फूट पर क्षुब्ध होते हैं पर उन्हें अंग्रेजों की कूटनीति की जिससे देश की उन्नति में बाधा पड़ती है । इस बाधा से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को बल प्राप्त हुआ । प्रेमघन को भारतीय भावनाओं में उत्तरोत्तर चमत्कार दिखाई पड़ा, पर इस पर इतना मानना पड़ेगा कि प्रेमघन जी भारतीय स्वदेश जागरण के उन जागरूकों में से एक हैं जिन्होंने अपने देश के समक्ष जिस गान को गाया उसका प्रभाव तत्कालीन जन समुदाय पर ही नहीं पड़ा बल्कि उस समय के क्रान्तिकारी वर्ग पर भी पड़ा और इससे स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों के चकमें में पड़े हमको भारतीय स्वतंत्रता के लिए स्वयं खड़ा होकर अपने इन पुर्वासनों और दुर्व्यवस्थाओं को ठीक करना है ।

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से इस युग में प्रेमघन जी की दृष्टि समाज और धर्म पर भी पड़ी और प्रेमघन जी ने अपने गद्य तथा पद्य को इन भावनाओं से पिरोकर तत्कालीन समाज तथा धर्म की समुचित व्यवस्था का चित्र बना ही डाला । प्रेमघन के काव्य पर तत्कालीन समाज सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती के साहचर्य का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा । 'विधवा विपत्ति वर्षा' में प्रेमघन जी विधवा की दशा का वास्तविक चित्र चित्रित करते हैं तथा हिन्दू धर्म के आडम्बरों, अनाचारों तथा कुविचारों की भी कटु आलोचना करते हैं ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पौराणिक व राजनीति से सम्बन्धित नाटक प्रहसन भी लिखे ।



समाज सुधार सम्बन्धी नाटक 'वारांगना रहस्य' महानाटक है जिसमें दूषित समाज का चित्रण किया गया है, इसमें अनेक प्रान्तों और वर्गों के लोग हैं नाटककार ने उसमें कुसंगति के घातक प्रभावों को बतलाना चाहा है । राजीव लोचन ऐसे ही प्रभाव का शिकार था । 'पाठशाला कुतूहल' में पाठशाला के वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया गया है । जाति-पाँति से सम्बन्धित नाटक 'बीबी मेहतरानी और ब्राह्मणी की बातचीत' है । धर्मावलम्बियों से सम्बन्धित नाटक 'पांडे और पादड़िन' का समागम है आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित नाटक 'पंडित मुन्शी और महाजन' है । इसका सम्बन्ध सरकार की आयकर नीति से है । उनकी सामाजिक, धार्मिक विषयों पर जो रचनाएँ हैं वे राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं । 'भारत सौभाग्य के शुरू में अंग्रेजी राज्य के प्रति आशा और उसकी प्रशंसा तदनन्तर उसके प्रति निराशा और फिर इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से देश के उद्धार की आशा व्यक्त की गयी है । इसी तरह के और भी नाटक बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने अपनी पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी' में समय-समय पर प्रकाशित किये । 'आर्या किसकी भार्या' जुबिली जमघट या कि यारों के ठट्टा, पशु प्रपंच, कुट्टी आदि सभी नाटकों में अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य किया गया है । इन सभी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना के भाव भरे हुये हैं ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' कवि के रूप में बहुत प्रसिद्ध हुए ।

प्रेमघन का काव्य राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ है, उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की जनता को जागृत करके राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान किया । उन्होंने अपनी कविताओं में देश की सामाजिक राजनीतिक आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों से सम्बन्धित रचनाओं के द्वारा जनता को अंग्रेजी शासन के प्रति सचेत किया गया है । 'पितर प्रलाप' आनन्द बधाई' आर्याभिनंदन, आनन्द अरुणोदय, जैसी कविताओं और 'सामाजिक संगीत' के गीतों में जगह-जगह पर

सामाजिक विषयों का स्पर्श किया गया है। इनमें बुराईयों को स्पष्ट रूप से उभारा गया है और पर उनमें सुधार करने के सुझाव दिये गये हैं ।

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से प्रेमघन की वे कविताएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जो विशेष अवसरों पर लिखी गयी हैं । 'मंगलाशा,' 'हार्दिक हर्षादर्श,' आदि के अतिरिक्त 'स्वदेशविन्दु,' और जातीय गीत लिखे गये । 'स्वदेश विन्दु' में 'चरखे की चमत्कारी' और 'होली राग काफी' स्त्रियों की कीर्ति, 'वन्देमातरम्' आदि कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के भावों को अभिव्यक्त किया गया है ।

प्रेमघन का 'जीर्ण जनपद' बहुत कुछ गोल्डस्मिथ के 'डेजर्टेड विलेज' के ढंग पर लिखा गया है । 'जीर्ण जनपद' गोल्डस्मिथ से अधिक भारत के गावों के निकट है । इनमें किसी गाँव का आदर्श चित्र नहीं खींचा गया बल्कि एक गाँव के परिवर्तन का आँखों देखा चित्र है । अनेक बातों में यह प्रबन्ध काव्य अपने ढंग की रचनाओं में अनोखा है, प्रेमघन ने महारानी विक्टोरिया के युग में नया रूप देखा । दोनों युगों के आचार—विचार वेशभूषा रहन—सहन आदि के वर्णन के कारण इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है ।

'प्रेमघन' कंसवध पर एक महाकाव्य लिख रहे थे । परन्तु उसे पूरा न कर सकें इसके एक सर्ग में उन्होंने हरिगीतिका छन्द में कुछ बड़ी सुन्दर वर्णनात्मक कविता लिखी है । 'कलिकाल तर्पण' में उन्होंने भारत वर्ष के इतिहास का सिंहावलोकन किया । 'होली की नकल' कविता में इन्होंने टैक्स लगने पर क्षोभ प्रकट किया है । विशेषकर इसलिए कि जिन पर टैक्स लगना चाहिए वह उससे बचे हुए हैं ।

बदरीनारायणा चौधरी 'प्रेमघन' को सावन से विशेष प्रेम था । वर्षा ऋतु पर इनके अनेक छन्द हैं और उन्होंने कजली भी बहुत तरह की लिखी है अपने युग के अन्य कवियों की अपेक्षा यह कुछ पुरातन प्रेमी अधिक थे । ब्रिटिशराज के गुण भी इन्होंने कम नहीं गाये । परन्तु जीवन के अंतिम समय में नवयुग के

निकट आ गये थे । प्रेमघन ने सोचा कि देश में शिक्षा का प्रचार होना चाहिए । उद्योग-धन्धों के विकास और स्वदेशी के व्यवहार से देश से गरीबी दूर हो सकेगी । राजनीतिक चेतना के साथ उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर भी लोकगीत रचकर समाज सुधार में सहायता दी । कविता में खड़ी बोली का उन्होंने प्रयोग आरम्भ किया परन्तु ब्रजभाषा गुजरात से लेकर बंगाल तक उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा रह चुकी थी । भक्तिकाल और शृंगारकाल का उसमें अनुपम साहित्य रचा जा चुका था । ब्रजभाषा से लगाव तोड़ना उस समय अपनी समग्र भारतीय संस्कृति से नाता तोड़ना जान पड़ता था । इसलिए कविता में प्रधान रूप से ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता रहा है ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने हिन्दी आलोचना का सूत्रपात भी किया । उन्होंने अपनी पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी' सर्वप्रथम आलोचना हुस्ना नामक वेश्या कृत मधुतरंग पुस्तक की आलोचना की है; और समय-समय पर 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना प्रेमघन ने २१ पृष्ठों में छापी , बंगविजेता की भी आलोचना ५९ पृष्ठों में छपी । इसके अलावा अन्य भी आलोचनाएँ छापी गईं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से 'प्रेमघन' का सम्पूर्ण साहित्य महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है ।

### सहायक ग्रन्थ सूची

१. डॉ. अजब सिंह : चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं., १९९७
२. आर्य, चन्द्रप्रकाश: राष्ट्रीयता की अवधारणा, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, १९७६
३. — : राष्ट्रीयता की अवधारणा और श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, सं. १९८४ ।
४. डॉ. आरिफ़ नज़ीर — : अनुवाद सिद्धान्त और स्वरूप, साहित्य प्रकाशन, आगरा, १९९२ ।
५. — : कामकाजी हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग, कमल प्रिन्टर्स, लखनऊ, १९९९
६. — : भक्तिकालीन सांस्कृतिक चेतना में रहीम का योगदान, भारत प्रकाशन, अलीगढ़, सं. १९९८।
७. — : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्य प्रकाशन, आगरा, सं. १९९३ ।
८. उपाध्याय, श्री प्रभाकरेश्वर : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—१, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
९. — : प्रेमघन सर्वस्व, भाग—२, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
१०. ओम प्रकाश [संपा.] : आधुनिक कविता : साहित्य समारोह, प्रकाशन—नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७२ ।
११. डॉ कर्ण सिंह : राष्ट्रीयता का अग्रदूत, थामसन प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९७९
१२. डॉ. कान्ति कुमार : भारतेन्दु पूर्व हिन्दी गद्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. १९७४ ।

१३. डॉ. कनौडिया, कमला : भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं. १९७१
१४. डॉ. कश्यप, मिथलेश : भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना, भारतीय प्रकाशन, त्रिनगर, दिल्ली, सं. १९९८
१५. डॉ. कौशिक, महेन्द्रपाल : छायावादी काव्य में युगचेतना और सामाजिक व्यंग्य, सूर्य सड़क प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., १९८५
१६. डॉ. गुप्त, किशोरी लाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्र.सं. १९५६ ।
१७. डॉ. गुप्त, गणपति चन्द्र : साहित्यिक निबन्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १२वां संस्करण ।
१८. डॉ. गुप्त, विद्यानाथ : हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, एस चाँद कम्पनी, नई दिल्ली, संस्करण, १९७६।
१९. डॉ. गुरुमैता, भुवनेश्वर : आधुनिक भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. १९९४ ।
२०. डॉ. गोलवकर, माधवराव सदाशिव : विचार नवनीत, धर्मपुस्तक प्रकाशन, लखनऊ , तृतीय संस्करण, २०२६ वि. संवत् ।
२१. डॉ. गौतम, लक्ष्मण : आधुनिक हिन्दी कहानी के साहित्य में प्रगति चेतना, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, सं. १९७२ ।
२२. डॉ. घोष, अरविन्द : धर्म और जातीयता, हिन्दी साहित्य मंदिर, वाराणसी, सं. १९२३ ।
२३. डॉ. जोशी, शंभुनाथ, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण : आनेवाला कल, राधा बाजार स्टेट, ६३ कलकत्ता, सं. १९८६
२४. डॉ. दरगन, रवीन्द्र नाथ : छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. १९७३ ।

२५. डॉ. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृत के चार अध्याय, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९५६ ।
२६. डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक : साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, छठा संस्करण, १९८० ।
२७. —, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं. १९९२ ।
२८. डॉ. नजीर मुहम्मद : एकता शतक, देवनागरी प्रकाशन, अलीगढ़, संस्करण, १९९९ ।
२९. — कबीर के काव्यरूप : भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, १९७२
३०. डॉ. नवल, नन्द किशोर : हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, १९७६ ।
३१. —, हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. १९८१ ।
३२. डॉ. पाठक, जितराम : आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७६ ।
३३. डॉ. पुरोहित, रामचन्द्र, प्रेमघन और उनका कृतित्व, अनुपम प्रकाशन, जयपुर—३, १९७६ ।
३४. डॉ. प्रसाद भगवती, नवजागरण और प्रतापनारायण मिश्र, दी पब्लिकेशन, नई दिल्ली—१९
३५. डॉ. फतह सिंह : साहित्य और राष्ट्रस्व, थामसन प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. १९७० ।
३६. डॉ. ब्रजरत्न दास : भारतेन्दु मण्डल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि.सं. २००६ ।
३७. डॉ. बाबू गुलाब राय : राष्ट्रीयता, किताब घर, नई दिल्ली, प्र.सं., १९९६ ।

३८. डॉ. मदान, इन्द्रनाथ : आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, १९७३ ।
३९. डॉ. माचवे, प्रभाकर : आधुनिक हिन्दी लेखन, थामसन प्रेस, नई दिल्ली, १९७४ ।
४०. मेघ, रमेश कुन्तल : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९७३ ।
४१. डॉ. मृणालिनी, ऊषा : गीतकाव्य में राष्ट्रीय भावना, सुनील प्रकाशन, पुरानी मण्डी अजमेर
४२. डॉ. रुद्र प्रताप सिंह : राष्ट्रीयता और हिन्दी, अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी प्रचार एवं प्रसार समिति, दिल्ली, संस्करण, १९८९ ।
४३. — : राष्ट्रीय सद्भावना और भावात्मक एकता, अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी प्रचार एवं प्रसाद समिति, दिल्ली, सं. १९८८ ।
४४. डॉ. वाजपेयी, नन्ददुलारे : आधुनिक हिन्दी साहित्य, भारती भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. १९६१ ।
४५. — : राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध, वाराणसी, विद्यामन्दिर, ब्रह्मनाला, प्र.सं. १९६५ ।
४६. डॉ. वाष्णेय, लक्ष्मी सागर : हिन्दी साहित्य की भूमिका, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. १९६६ ।
४७. डॉ. शर्मा, कृष्ण कुमार : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास, नवयुग प्रकाशन, भोपाल, प्र.सं. १९७० ।
४८. डॉ. शर्मा, झाबरमल : सम्पा. बालमुकुन्द गुप्त, निबन्धावली, प्रथम भाग, संस्करण, १९३० ।
४९. डॉ. शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

५०. —, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास की परम्पराएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
५१. —, भारतेन्दु युग , विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वि.सं., १९५६ ।
५२. —, महावीर प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी जागरण, प्र.सं., १९७२ ।
५३. डॉ. शर्मा, वेंकट : आधुनिक साहित्य में आलोचना का विकास, आत्माराम प्रकाशन, दिल्ली, सं. १९७२ ।
५४. डॉ. शर्मा, हेमन्त : भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना प्रचारक संस्थान, वाराणसी, सं. १९८७ ।
५५. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, २०वां संस्करण ।
५६. डॉ. शरण वासुदेव, भारत की मौलिक एकता : भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, प्र.सं., २०११ वि.सं. ।
५७. सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, द्वि.सं., १९५७
५८. त्रिभुवन सिंह ( मुख्य सम्पा.) : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और भारतीय नवजागरण, भारत कला भवन, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सं. १९८७ ।

### पत्रिका

१. आनन्द कादम्बिनी, मासिक पत्रिका, माला—६, वि.सं. १९६३, मिर्जापुर
२. नागरी नीरद, साप्ताहिक पत्र, वर्षा—१, वि.सं. १९४९, मिर्जापुर
३. तलाश : सम्पा. प्रो. शैलेश जैदी, हिन्दी संस्थान, सिविल लाइन, अलीगढ़ ।
४. राष्ट्रधर्म (मासिक), सम्पा. वीरेश्वर द्विवेदी : संस्कृत भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, अप्रैल, १९९३ ।



५. राष्ट्र सेवक, प्र. संपा. चित्र महंत असम राष्ट्र भाषा (अंक जनवरी, १९९८) प्रचार समिति, गुहावाटी, आसाम ।
६. सम्मेलन पत्रिका (भाग—६८ सं. ३—४) सम्पादक डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

### कोश

- प्रचारक हिन्दी कोश, पं. लालधर त्रिपाठी, 'प्रवासी', हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, सं. १९५०
- प्रमाणक हिन्दी कोश : आचार्य रामचन्द्र वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, रिप्रिंट संस्करण, १९९७
- मानक हिन्दी कोश : रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, वि.सं. २०१९
- हिन्दी विश्व कोश : प्रधान सम्पादक, रामप्रसाद त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, बाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६७
- हिन्दी साहित्य कोश : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, तृ.सं. १९८५
- हिन्दी साहित्य कोश : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, द्वि.सं., १९८६

### अंग्रेजी ग्रन्थ

- Encyclopedia of Britenica , edit. by Robert Me Henry, 15<sup>th</sup> Chicago, Encl. of Britenica, 1953,
- Encyclopedia of Religion and Ethics edit.by James Hastings, Newyark , Charles Scribners sons., 1953
- Encyclopedia of Social Science, edit. by David Sills, The Macmillan Company the free press, 1968.
- A grammar of Politics , edit. by J. Herold Laski, George Allen and Union Ltd. London.
- Thoughts on Pakistan , edit. by Dr. B.R. Ambedkar, 1941.